विक्रेता—
मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी,
कटरा दिल्ली।

प्रकाशक—
[illegible]

मुद्रक—
[illegible]
[illegible]
कटरा दिल्ली।

समर्पण

केशवजी,

आपकी वस्तु आपही को देना, यही तो 'दीन' से हो ही सकता है। अन्य कोई वस्तु 'दीन' लावेगा कहाँ से, जो देगा। समय के फेर से तुम्हारी यह कीर्ति कुछ मैली सी हो रही थी। मुझसे देखा नहीं गया, अपने काव्य-ज्ञान के गंदे साबुन से उसे धोने का आडम्बर रच बैठा। मैं तो आडम्बर ही समझता हूँ। पर यदि कुछ सफाई आगई हो तो काव्यरसिक जन या आप जानें। मैंने आपका दामन इसलिये पकड़ा है कि आपके नाम की बदौलत संभव है मुझे भी कुछ सुयश प्राप्त हो जाय, क्योंकि युधिष्ठिर के गुणगान के प्रसंग में उनके कुत्ते का भी नाम यदा कदा लोग लेते ही हैं।

चाहे आप स्वीकार करें या न करें, पर मैं तो आप को ही इस वस्तु के योग्य समझता हूँ। इस समय न तो कोई रामसिंह ही दिखाई देता है और न इन्द्रजीत ही नजर आता है, फिर इस टीका को समर्पित किसे करूँ।

आप सदेह तो इस संसार में नहीं हैं, पर यशमय निर्मल देह से आप सदैव हिन्दी-साहित्य-संसार में ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। आपके उसी रूप को मैं यह टीका समर्पित करता हूँ और विनयपूर्वक आग्रह करता हूँ कि स्वीकार कीजिये। बहानेबाजी या टालमटूल भी मुझसे न चल सकेगी, क्योंकि स्वीकृति वा अस्वीकृति का अनुमान स्वयं मेरे मनके अनुभव करने की बात है। यदि वर्तमान काल के साहित्य-सेवियों तथा आपके प्रेमियों ने इसे अपनाया तो मैं जानलूँगा कि आपने स्वीकार कर लिया है, और न अपनाया तो अस्वीकृति प्रत्यक्ष है। पर मुझे दोनों दशाओं में संतोष ही होगा। स्वीकृति हो या न हो मुझे तो इस विचार से संतोष होगा कि मैंने अपने परिश्रम का फल एक उपयुक्त व्यक्ति को समर्पित किया है, किसी बेकदरे को नहीं।

काशी।
श्रीरामनवमी सं० १९८० वि०

विनीत-
'दीन'

वक्तव्य

(जीवनी)

कवि का परिचय उसकी कृति से ही होता है। वह कहाँ का निवासी था, किस वंश का था, किसका पुत्र था, कब पैदा हुआ, किसके यहाँ रहता था, कब मरा, कितने पुत्र छोड़ गया इत्यादि बातें मालूम हुईं, तो क्या? और अज्ञात रहीं तो क्या? इन बातों से उसकी कृति पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। कालिदास, तुलसीदास, और विविध अन्य कवियों के बारे में इन बातों की अबतक खोज होती ही जाती है, पर क्या बिना इनके जाने उनकी कविता का कुछ बिगड़ गया? कदापि नहीं। केशवदास का इस प्रकार का परिचय उनके ग्रन्थों में काफी है। इसके सिवा मिश्रबंधु महोदयों ने 'हिन्दी नवरत्न' में बहुत कुछ लिखा है। जिन्हे इन बातों के जानने का शौक हो, वे वहाँ से जानलें। हम यहाँ केवल इसी ग्रंथ के आधार पर केशव के विषय में सिर्फ वेही बातें कहना चाहते हैं जिनसे उनका निर्मल कविरूप आंखों के सामने प्रत्यक्ष दिखाई दे।

(हमारा मत)

इस पुस्तक को गौर से पढ़ने से केशव जी केवल कवि ही नहीं, वरन् काव्याचार्य के रूप में सामने आते हैं। पहले ही प्रकाश में छंद नं० ८ से लेकर नं० १६ तक ऐसे छंद लिखे हैं, मानो किसी शिष्य को सिखलाने के लिये एकाक्षरी छन्द से लेकर क्रमशः अष्टाक्षरी छंद तक के उदाहरण लिख रहे हों। वर्णिक छंदो की भरमार से भी यही बात प्रमाणित होती है कि मानो उनको इस बात का बड़ा ध्यान था कि विविध प्रकार के छंदो के उदाहरण प्रस्तुत कर देना ही चाहिये। अलंकारों की भरमार से जान पड़ता है, मानो उन्हें यह ध्यान था कि सब प्रकार के अलंकारों के उदाहरण हमारी पुस्तक में होने ही चाहिये। केवल यही नहीं, वरन् काव्य दोषों के उदाहरण भी जहाँ तहाँ जान बूझकर प्रस्तुत किये से जान पड़ते हैं।

केशव चाहते तो इन दोनों को न आने देते, पर एक काव्यांग को दोनों के ही तो उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिये। हिन्दी में अलंकारों के दोष दर्शाये गये हैं। अतः हम केशव को केवल कवि ही नहीं प्रत्युत काव्याचार्य भी मानते हैं।

(कवि)

कवि-दृष्टि के केशव का स्थान बहुत ऊँचा है। कवि वही है जिसमें कल्पना-शक्ति की बहुत अधिकता हो। इस दृष्टि से केशव की कल्पना-शक्ति ऊँची और विलक्षण शक्ति के चरणों में जाने में देर नहीं लगती, सारी पुस्तक ही भरी पड़ी है। कल्पना में चमत्कार और वस्तु-वर्णन में अधिक रुचि काफी प्रमाण है।

(रीति)

रीति-ग्रन्थ में केशव का देन अपार है कि कहते ही नहीं बनता। अन्य कवियों में भी रीति-ग्रन्थ होता है, पर इनमें यह विशेषता है कि यह सो रीति-ग्रन्थ ऊँचा, दूसरे इनमें अधिक ऊँचे रीति-ग्रन्थ की रचना है। इसी रचना ने इनकी कविता को बहुत कठिन कर दिया है। अलंकार और वस्तु को प्रधान बनाया है। अधिक प्रकार के रीति-ग्रन्थ के उदाहरण के लिए केवल इनका ही कथन काफी है कि रसिकप्रिया, कविप्रिया, रसिकप्रिया के अलावा कवि, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, रामचन्द्रिका इत्यादि जिस विषय पर केशव ने लिखा है, इन सबने रीति-ग्रन्थ को केवल परिपूर्ण कर दिया है कि दूसरे कवियों को लिखकर करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। केशव के रीति-ग्रन्थ का रीति पूर्ण पर प्रभाव ही है। केवल कवि के साथ ही नहीं, बल्कि कविता पर भी (जैसे लिखने के लिए अलंकार, रस, छन्द आदि) केशव ने बड़ा दिया है। जैसे अलंकार, रस, छन्द, रीति, इत्यादि विषयों इत्यादि में अपने प्रयोग किया है

(अलंकारिकता)

केशव आचार्य होने के कारण अलंकार के बड़े शौकीन थे। उत्प्रेक्षा, रूपक, और परिसंख्या के तो भक्त ही जान पड़ते हैं। संदेह और श्लेष की भी भरमार है, पर देव और दीनदयाल की तरह यमक और अनुप्रास की बड़ी रुचि न रखते थे।

(विशेष शब्दों का प्रयोग)

'सुख' शब्द का प्रयोग इन्होंने बहुधा 'सहज' के अर्थ में किया है, और 'जू' शब्द का व्यर्थ प्रयोग भी जहाँ तहाँ देखा जाता है। 'देवता' शब्द सदा स्त्रीलिंग में लिखा है। स्यों, गौरमदाइन और बहुत से अन्य शब्द और मुहावरे भी ठेठ बुँदेलखंडी पाये जाते हैं। यथास्थान इनका उल्लेख किया गया है।

(निवेदन)

स्वर्गीय पं० जानकीप्रसाद जी की टीका से मुझको बड़ी सहायता मिली है, अतः मैं उनकी स्वर्गीय आत्मा के सन्निकट अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सरदार कवि की टीका तलाश ही करता रहा पर मिल न सकी। तीन हस्त लिखित तथा दो छपी हुई प्रतियों के सहारे इसका पाठ शुद्ध कियागयाहै।

टीका के साथ छंदो के अलंकार भी दिखलाये गये हैं। यह मेरी अनधिकार चेष्टा है। इस सागर में से मैं सबही रत्न निकाल सका हूँ, ऐसा मेरा दावा नहीं। विद्वान लोग यदि कुछ बतलाने की कृपा करेंगे तो दूसरे संस्करण में सहर्ष सम्मिलित कर दूँगा। जिन छंदो के अलंकार नहीं लिखे उनमें मैं जान नहीं सका कि कौन अलंकार लिखूँ। कहीं २ अति सरल जान कर पुस्तक बढ़ने के भय से भावार्थ भी नहीं लिखा गया है। पूर्वार्द्ध में इतना ही हो सका है। यदि राम जी की कृपा ऐसी ही बनी रही तो इसके उत्तरार्द्ध की टीका में अलंकारों के अलावा लक्षणा, व्यंजना और ध्वनि इत्यादि के संबंध में भी

कुछ कुछ [illegible] पाठकों के सामने उपस्थित की जायगी, जिससे परीक्षार्थियों को कुछ लाभ अवश्य होगा।

इस ईंधन के लिखने में पूर्ण उत्साह दिखाया है काठियावाड़ [illegible] 'शहीद' निवासी श्रीमान ठाकुर [illegible] जी ने, अतः मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। [illegible] की ईंधन तैयार हो रही है। संभवतः आगामी विजयादशमी तक [illegible] ईंधनकर्ता, आगे मरजी मालिक की।

[illegible] अंतरंगी प्रथा के अनुसार [illegible] भूमिका लिखना और उस भूमिका में ही उदाहरण लिखने की [illegible] बातें [illegible] में पसंद नहीं करता। [illegible] भूमिका में दर्शन यह होती है कि पाठक केवल भूमिका ही पढ़कर पुस्तक रख देते हैं, और केवल [illegible] ही [illegible] हैं। [illegible] पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते। मैं केवल [illegible] बनाकर [illegible] करना नहीं चाहता।

विद्वानों से निवेदन है कि मूल सूत्र को [illegible] से [illegible] हैं और [illegible] से [illegible] है कि वे [illegible] [illegible] करें जिससे मुझे [illegible] के लिखने में [illegible] [illegible] की [illegible] ।

[illegible] ईंधन [illegible] के लिये [illegible], [illegible] विद्वानों [illegible] इस ईंधन के [illegible] [illegible] [illegible]

॥ श्रीः ॥

प्रस्तावना

"भाषाकाव्यरसासक्त-चकोरानन्ददायिनी ।
सन्मनोकुमुदोत्फुल्लकर्त्री, केशवकौमुदी ॥"(गोस्वामी)

सहृदय दीन ने मुझ सदीन को अदीन बनाने के लिये अपने साथ ही साथ इस भयानकाचर्त्तशताकुला केशव-काव्य-नदी में क्यों धर घसीटा, यह समझ में नहीं आता ! मुझसे यह कहा गया है कि, "इस 'केशवकौमुदी' पर कुछ लिख दो"। बस। अच्छी बात है, मैं कुछ लिख देता हूं, परन्तु मेरा विश्वास है कि मेरे इस कुछ लिख देने से सदाशय दीनजी के साथ ही साथ औरों को भी निराश ही होना पड़ेगा। किन्तु यह क्यों ? बस इस "क्यों ?" का उत्तर मेरी यह लटपटी लिखावट ही दे देगी।

नीचे लिखा दोहा बहुतों के मुखसे सुना गया है कि—

"सूर सूर, तुलसी ससी, उड़गन केसवदास ।
अबके कवि खद्योत-सम, जहँ तहँ करत प्रकास ॥"

इस दोहे का अर्थ स्पष्ट है। वास्तव में भाषा के कवियों में महात्मा सूरदास और महानुभाव तुलसीदास का वही स्थान है, जो संस्कृत में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि और भगवान् वेदव्यासजी का है। सच है, सूर सूर (सूर्य) ही थे और तुलसी शशि (चन्द्रमा), कि जिन युगल मूर्त्ति ने काव्य-जगत् को अखण्ड रूप से प्रकाशित कर रक्खा है। यह तो सूर और तुलसी की बात हुई। अब उड़गणसम केशवदास के विषय में यह वक्तव्य है कि आचार्य केशवदास

[illegible] हिन्दी साहित्य का प्रथम आचार्य समझता हूँ। इनका [illegible] मेरे विचारानुसार भाषा में [illegible] हो सकता है। जो [illegible] में [illegible] चन्द, [illegible] धनञ्जय, [illegible] और साहित्यदर्पणकार [illegible] कविराज हैं। इनका काल है और वह यह है [illegible] कवियों ने भाषा में लक्षणमय रीति ग्रन्थ लिख कर, और [illegible] से लिख कर, भाषा के कवियों का मार्ग [illegible] किया। इसलिये इन कविसम्राट् को [illegible] मेरे विचारानुसार इनका आचार्य मानना है। [illegible] दोहे का उत्तरार्द्ध यदि आजकल के [illegible] कवियों के विषय में चरितार्थ किया जाय तो हो सकता है, परन्तु सूर-तुलसी और केशव से आरम्भ करके [illegible] के काल तक ऐसे ऐसे धुरन्धर कवीश्वर भाषा में हो गये हैं कि [illegible] रखना कर गए हैं कि [illegible] का अनुकरण करके अनुकरण [illegible] सुधारने को [illegible] है। अतएव यह दोहे का उत्तरार्द्ध मेरी [illegible] से [illegible] है।

[illegible] केशवदासजी के जाति-[illegible] के विषय में [illegible] के कथन से सहमत होकर कुछ [illegible] कहना [illegible] इस विषय में [illegible] के [illegible] के साथ 'हिन्दी-नवरत्न' में [illegible] विवेचन किया है। हाँ, [illegible] यहाँ पर मैं [illegible] केशव [illegible] विद्वान कवि-[illegible] हैं।

[illegible] केशवदासजी के [illegible] प्रमाण [illegible] हैं [illegible] 'हिन्दी-[illegible]' को [illegible] कर [illegible] [illegible]

देखिये या कविप्रिया,अथवा रामचन्द्रिका,—आनन्द अनोखा ही पाइयेगा। यहां पर मैं रसिकप्रिया या कविप्रिया के विषय में कुछ न कह कर प्रसङ्गवशात् केवल रामचन्द्रिका के विषय में श्रीयुत् मिश्रबन्धुकृत हिन्दी नवरत्न में से धन्यवाद पूर्वक कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किये देता हूं। आशा है कि सहृदय काव्य-कुशलजन उतनेहीसे परम सन्तोष प्राप्तकर लेंगे।

"रामचन्द्रिका को केशवदास ने सं० १६५८ वि०में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंहजी ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है। केशवदासजी ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरंभ किया है। इन्होंने रामकी बाल-लीला बिल्कुल नहीं कही। केशवदास को वाल्मीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया था। उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्टदेव माना। विश्वामित्र के अयोध्या प्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ाही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जाना जाता है कि राजाओं की सभा कैसी होती थी। तुलसीदासजी ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है। परन्तु केशवदासजी नित्य सभाएँ देखते थे, सो वह समें गलती कैसे करते? इन्होंने विमति से सीता-स्वयंवरमें एक शंका उठाई है,परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

'रावण, बाण महाबली जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु कर्षि हैं, ताको कहाँ विचार!॥'

यह शंका उठानी न चाहिए थी, क्योंकि जो व्यक्ति पहले धनुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जानकीजी उसीको व्याही जातीं और प्रणपूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे चाहे सैकड़ों

को उद्गमस्थल न समझ कर मैं उन्हें प्रधान कवि ही नहीं, वरन् हिन्दी-साहित्य का प्रथम आचार्य समझता हूँ। इसका कारण मेरे विचारानुसार भाषा में यही हो सकता है, जो संस्कृत में काव्यप्रकाशकार मम्मट, दशरूपककार धनञ्जय, रसगंगाधरकार जगन्नाथ पण्डितराज और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराजका है। इसका कारण है और वह यह है कि इन्हीं कविवर ने भाषा में सर्वप्रथम रीति ग्रन्थ लिख कर, और उत्तमता से लिख कर, भाषा के कवियों का मार्ग कार्यतः सुगम बना दिया। इसलिये इन कविसम्राट् को "उद्गम-स्थल" कहना मेरे विचारानुसार इनका अपमान करना है। उपर्युक्त दोहे का उत्तरार्द्ध यदि आजकल के क्षण-जन्मा कवियों के विषय में चरितार्थ किया जाय तो हो सकता है, परन्तु सूर-तुलसी और केशव से आरम्भ करके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल तक ऐसे ऐसे धुरन्धर कवीश्वर भाषा में ऐसी ऐसी अनूठी काव्य रचना कर गए हैं कि जिनके रस का अनुभव करके भावुकजन स्वर्ग-सुधारस को भी तुच्छ समझते हैं। अतएव उक्त दोहे का उत्तरार्द्ध मेरी समझ से प्रलापमात्र है।

कवि-कुल-गौरव केशवदासजी के जाति-जन्मादि के विषय में मैं भी दीनजी के कथन से सहमत होकर कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि उस विषय में श्रीयुत मिश्रबन्धु महाशयों ने बड़ी खोज-ढूँढ़ के साथ 'हिन्दी नवरत्न' में बहुत अच्छा विवेचन किया है। हाँ, एक बात यहाँ पर मैं अवश्य कहूँगा कि केशव का यह प्रेतपक्ष नितान्त कवि-कल्पना-प्रसूत है।

महाकवि केशवदासजी के चारों ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं। तथापि एक विज्ञानगीता को छोड़ कर चाहे रसिकप्रिया

देखिये या कविप्रिया, अथवा रामचन्द्रिका,—आनन्द अनोखा ही पाइयेगा। यहां पर मैं रसिकप्रिया या कविप्रिया के विषय में कुछ न कह कर प्रसङ्गवशात् केवल रामचन्द्रिका के विषय में श्रीयुत् मिश्रबन्धुकृत हिन्दी नवरत्न में से धन्यवाद पूर्वक कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किये देता हूं। आशा है कि सहृदय काव्य-कुशलजन उसनेहीसे परम सन्तोष प्राप्तकर लेंगे।

"रामचन्द्रिका को केशवदास ने सं० १६५८ वि०में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंहजी ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है। केशवदासजी ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरंभ किया है। इन्होंने रामकी बाल-लीला बिल्कुल नहीं कही। केशवदास को वाल्मीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया था। उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्टदेव माना। विश्वामित्र के अयोध्या प्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ाही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जाना जाता है कि राजाओं की सभा कैसी होती थी। तुलसीदासजी ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है। परन्तु केशवदासजी नित्य सभाएँ देखते थे, सो वह इसमें गलती कैसे करते? इन्होंने विनति से सीता-स्वयंवरमें एक शंका उठाई है, परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

'रावण, बाण महाबली जानत सब संसार।
जो वोऊ धनु कर्षि हैं, ताको कहाँ विचार? ॥'

यह शंका उठानी न चाहिए थी, क्योंकि जो व्यक्ति पहले धनुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जानकीजी उसीको ब्याह दी जातीं और प्रणपूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे चाहे सैकड़ों

मनुष्य धनुष चढ़ाया करते, परन्तु उनसे और राजा जनक के प्रण से कोई सम्बन्ध न होता। रावण के धनुष न उठा सकने पर उसका बाण से यह बहाना करना कि "मैं तो इसे आज़मा चुका और पल भर में उठा लूंगा, अब कुछ आप भी तो कर दिखाइए" बड़ा ही उत्तम है। वैसेही बाण का बहाना भी देखने योग्य है। केशवदासजी कथा के अमुख्य वर्णनों के लिए न ठहर कर, तुरन्त मुख्य कथा का वर्णन करने लगते हैं, यह इनमें बड़ा गुण है। इन्होंने ज्योनारमें गाली बड़ीही उत्तम गवाई है, और परशुराम व रामके झगड़ेके समय महादेव को बुला कर अच्छा निबटेरा करा दिया। और जब भरत राम को वन से फेरने गये थे, उस समय भरत को भागीरथीजी से समझवा दिया। यह भी झगड़ा निबटाने का अच्छा ढंग है। यद्यपि इस स्थान पर तुलसीदासजी का काव्य अपूर्व आनन्द देता है। केशवदास ने विभीषण की कठोर बातों पर रावण को क्रुद्ध कराया है। जब अंगद रावण से बसीठी करने गया था, तो उस समय रावण ने उसे मिला लेने का पूरा प्रयत्न किया। रावण के योद्धाओं का बड़ा उत्तम परिचय दिया गया है। जब रावण ने कुम्भकर्ण से कठोर बात कही, उस समय मन्दोदरी ने अपने तीनों लड़कों को पुकार कर कहा कि तुम्हारे पिता भैयों से भिड़ते हैं, तुम उन्हें क्यों नहीं समझाते? इसके पीछे उसने कुम्भकरण की प्रशंसा की। मन्दोदरी का बातों से डर कर चित्रशाला में भागना और अंगद द्वारा उसकी दुर्गति होना और तब रावण का यह छोड़ देना परम स्वाभाविक है। इन सब वर्णनों की उत्तमता देख कर केशवदास की अपूर्व कवित्व-शक्ति की जितनी प्रशंसा, थोड़ी है।

रामचन्द्रिका ग्रंथ भाषा-काव्य का शृंगार है। ऐसा रोचक ग्रन्थ भाषा-साहित्य में सिवा तुलसीकृत रामायण के एक भी नहीं है। इस ग्रन्थ में यद्यपि गणनामें कविप्रियासे उत्तम छन्द अधिक नहीं है, परन्तु इसमें एक उत्तम कथा भी वर्णित है, इसी कारण इसकी रोचकता बहुत बढ़ गयी है। इसे एकबार उठा कर रामचन्द्र के लंका जीत कर अयोध्या लौटने तक बिना पढ़ लिए पुस्तक रखने का चित्त नहीं चाहता। इस ग्रंथ में केशवदास छन्द इतनी शीघ्रता से बदलते गये हैं कि वे कहीं अरुचिकर नहीं होते।"

बस, इससे अधिक जानने के लिये 'हिन्दीनवरत्न' का अवलोकन करना चाहिये।

अब मैं केशव-कौमुदी अर्थात् रामचन्द्रिका सटीक पूर्वार्ध के विषय में अपना निराला मत प्रकट करता हूं। जबकि हिन्दी-साहित्य-सेवा से मादृश आलस्यपुञ्ज जन एक दम से हटे हुए हैं, तब सदाशय लाला भगवानदीनजी कमर कसकर निरन्तर बहुत कुछ किया करते हैं। यह बड़े ही सन्तोषकी बात है। मेरे विचार से रामचन्द्रिका पूर्वार्धकी टीका बहुत अच्छी हुई है, और मेरा अनुरोध है कि सहृदय दीनजी इसका उत्तरार्ध भी शीघ्र ही सुलभ कर देंगे। इस (केशवकौमुदी) के गुणदोष का विवेचन तो सज्जन समालोचक ही मार्मिकता से कर सकेंगे और ऐसी ही आशा श्रीयुत लालाजी ने भी प्रकट की है। अतएव मैं इस गुणदोष-प्रदर्शन के झगड़े में न पड़ कर केवल इतनाही कह देना अलम् समझता हूँ कि मेरे विचारानुसार टीका अच्छी हुई है। इसमें दोषों का रहना कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि दोषमय तो यह संसार ही है, परन्तु मेरे लिये सब गुण ही गुण हैं। यहां तक कि मुझे तो दोष भी गुण ही दिखाई देते हैं।

इस विषय में एक मार्मिक कवि का यह कथन बहुत ही उपयुक्त जान पड़ता है कि—

"गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने, दुर्जनमुखे,
गुणा दोषायन्ते, तदिदमपि नो विस्मयपदम् ।
यथा जीमूतोऽयं लवणजलधेर्वारि मधुरं,
फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुस्सहपरम् ॥"

मेरे इस कथन का कुछ यह अभिप्राय नहीं है कि श्रीयुत आचार्य्य की टीका सर्वथैव निर्दोष होगी । हो, दोष भी हों, परन्तु यहां तो गुणमात्र का ग्रहणही स्वभावसिद्ध है। क्योंकि जिस फूल से मधुकर रस लेता है, तितली उसी से विष ग्रहण करती है और बालक जिस स्तन का दुग्ध पान करता है, उसीमें यदि जोंक लगा दी जाय तो वह रुधिर का ही पान करेगी। अतएव मैं केवल गुणमात्र का आनन्द लेकर दोषोद्घाटन का काम सुज्ञ समालोचकों के लिये छोड़ देता हूं।

अन्त में कुवलयानन्दकार की इस अनूठी उक्ति को उद्धृत करके अपने कथन को मैं मधुरेण समापयेत् करता हूं।

"गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्षेणाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥"

अलमतिविस्तरेण ।

रसिकानुगामी,

किशोरीलालगोस्वामी

प्रकाशक के दो शब्द

हिन्दी-साहित्य-संसार में कविवर केशवदासजी का जो स्थान है तथा उनकी रचनाओं में रामचन्द्रिका का जो सम्मान है, वह हिन्दी-भाषा-भाषियों से अविदित नहीं। अपने महत्त्व और उत्कर्ष के ही कारण इस ग्रन्थने हिन्दी-साहित्य की प्रायः सभी ऊँची परीक्षाओं के पाठ्य-ग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान पाया है और इस कारण से ही हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में इसकी कई टीकाएँ विद्यमान हैं। किन्तु, खेद है कि ये सभी टीकाएँ, पुरानी ढंग की और ब्रजभाषा में होने के कारण, विद्यार्थियों और साधारण पाठकों को केशवकी कविता का असली मज़ा चखाने में असमर्थ-सी हैं।

इसी कमी की शीघ्र पूर्ति करने के लिए, हमारे पास हिन्दी-साहित्यके लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों और साहित्य-प्रेमियों के अनेक आग्रह-सूचक पत्र तभी से आरहे हैं जब से इस ग्रन्थ-माला के प्रथम पुष्प, बिहारी बोधिनी का साहित्य-क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। इस कारण से ही अन्यान्य उत्तम ग्रंथों का प्रकाशन रोककर प्रस्तुत टीका इतनी शीघ्रताके साथ प्रकाशित करके आपलोगों के सम्मुख लायी गयी है। इस बात पर प्रायः सभी किसीने ज़ोर दिया है कि टीका शुद्ध पाठ-सहित, सरल, सुबोध तथा इस ढंग की होनी चाहिए जो साहित्य-सम्मेलन आदिकी परीक्षाओं के परीक्षार्थियों के लिये अधिक उपयोगी हो और जिसमें पुस्तक में समाविष्ट सभी ज्ञातव्य बातों का पूरा विवेचन और स्पष्ट व्याख्या हो।

प्रस्तुत टीका में उपर्युक्त गुण आये हैं या नहीं, या केशव-काव्य-सुधा-पिपासुओं की कुछ भी प्यास बुझा सकेगी या नहीं, इसकी परीक्षा काव्य-मर्मज्ञ जन स्वयं करें। इस पर हमें कुछ वक्तव्य नहीं। यदि टीका वस्तुतः [illegible] के लिये उपयोगी प्रतीत हुई, और यदि इससे 'कठिन

के प्रेत केशव को समझने में साधारण पाठकों को कुछ भी विशेष सहायता मिली तो हम अपना प्रयत्न और टीकाकार की इतने दिनों की साहित्य-सेवा सफल समझेंगे।

[illegible]

उनका प्रथम कारण है पुस्तक का अतिशीघ्र मुद्रण और दूसरा, प्रेसवालों की कृपा। अगले संस्करणमें ये अशुद्धियाँ भी सुधार दी जायँगी। १४० वें पृष्ठ में एक अशुद्धि यह रह गयी है कि उस पृष्ठ की १८ वीं पंक्तिके बादकी पंक्ति, मूलसे, १४१वें पृष्ठके आदि में रखदी गयी है। जिन पाठकगण कृपया इसे सुधार लें। पुस्तक का उत्तरार्द्ध भी, जिसमें पूर्वार्द्ध की विशेषताओं के अतिरिक्त लक्षणा, व्यञ्जना और ध्वनि इत्यादि विषयों का भी विवेचन रहेगा, यथासाध्य शीघ्र प्रकाशित होगा।

मालाके द्वितीय ग्रन्थारम्भमें इसका उद्देश्य बतलाते हुए हमने स्थिरग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिये हिन्दी हितैषियों से एक अपील की थी। हर्ष है कि उस अपीलका अच्छा प्रभाव पड़ा और उसके उत्तर में बहुत से सज्जनों ने नाम लिखाये। फिर भी, वर्तमान संख्या किसी प्रकार सन्तोषजनक नहीं कही जासकती। अतएव मातृभाषानुरागियों से पुनः प्रार्थना है कि यदि वे प्राचीन सुकवियों की सुधामयी वाणी का रसास्वादन करना चाहते हों, यदि वे ब्रजभाषाकी प्रकृत माधुरी का मज़ा चखना चाहते हों, यदि वे आधुनिक कवियों और सुलेखकों के साहित्यिक ग्रन्थ-रत्नों का अवलोकन करना चाहते हों, तो आजही ।।।) प्रवेश-शुल्क भेज, स्थायी-ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखाकर हमारे उत्साह और गौरव को बढ़ावें।

(सरस्वती वंदना)

मूल—(दंडक) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई। देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न केहू लई। भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है केशोदास केहू ना बखानी काहू पै गई। वर्णै पति चार मुख पूत वर्णै पांच मुख नाती वर्णै षटमुख तदपि नई नई ॥ २ ॥

शब्दार्थ—बानी=सरस्वती। उदारता=दातारपन, फैयाज़ी। उदार=बड़ी। महान्। हारे=थके। भावी=भविष्य। भूत=गत, गुज़रा हुआ। वर्तमान्=मौजूद। तदपि=तौभी।

भावार्थ—कहो तो भला ऐसी बड़ी बुद्धि किसकी हुई है जिससे संसार की रानी श्री सरस्वतीजी की उदारता कही जाय (अर्थात् ऐसी बुद्धि किसी की नहीं कि सरस्वतीजी की पूर्ण प्रशंसा कर सके)। देवता, मशहूर सिद्ध, बड़े बड़े ऋषि, और बड़े बड़े तपस्वी लोग कह कह कर थक गये, पर किसी ने पूरी न कह पाई। भूतकाल के संसारी लोग कह गये, वर्तमान् काल के कह रहे हैं और भविष्य काल के कहेंगे तौभी (केशोदास कहते हैं) पूरी प्रशंसा न हुई और न हो सकेगी। (लौकिक वा अन्य लोगों की तो बात ही क्या स्वयं उनके स्वामी जो उनकी उदारता को भली भांति जान सकते हैं) पति (ब्रह्मा) चार मुखसे, पुत्र (महादेव) पांच मुखसे, और नाती (षड़ानन) छः मुख से वर्णन करते हैं तो भी

भावार्थ—जैसे हाथी का बच्चा सब काल में (हर एक दशा में) कमलनाल को तोड़ डालता है वैसे ही श्री गणेशजी अकाल के बड़े बड़े और कठिन और (कराल) भयंकर दुःखों को तोड़ डालते हैं। (और) विपत्ति को, कठकरके, पुराने के पत्तों के समान (हरत) खींचकर तोड़ डालते हैं, और पाप को दबा कर पाताल को भेज देते हैं। (और) अपने दास के शरीर से, कलंक का चिह्न दूर करके, शिव के मस्तक पर रहने वाले चंद्रमा के समान (कलंक रहित और वंदनीय) करके उसकी (सदैव) रक्षा करते हैं। (और) सन्मुख होते ही संकट की जंजीरों को तोड़ देते हैं। (ऐसा दुःख-निवारक, पाप-हारक, और दास-रक्षक समझ कर) दसों दिशाओं के लोग श्री गणेश जी का मुँह ताका करते हैं—अर्थात् कृपा के आकांक्षी रहते हैं।

विशेष—गणेश को 'गजमुख' कहने के कारण उनके सब कामों को हाथी के बच्चे के कामों के समान वर्णन किया। गणेश के आगे से चंद्रमा कलंकित है, और गणेश के अनुग्रह ही से केवल द्वितीया का चंद्रमा निष्कलंक है। इस छंद में कोई कोई 'दशमुख' शब्द का अर्थ 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश' लगाते हैं—क्योंकि ये तीनों मिलकर 'दशमुख' हैं, अर्थात् ब्रह्मा=चतुर्मुख, विष्णु=षड्मुख, शिव=पंचमुख। ओंकार—ब्रह्मा, परिकरमुख।

(सरस्वती वंदना)

मूल—(दंडक) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई। देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध कहि कहि हारे सब कहे न कै लई। भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है केशोदास कहे ना बखानी काहू पै गई। वर्णे पति चार मुख पूत वर्णे पांच मुख नाती वर्णे षटमुख तदपि नई नई॥ २॥

शब्दार्थ—बानी=सरस्वती। उदारता=दातारपन, फैयाजी। उदार=बड़ी। महान्। हारे=थके। भावी=भविष्य। भूत=गत, गुज़रा हुआ। वर्तमान्=मौजूद। तदपि=तौभी।

भावार्थ—कहो तो भला ऐसी बड़ी बुद्धि किसकी हुई है जिससे संसार की रानी श्री सरस्वतीजी की उदारता कही जाय (अर्थात् ऐसी बुद्धि किसी की नहीं कि सरस्वतीजी की पूर्ण प्रशंसा कर सके)। देवता, मशहूर सिद्ध, बड़े बड़े ऋषि, और बड़े बड़े तपस्वी लोग कह कह कर थक गये, पर किसी से पूरी न कह पाई। भूतकाल के संसारी लोग कह गये, वर्तमान् काल के कह रहे हैं और भविष्य काल के कहेंगे तौभी (केशोदास कहते हैं) पूरी प्रशंसा न हुई और न हो सकेगी। (लौकिक या अन्य लोगों की तो बात ही क्या स्वयं उनके संबंधी जो उनकी उदारता को भली भांति जान सकते हैं) पति (ब्रह्मा) चार मुखसे, पुत्र (महादेव) पांच मुखसे और नाती (षड्ानन) छः मुख से वर्णन करते हैं तौभी

कुछ न कुछ नवीन उदारता उनको कहने के लिये मिलती ही जाती है-अर्थात् वे भी पूर्णतया नहीं कह सकते, तब हम मनुष्यों की क्या गति है कि उनकी उदारता का कुछ भी वर्णन कर सकें।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति।

(श्रीरामवंदना)

मूल—(दंडक) पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बनावैं न बनावैं और उक्ति को। दरशन देत जिन्हैं दरशन समुझै न नेति नेति कहै वेद छांड़ि आन-युक्ति को। जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को। रूप देहि माँपिमाहि गुण देहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को॥ ३॥

शब्दार्थ—पूरण=सम्पूर्ण, सब। परिपूरण=सब प्रकार पूर्ण। उक्ति=बात, कथन। दरशन=षट्शास्त्र। अनुदिन=रोज रोज, नित्य। पुनरुक्ति=दोबारा कहने का दोष। अणिमा=वह सिद्धि जिससे छोटे से छोटा रूप धारण किया जा सकता है। गरिमा=वह सिद्धि जिससे बड़ों से बड़ा शरीर धारण करते हैं। महिमा=वह सिद्धि जिससे बड़ा से बड़ा रूप धर सकते हैं। मुक्ति=जीवन मरण से छुटकारा।

भावार्थ—सब पुराण (वेद) और पुराने लोग जिन्हें और कथन छोड़ सब प्रकार पूर्ण बतलाते हैं, (और

मूल— मुनि)—नगस्वरूपिणी छंद—भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै। न राम देव गाइहै। न देवलोक पाइहै ॥ १६ ॥

भावार्थ—तू भला बुरा नहीं विचारता, व्यर्थ बातें कहा सुना करता है। (यह बात निश्चयहै कि) जब तक राम देव का गुण नहीं गावैगा, तबतक कदापि देवलोक (बैकुंठ) की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मूल—षट्पद छंद—बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीन्हों। मारि न मारयो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हों। जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी। दान सत्य सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी। मन लोभ मोह मद काम वश भये न केशवदास भणि, सोइ परब्रह्म श्री राम हैं अवतारी अवतारमणि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—मुरे=मुड़े, पीछे हटे। संग्राम=युद्ध। लीक=प्रथा, रीति। ओपी=प्रकाशित हैं। भणि=कहताहै। अवतारी=अवतार धारण किये हुए। अवतारमणि=ईश्वर के सब अवतारों में श्रेष्ठ।

भावार्थ—एकबार जो कुछ कह दिया, फिर दोबारा उस विषय में कभी कुछ नहीं बोले (जोकुछ कहा सो कर डाला। वचन का हेरफेर नहीं किया), जिसको एक बार दिया उसे फिर कुछ नहीं दिया (पहली ही बार इतना दे दिया कि दोबारा देने की जरूरत न रही) एक बार शत्रु को मारकर दोबारा फिर नहीं मारा (एकही बार में उसका काम

है तथापि तेरे समझाने के लिये) हम उस हरि का माहात्म्य अक्षरों (शब्दों) द्वारा वर्णन करेंगे। वह हरि संसार के लिये रक्षा का स्थान है।

मूल—प्रिया छंद—सुखकंद हैं। रघुनंद जू॥
जगयों कहै। जगवंद जू॥ १३॥

शब्दार्थ—कंद=मूल, जड़। रघुनंद=रामचंद्र।

भावार्थ—संसार तो यों कहता है कि श्रीरामचंद्र जू सुख के मूल कारण हैं और संसार भर से वंदना किये जाने योग्य हैं।

मूल—सोमराजी छंद—गुनो एक रूपी, सुनो वेदगावै।
महादेव जाको, सदा चित्त लावै॥ १४॥

भावार्थ—सरल है।

मूल—कुमारललिता छंद—विरंचि गुन देखै। गिरा गुनन लेखै। अनंत मुख गावै। विशेषहि न पावै॥ १५॥

शब्दार्थ—विरंचि=ब्रह्मा। गिरा=सरस्वती। अनंत=शेषनाग। विशेष=निर्णय, निश्चय।

भावार्थ—ब्रह्मा जिनके गुणों को देखा करते हैं (पर पूर्णतया कह नहीं सकते) सरस्वती जिनके गुणों का लेखा किया करती है (पर ठीक गणना नहीं बता सकती) शेष नाग जिनके गुणों को हजार मुख से कहा करते हैं तो भी अंत में निश्चय नहीं कर सकते कि उनके गुण कितने हैं।

अलंकार—संबंधातिशयोक्ति

नेत्र भौंरे का सा आचरण करते हैं (जैसे भौंरा कमल पर आसक्त होताहै वैसेही केशव की बुद्धि रामचरणों पर प्रेम करतीहै)।

अलंकार—रूपक।

मूल—चतुष्पदी छंद*—

जिनको यशहंसा, जगत प्रशंसा; मुनिजनमानस रंता।
लोचन अनुरूपनि श्यामसरूपनि अंजन अंजित संता॥
कालत्रयदरशी निर्गुण—परशी होत विलंब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै॥२०॥

शब्दार्थ—मानस=(१) मन (२) मानसरोवर। रंता=अनुरक्त, प्रेमी। अनुरूप=योग्य, मौजूं। अंजित=अंजन लगाकर। पुरातन=प्राचीन।

भावार्थ—(मुनि का उपदेश सुनकर केशव की प्रतिज्ञा) जिनके यशरूपी हंस की संसार भर में बड़ाई होती है, जो यशरूपी हंस मुनियों के मनरूपी मानसरोवर से प्रेमरखता है, और जिनके श्यामस्वरूप रूपी अंजन को अपने नेत्रों के अनुसार आंखों में आंजकर संतलोग त्रिकालदर्शी और निर्गुण-ब्रह्म को स्पर्शकरनेवाले (सायुज्यमुक्तिलब्ध) होजाते हैं, मैं उन्हीं रामके गुण कहूँगा जिससे सब सुख पाऊंगा और प्राचीन (अनेकजन्मों के संचित) पाप छूट जायेंगे।

अलंकार—रूपक।

(इति प्रस्तावना)

(अथ कथारम्भः)

मूल—दोहा—जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छन्द।
राम चन्द्रकी चन्द्रिका वर्णतहौं बहु छन्द ॥२१॥

शब्दार्थ—ज्योति=प्रकाश, रोशनी। एकरूप=सर्वदा एकसी। स्वच्छन्द=बिना किसीके सहारे। चन्द्रिका=चाँदनी, जोन्ह।

भावार्थ—जिसकी रोशनी सदा एकसी और बिना किसी के सहारेके (जैसे इस हमारे चन्द्रमा की रोशनी सूर्य के सहारे पर निर्भरहै, ऐसी नहीं) सारे संसार में जगमगाती है, उस राम रूपी चंद्रमा की चांदनी (कीर्ति, यश) का अब मैं अनेक प्रकार के छन्दों में वर्णनकरता हूं।

मूल—सोरठा छन्द—शुभ सूरज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति। तिनके सुत भये चारि चतुर चित चारु मति। रामचन्द्र भुवचन्द्र भरत भारत-भुव भूषण। लछिमन अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—कलश=शिरोमणि। चारु=सुन्दर, पवित्र। भुव चन्द्र=पृथ्वी के चन्द्रमा। भारत-भुव=भारतवर्ष, हिंदुस्तान। दीह=दीर्घ, बड़ा। दूषण=विनाशक, संहारक।

भावार्थ—अच्छे सूर्यवंश के शिरोमणि राजा दशरथ जब राजा हुए, तब उनके चार पुत्र हुए जो बड़े चतुर, शुद्ध चित्त और अच्छी मति वाले थे। श्री रामचन्द्रजी तो इस

पृथ्वी के चन्द्रमा ही थे, भरत जो इस भारत वर्ष के भूषण थे और लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी दानवों के बड़े बड़े दलों को विनाशकरने वाले थे।

अलंकार—रूपक। ×

मूल—घत्ता छन्द—सरजू सरिता तट नगर बसै वर, अवधनाम यशधाम धर। अवओघ विनाशी सब पुरवासी, अमरलोक मानहु नगर॥ २३॥

शब्दार्थ—यशधाम=सुयश का घर, मशहूर, प्रसिद्ध। धर=धरा, पृथ्वी। अघ=पाप। ओघ=समूह।

भावार्थ—सरजू नदी के तीर पर एक सुंदर नगर बसता था, जिसका नाम 'अवध' (अयोध्या) था। वह नगर पृथ्वी भर में प्रसिद्ध था (और है)। वहां के सब पुरवासी लोग पापों के समूह को नाश करनेवाले थे (पापकरते ही न थे) इसी कारण वह नगर देवलोकके समान था।

(विश्वामित्र का अवधागमन) ×

मूल—छप्पय छन्द—साधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल। दान कृपान विधान पदय कीन्हो भुवमण्डल। कै मन अपने साध जीति जग इन्द्रियगण जाते। तपबल पाई देह भये क्षत्रियते क्षत्रिपति। तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अतीतानागतनि गुनि। तहँ अद्भुत गति पगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि॥ २४॥

शब्दार्थ—साधि=अपने काबू में करके। कृपान विधान=युद्ध। पदय=पददलित। जग=चंचल। अतीतानागतनि (अतीत—आगत—नि)=भूतकाल और आगम काल दोनों को।

हाथी सरजू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अत्यंत पतितपावन है। बहुत जीव इसके जल में सप्रेम स्नान करके, सब-यहा तक कि सुअर तक-सदेह स्वर्ग को चले जाते हैं।

विशेष—इन दोनों छंदों में विरोधाभास अलंकार है। इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं।

(राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन)

मूल—नवपदीछंद—जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। वार न दलदल। अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन देखिय बंदन॥ २८॥

शब्दार्थ—वारन=हाथी। वार न=देर नहीं लगती। दलते हुए, मारने में। चरचे=लगाये हुए। मुंडन=हुए। बंदन=सेंदुर।

भावार्थ—जहाँ तहाँ बड़े बड़े मदमाते हाथी (में बँधे हुए) शोभा देते हैं। वे ऐसे बली हाथी हैं कि सेना दलते हुए कुछ देर ही नहीं लगती। अंगों में चंदन लगा हुआ है। और सिरों पर सिंदूर हुआ देख पड़ता है।

मूल—दो०—दीह दीह दिग्गजन के केशव दीन्हे। दशरथ हू दिगपालन उपमा।

मति वाले (विश्वामित्र)।

भावार्थ—सरल ही है

(सरजू का वर्णन)

मूल—प्रज्झटिका छंद--अति निपट कुटिल गति यदपि आप। तउ देत शुद्ध गति छुवत आप। कछु आपुन अध अधगति चलति। फल पतितन कहँ ऊरध फलति॥२६॥ मद-मत्त यदपि मातंग संग। अति तदपि पतित पावन तरंग। बहु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह। सब जात स्वर्ग सूकर सदेह॥२७॥

शब्दार्थ—आप=स्वयं, खुद। आप=पानी, जल। आपुन=खुद। अध=नीची (नीचे की ओर)। पतितन=पापियों। ऊरध=(ऊर्ध्व) ऊंचा। मदमत्त=(१) मस्तक से बहते हुए मदके कारण मस्त (२) शराब से मस्त। मातंग=(१) हाथी, (२) चांडाल। सनेह=(१) सप्रेम (२)तैलयुक्त। सूकर=(१) अच्छे काम करने वाले (२)सुअर। सदेह=शरीरसहित।

भावार्थ—यद्यपि आप स्वयं तो टेढी चाल वाली है (नदियों की टेढी मेढी चाल होती ही है) तो भी औरों को पानी छूते ही (स्पर्श मात्र से) सुधी गति (अच्छी गति=स्वर्गवास इत्यादि) देती है। आप तो खुद नीचे की ओर ही चलती है (नदी नीचे को बहती है) परंतु पापियों को ऊंचे जाने का फल देती है (देवलोक भेजती है)।

यद्यपि मद से मस्त हाथियों को संग रखती है (मद मांसे

हाथी सरजू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अत्यंत पतितपावन है। बहुत जीव इसके जल में सप्रेम स्नान करके, राव-यहाँ तक कि सुअर तक-सदेह स्वर्ग को चले जाते हैं।

विशेष—इन दोनों छंदों में विरोधाभास अलंकार है। इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं।

(राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन)

मूल—गजपतीछेर—जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बर बारन बार न दलत। भंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—बारन=हाथी। बार न=देर नहीं लगती। दल दलते हुए, मारने में। चरचे=लगाये हुए। भुरके=छिड़के हुए। बंदन=सेंदुर।

भावार्थ—जहाँ तहाँ बड़े बड़े मदमाते हाथी (गजशाला में बँधे हुए) शोभा देते हैं। वे ऐसे बली हाथी हैं जिन्हें सेना की सेना दलते हुए कुछ देर ही नहीं लगती। उनके सब अंगों में चंदन लगा हुआ है। और सिरों पर सिंदूर छिड़का हुआ पड़ता है।

दीह दिग्गजन के केशव मनहुँ कुमार।
तिन्हें राजा दशरथहिं दिगपालन उपहार ॥२९

बड़े। कुमार=पुत्र। उपहार=

भेंट, नज़र।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि वे हाथी बड़े बड़े हैं, जान पड़ता है कि वे दिग्गजों के लड़के हैं और दिक्पालों ने उन्हें राजा दशरथ को भेंट में दे डाला है।

अलंकार-उत्प्रेक्षा।

(बाग-वर्णन)

मूल—अरिल्लछंद—देखि बाग अनुराग उपजिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सजिय। राजति रति की सखी सुबेषनि। मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि॥ ३०॥

शब्दार्थ—कल=मनोहर, मधुर। सुबेषनि=सुन्दर भेस वाली। बहति=पहुँचाती है। मनमथ=कामदेव।

भावार्थ—बाग को देखकर आपसे आप अनुराग पैदा होता है। मधुर ध्वनि से कोयल बोलती हुई शोभा दे रही है। (अपने सुन्दर भेस के कारण) रति की सखी सी जान पड़ती है, (और मधुर स्वर से) ऐसा जान पड़ता है मानो लोगों को काम का संदेसा सुना रही है।

विशेष—जिस समय विश्वामित्र अयोध्या में आये थे उस समय बसंत ऋतु न थी। परंतु यह काव्य-नियम है कि बाग के वर्णन में उसका ऐसा वर्णन किया जाता है मानो बसंत या वर्षा काल में देख देख कर उसकी छटा वर्णन कर रहे हों, क्योंकि इन्हीं दो ऋतुओं में बाग आदिकादि अपनी पूर्ण शोभा से संपन्न होते हैं।

अलंकार-उत्प्रेक्षा ।

मूल—अरिल्लछंद—फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत । मोदत महा मोद उपजावत । उड़त पराग न चित्त उड़ावत भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—फूल=हर्ष । मोदत=सुगंध फैलाते हुए । मोद=आनंद । पराग=पुष्प-धूलि । उड़ावत=उड़ते हैं । भ्रमावत=फिरते हैं ।

भावार्थ—फूल फूल कर वृक्षगण बागमें सैर करनेवालों के हर्ष को बढ़ाते हैं, और अपनी सुगंध फैला कर उनके हृदय में अत्यंत आनंद पैदा करते हैं । (यह) फूलों का पराग नहीं उड़ाता है, वरन् लोगों के चित्त हैं जो उड़ रहे हैं । (ये भ्रमर नहीं हैं जो भ्रम रहे हैं वरन् लोगों के जीव हैं जो भौंरा बनकर इधर उधर घूम रहे हैं ।

अलंकार-शुद्धापह्नुति ।

मूल—पादाकुलकछंद*—सुभसरसोभै । मुनि मन लोभै । सरसिज फूले । अलि रस भूले ॥ ३२ ॥ जलचर डोलैं । बहु खग बोलैं । बरनि न जाहीं । उर उरझाहीं ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—सर=तालाब । सरसिज=कमल । अलि=भौंरा । खग=पक्षी । जलचर=जल में रहने वाले जीव मछली इत्यादि ।

भावार्थ—(बाग के मध्य में) एक सुन्दर तालाब शोभा दे रहा है जो मुनियों के मन को भी लुभा लेता है । उसमें

* [illegible]

मूल—चतुष्पदीछंद। पुनि गर्भसँयोगी रतिरस भोगी जग जन लीन कहावै। गुणि जगजन लीना नगर प्रवीना अति पति के मन भावै। अति पतिहिं रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै। अब यों दिनरातिन अद्भुत भांतिन कविकुल कीरति गावै॥ ३५॥

शब्दार्थ—रतिरस=(१) प्रेम (२) स्त्री-पुरुष संभोग सुख। पति= (१) मालिक, राजा। (२)स्वपति, अपना खाविंद। भावै=(१) चित्तको प्रसन्न करती है (२)संभोग सुख देती है।

भावार्थ—वह फुलवारी फल गर्भा है और प्रेमी-जनों से सदा भरीरहतीहै—अर्थात् सब लोग वहां सैरकरने को आते हैं। (कन्या पक्षमें-गर्भवती होने पर भी अनेक जन के सम्भोग-सुख में लीन रहती है—यही विरोध है)। नगर के गुणीजन और नगर के प्रवीन लोग उस फुलवारी में फिरते हैं और वह अपने मालिक (राजादशरथ) के मन को खूब भाती है। (कन्या पक्षमें-संसार भरके गुणियों नगर निवासियों के प्रेम में लीन रहकर भी अपने को प्यारी है—यही विरोध है)। राजा का चित्त इस फुल-में बहुत रमता है यहां तक कि वह वाटिका राजा के [illegible] डालती है—अर्थात् इस फुलवारी की उद्दीपक [illegible] राजा का मन कामवश होता है और वे [illegible] में प्रेमालाप [illegible] लगाते हैं, इसी [illegible]) इस फुलवारी पर

बड़ा प्रेम रखती हैं और राजा समेत बार बार इस
में भ्रमण करने को आती हैं—और इस प्रकार यह
अपनी सौतिनों के चित्त में भी प्रेम की मात्रा बढ़ाया
है। (कन्या पक्ष में—पति को अपने में रमाना और
का प्रेम बढ़ाना विरोध है) इसी प्रकार यह फुलवारी
दिन अद्भुत कार्य किया करती है जिस से अनेक
का यश गाया करते हैं।

नोट—[illegible] विरोधाभास अलंकार है। अद्भुत रस है।
[illegible] महापक [illegible] रस है। [illegible] तरह [illegible] शक्ति, अर्थों [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible] के लिये मननीय है।

मूल—चौबोला छन्द—संग लिये ऋषि शिष्यन
पावक से तपतेजनि सने। देखत बाग तड़ागन भले
अवधपुरी कहँ लले॥ २६॥

शब्दार्थ—यादि—(मुनि पर) विश्वामित्रजी। घने=
पावक=अग्नि। तप तेजनि सने=तप तेज युक्त।

भावार्थ—[illegible] ही है।

(अवध पुरी—नगर—वर्णन)

[illegible] अवास। [illegible]
[illegible] प्रकास॥ २७॥

[illegible] शोभा [illegible] नगर, घर।

शब्दार्थ—[illegible] और—

...ार आ...शोभै=शोभा दे। ...व विधि क्षम बसत
...ा...ार्थ—...
...ा...कायें फहरा रही हैं और (... ...=डरते हैं, ईर्ष्या
...ा...रकों) शोभा को प्रकट कर ... । क्षम=योग्य ।
...ल—आभीर छन्द—अति सुन्दर ...
...रहत पल आयु । परम ... के बने हैं इ-
...ी जानि ॥ ३८ ॥
...ाब्दार्थ—साधु=सीधी, जो किसी ... ...ी बात ही
...दुःख न दे । तपोमय=तपस्विनी । ...यौंकि मुनि
...ार्थ—(पताकायें कैसी हैं कि) ... ...करते हैं)
...बहुत सीधी हैं । (परंतु) आधा ... ...ा होता
...(उनके फुरेरे सदैव चलायमान रहते हैं) ... ...द्वार
...हैं (क्योंकि एक पैरसे रात दिन खड़ी रहती हैं) ... ...मानो
...धारण करने वाली भी हैं (दण्ड धारण करना ... ...होते
...सियों का चिह्न है । पताकाओंके बाँस दण्ड ... ...वन
...अलंकार—विरोधाभास, साधु में चंचलता विरोध है ... ...ो-
...मूल—हरिगीत छन्द—शुभ द्रोण गिरि गण ... ...या
...पर उदित ओषधि सी गनौ । बहु वायु वश वारिद ... ...हैं
...जरहिं दामिनि दुति मनौ । अति किधौं रुचिर प्रताप ...
...यक प्रगट सुरपुर को चली । यह किधौं सरित सुदेश ...
...करी दिवि खेलत भली ॥ ३९ ॥
...ाब्दार्थ—शिखर=चोटी । ओषध=जड़ी बूटी । वारि...
...दल । बहोरहि=लौटा लेजाती हैं । सरित=नदी ।

सुन्दर। मेरी कीन्ही=मेरी बनाई हुई (विश्वामित्र कृत आकाश-गंगा)। दिवि=आकाश।

भावार्थ—(अलंग के पताका-पट) अथवा द्रोणाचल पर्वत के शिखरपर मानो दिव्य जड़ी बूटियों के प्रकाश चमक रहे हैं, अथवा बिजली की ज्योति जो ध्वजाओं के दंडों से उलझ गई है उसी को, बादलों के वशवर्ती होने के कारण, हवा पुनः बादलों की तरफ खेंच रही है; वा रघुवंशियों के प्रचंड प्रताप की अग्नि (पृथ्वीपर न अट सकने के कारण) अब सुरपुर की ओर जा रही है। (और सफेद रंगके पताका-पट) अथवा यह मेरी बनाई हुई कौशिकी गंगा है जो आकाश में लेट रही है, (इस छंद से नगर के घरों का अति ऊँचा होना दर्शाया गया है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, संबंधातिशयोक्ति और संदेह।

मूल—दोहा-जीति जीति कीरति लई शत्रुन की बहु भांति।
पुर पर बांधी शोभिजै मानो तिनकी पांति॥ ४७॥

भावार्थ—(सफेद पताकापट) राजादशरथ ने शत्रुओं को जीत जीत कर उनकी कीर्तियां छीन ली हैं। मानो (ये श्वेत पताका) उन्हीं कीर्तियों की पंक्ति है जो नगर के ऊपर बँधी हुई शोभा दे रही है। (अलंकार—उत्प्रेक्षा)

मूल—त्रिभंगीछंद—सम सब घर शोभैं मुनि मन लोभैं रिद्ध सिद्ध छोभैं देखि सबै। बहु दुंदुभि बाजैं जनु घन गाजैं दिग्गज लाजैं सुनत अबै। जहँ तहँ भूमि पड़ाहीं विघन न बढ़हीं

...ो अमल आरसी रची विरचि

सिरवंदी । नारि=समूह,
...ख धूमनि धूपित=यज्ञों के धुँवा
...हन । हरि=विष्णु । अनुहारि=
...नित, चित्रयुक्त । विश्वरूप=
...रसी=आईना ।

...पर (रत्नजटित) छारदीवारी
...का समूह है । घरों के आंगन,
...त होकर विष्णु की तरह श्याम,
...र में नित्य यज्ञ हवन हुआ
...घर अत्यंत विचित्र चित्रों से
...केशवदास कहते हैं कि वे घर
...संसार भरको देखने के लिये
...आरसी रची है (संसार भर
...) ।

...शाल, राजा दशरथ की
...उनकी जन्म ईश की १४२०
...। ...=म-

धर्मराज मन बुद्धि धनी। बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ-विद्यावर=विद्वान्। कलाधर=कलाओं को जानने वाले। गुणगण=श्रेष्ठ सभी। गणपति=एक एक समूह का प्रधान मनुष्य, अफसर, अधिकारी। पशुपति=अश्वशाला, गजशाला, गोशाला इत्यादि के अधिकारी। सूर=वीर, योद्धा। सेनापति=नायक, दफेदार, हवालदार इत्यादि। बुधजन=बुद्धिमान् लोग। मंगल=मांगलिक पाठ करनेवाले ब्राह्मण। गुरुगण=पाठशालाओं के शिक्षक, गुरु, मुदर्रिस, स्कूलमास्टर। धर्मराज=न्यायकर्ता, जज, मुंसिफ, काज़ी, मुफ्ती इत्यादि। मनसाकर=मनवांछित फल देनेवाला। करुणामय=दयावान्। सुरतरंगिनी=सरयू नदी। शोभसनी=शोभायुक्त।

विशेष—४१ वें छंद में अयोध्या नगर को देवपुरी कह आये हैं। इस कारण 'मुद्रालंकार' में देवपुरी की वस्तुओं की सूचना इस छंद में देते हैं। इस अलंकार को उर्दू में 'तिलस्मतुल्लुग़ात' कहते हैं। क्या उर्दू प्रेमी इतना अच्छा [illegible] इस अलंकार का उर्दू-साहित्य में [illegible] है? उर्दू में चार शब्द तक का निर्वाह देखा गया है, [illegible] निर्वाह किया गया है। अलंक[illegible]

[illegible]

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक्र। विद्याधर=देवविशेष। कलाधर=चन्द्रमा। राजराज=कुबेर। गणपति=गणेश। सुखदायक=इंद्र। पशुपति=महादेव। सूर=सूर्य। सेनापति=षड़ानन। बुधजन=बुद्ध। मंगल=मंगल ग्रह। गुरु=बृहस्पति। धर्मराज=यम। मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु। करुणामय=विष्णु। सुरतरंगिनी=आकाशगंगा।

भावार्थ—(इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान् कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं। सुख देने वाले (मुलायमत और प्रेम से कामलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती। अच्छे २ सेना नायक हैं, पंडित हैं, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं। बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर सरयू नदी भी बहती है।

अलंकार-मुद्रालंकार।

छंद—हीरकछंद-पंडित गण मंडित गुण दंडित मति हैं
क्षत्रियवर धर्म प्रवर कुल समर लेखिये। वैश्य सुजन,
रहित पाप प्रगट मानिये। शूद्र सफाति विप्र
जगत जानिये॥ ४३॥

धर्मराज मन बुद्धि घनी। यहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ-विद्याधर=विद्वान्। कलाधर=कलाओं को जानने वाले। राजराज=श्रेष्ठ क्षत्री। गणपति=एक एक समूह का प्रधान मनुष्य, अफसर, अधिकारी। पशुपति=अश्वशाला, गजशाला, गोशाला इत्यादिके अधिकारी। सूर=वीर, योद्धा। सेनापति=नायक, दफेदार, हवालदार इत्यादि। बुधजन=बुद्धिमान् लोग। मंगल=मांगलिक पाठ करनेवाले ब्राह्मण। गुरुगण=पाठशालाओं के शिक्षक, गुरु, मुदर्रिस, स्कूलमास्टर। धर्मराज=न्यायकर्त्ता, जज, मुंसिफ, काजी, मुफ्ती इत्यादि। मनसाकर=मनवांछित फल देनेवाला। करुणामय=दयावान्। सुरतरंगिनी=सरयू नदी। शोभसनी=शोभायुक्त।

विशेष—४१ वें छंद में अयोध्या नगर को देवपुरी कह आये हैं। इस कारण 'मुद्रालंकार' से देवपुरी की वस्तुओं की सूचना इस छंद में देते हैं। इस अलंकार को उर्दू में 'मिरामतुल्लर्ज़' कहते हैं। क्या उर्दू प्रेमी इतना अच्छा और इतना बड़ा वर्णन इस अलंकार का उर्दू-साहित्य में दिखला सकते हैं? उर्दू में चार शब्द तक का निर्वाह देखा गया है। यहां १६ शब्द तक निर्वाह किया गया है। अलंकार

[illegible]

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक्र। विद्याधर=देवविशेष। कलाधर=चन्द्रमा। राजराज=कुबेर। गणपति=गणेश। सुखदायक=इंद्र। पशुपति=महादेव। सूर=सूर्य। सेनापति=षड्ानन। बुधजन=बुद्ध। मंगल=मंगल ग्रह। गुरु=बृहस्पति। धर्मराज=यम। मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु। करुणामय=विष्णु। सुरतरंगिनी=आकाशगंगा।

भावार्थ—(इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान् कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं। सुख देने वाले (मुलायमत और प्रेम से कामलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती। अच्छे २ सेना नायक हैं, पंडित हैं, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं। बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर सरजू नदी भी बहती है।

अलंकार—मुद्रालंकार।

छंद—हरिकछंद-पंडित गण मंडित गुण दंडित मति राजिवर धर्म प्रचर क्रुद्ध समर लोचिये। विश्व सुहित पाप प्रगट मानिये। शूद्र सकति विप्र भगति नगत जानिये॥ ४३॥

यशवाली है और (चूँकि) सदा चन्द्र सहित है
नित्य वहां रहते हैं) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मा
जी का ललाट है (सरजू तट पर बसी हुई अयोध्या
बालकरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है
द्वितीया के कलंकहीन चंद्र सहित महादेवका ललाट है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुंडलिया—पण्डित अति सिगरी पुरी मनहु
गुप्त। सिद्ध चढ़ी जनु [illegible] अति मूढ़
अमूढ़ देवलगऽदिति ज्यों सोहै। सब शृंगार
मन्मथ मोहै। सधे सिंगार सदेह, सकल सुख
[illegible]। मनो शची विधि रची विविधि विधि [illegible]

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। गूढ़=गुप्त। चढ़ि
मूढ़=मूर्ख। अमूढ़=ज्ञानी। दिति=अदिति (यहाँ ज
[illegible])। सदेह=देह सहित। मन्मथ=कामदेव।
[illegible]। शची=इन्द्रानी।

[illegible] है मानो पुरी
[illegible] हुए हैं

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों) देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो। सब शृंगार किये हुए और सदेह सकल सुखों और शोभाओं से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दोहा—काव्य छंद*—मूलन ही की जहां अधोगति केशव भाइय। होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय। दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में। श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मूलन=जड़ों। अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति। हुताशन=अग्नि। मलिनाइय=मलीनता, मैलापन। दुर्गति=बुरीदशा, अपहुँचपन, दुर्गमत्व। दुर्गन=गढ़ों, किलों। कुटिल गति=टेढ़ी चाल। सरितन=नदियां। श्रीफल=द्रव्य, बेल का फल (उपमान होने के कारण यहां 'फल' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ समझिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि अयोध्या में ही की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधो

* [illegible]

होती है तो केवल वृक्षों की जड़ों ही की होती है। नगर में किसी प्रकार की मलीनता है ही नहीं, यदि है तो केवल होनाग्नि के धुवां ही की है। दुर्गति किसी की नहीं, यदि है तो केवल दुर्गों ही की दुर्गति है अर्थात् दुर्गों के रास्ते ऐसे कठिन हैं कि शत्रु भीतर नहीं आ सकता, और अयोध्या में किसी में भी टेढ़ी चाल नहीं है, यदि है तो केवल नदियों की। श्रीफल (धन) की अभिलाषा किसी को नहीं है (सब सहज ही में धनी हैं), यदि नाम मात्र को किसी को श्रीफल की अभिलाषा है तो केवल कवियों को है (अर्थात् शृंगार वर्णन में कभी कविलोग कुचों की उपमा श्रीफल से दे देते हैं)।

मूल—दो०—अति चंचल जहँ चलदले विधवा बनी न नारि।
मन मोहो कपिराज को अद्भुत नगर निहारि।

शब्दार्थ—चंचल=चलायमान, डोलनेवाला। चलदल=का पत्ता॥ विधवा=(१)पतिहीना, रांड (२)धवा नामक से हीन। बनी=वाटिका।

भावार्थ—जहां केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं (कोई व्यक्ति चंचल प्रकृति का नहीं है) और जहां की नारि विधवा (रांड) नहीं है, यदि नाम मात्र को कोई विधवा (धवा नाम वृक्ष से हीन) है तो केवल बनी (वाटिका) ही है। ऐसा अद्भुत नगर देख कर विश्वामित्र का मोहित हो गया।

लंकार— परिसंख्या ।

ल—सोरठा—नागर नगर अपार, महा मोह तम मित्र मे ।
तृष्णा लता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से ॥८९॥

ब्दार्थ—नागर=चतुर, विद्वान। तम=अंधकार। मित्र=सूर्य।

ावार्थ—अयोध्या में असंख्य ऐसे विद्वान और चतुर मनुष्य जो महामोह रूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान, तृष्णा रूपी लता को काटने के लिये कुठार के समान, और लोभ रूपी समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य के समान हैं।

लंकार—इस में रूपक और उल्लेख का संकर है।

ल—दोहा—विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की गये राज दरबार॥ ८०॥

ावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि इस प्रकार पवित्र चित्त और उदार बुद्धिवाले विश्वामित्र मुनि नगर की शोभा देखते हुए राजा दशरथ के दरबार तक जा पहुँचे।

पहिला प्रकाश समाप्त।

दूसरा प्रकाश

मूल—या द्वितीय परकाश में, मुनि आगमन प्रका
राजा सों रचना वचन, राघव चलन विलास

भावार्थ—इस दूसरे प्रकाश में विश्वामित्र मुनि का आना, प्रकट होना, राजा दशरथ से बात चीत होना राम जीका विश्वामित्र जी के साथ जाना वर्णित है।

मूल—हंस छंद—आवत जाता। राजके लोगा।
मूरति धारी। मानहु भोगा॥ १॥

भावार्थ—प्रजा गण दर्बार में आ जा रहे हैं, मानो भोग विलास ही हैं (अर्थात सब लोग अत्यंत सुखी मूर्तवंत देख पड़ते हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मालती छंद*—तहँ दरबारी। सब सुखकारी॥
कृतयुग कैसे। जनु जन वैसे॥ २॥

शब्दार्थ—दरबारी=दर्बार के लोग, राजकर्म चारी, के अमला अफसर लोग। कृतयुग=सतयुग। वैसे=बैठे हैं

भावार्थ—राज दर्बार के राजकर्म चारी लोग सब को सुख देनेवाले हैं। वे दर्बार में अपने स्थान पर

* [illegible] छंद।

कार बैठे हैं मानो सतयुग के लोग हों (अर्थात बहुत वृद्ध, बुद्धिमान, और न्यायपरायण हैं)।

ल—दोहा—महिष मेष मृग वृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज ॥३॥

ाचार्थ—(राज महल के आगे वाले मैदान में) कहीं भैंसों कहीं मेढों, मृगों, बैलों, कहीं मल्ल लोगों और कहीं हाथियों के युद्ध हो रहे हैं (लड़ भिड़ रहे हैं), कहीं पायक (पटे बाज) और कहीं सैनिक योद्धा लड़ रहे हैं (सैनिक परेड कर रहे हैं) और कहीं अच्छे अच्छे नट लोग नाट्य कला कर रहे हैं।

ल—समानिकाछंद—देखि देखि कै सभा। विश्वमोहियो प्रभा॥
राजमंडली लसै। देव लोक को हँसै॥४॥

ाचार्थ—राजा दशरथ की सभा की प्रभा (शोभा) देख देख कर ब्रह्मचारी (विश्वामित्र) मोह गये। राजमंडली ऐसी शोभा देती है कि देवलोक को हँसती है (लज्जित करती है)।

ालंकार—उत्प्रेक्षोपमा।

ल—मदन महिकाछंद—देश देश के नरेश। शोभिजें सबै सुवेश॥
आगिये न आदि अंत। कौन धाम कौन संत॥५॥

ब्दार्थ—सुवेश=सुन्दर भेष से। आदि=आगे
वक्ति (राजा दशरथ)। अंत=

हाथी सरजू में नहाया करते हैं) तथापि इसकी लहर अ पतितपावन है। बहुत जीव इसके जल में सप्रेम स्नान करके मर-यहां तक कि सुअर तक-सदेह स्वर्ग को चले जाते हैं।

विशेष—इन दोनों छंदों में विरोधाभास अलंकार है। इसी कारण विरोधाभास को स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्दों के दोहरे अर्थ लिख दिये गये हैं।

(राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन)

मूल—नवपदीछंद—जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बार धारन बार न दलदत्त। अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन॥ २८॥

शब्दार्थ—धारन=हाथी। बार न=देर नहीं लगती। दल=दलते हुए, भागने में। चरचे=लगाये हुए। भुरके=छिड़के हुए। बंदन=सेंदुर।

भावार्थ—जहाँ तहाँ बड़े बड़े मदमाते हाथी (गजशाला में बँधे हुए) शोभा देते हैं। वे ऐसे बली हाथी हैं जिन्हें सेना की सेना दलते हुए कुछ देर ही नहीं लगती। उनके सब अंगों में चंदन लगा हुआ है। और सिरों पर सिंदूर छिड़का हुआ देख पड़ता है।

मूल—दोहा—दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहुँ कुमार।
दीन्हे राजा दशरथहि दिग्पालन उपहार॥२९॥

शब्दार्थ—दीह दीह=बड़े बड़े। कुमार=पुत्र। उपहार=

भेंट, नज़र।

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि वे हाथी बड़े बड़े हैं, जान पड़ता है कि वे दिग्गजों के लड़के हैं और दिक्पालों ने उन्हें राजा दशरथ को भेंट में दे डाला है।

अलंकार-उत्प्रेक्षा।

(बाग-वर्णन)

मूल—अरिल्लछंद—देखि बाग अनुराग उपजिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सजिय। राजति रति की सखी सुबेषनि। मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि॥ ३०॥

शब्दार्थ—कल=मनोहर, मधुर। सुबेषनि=सुन्दर भेस वाली। बहति=पहुँचाती है। मनमथ=कामदेव।

भावार्थ—बाग को देखकर आपसे आप अनुराग पैदा होता है। मधुर ध्वनि से कोयल बोलती हुई शोभा दे रही है। (अपने सुन्दर भेस के कारण) रति की सखी सी जान पड़ती है, (और मधुर स्वर से) ऐसा जान पड़ता है मानो लोगों को काम का संदेसा सुना रही है।

विशेष—जिस समय विश्वामित्र अयोध्या में आये थे उस समय वसंत ऋतु न थी। परंतु यह काव्य-नियम है कि बाग के वर्णन में उसका ऐसा वर्णन किया जाता है मानो वसंत या वर्षा काल में देख देख कर उसकी छटा वर्णन कर रहे हों, क्योंकि इन्हीं दो ऋतुओं में बाग वाटिकादि अपनी पूरी शोभा से संपन्न होते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मरिल्लछंद—फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोदत महा मोद उपजावत। उड़त पराग न चित्त उड़ावत। भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत॥ ३१॥

शब्दार्थ—फूल=हर्ष। मोदत=सुगंध फैलाते हुए। मोद=आनंद। पराग=पुष्प-धूलि। उड़ावत=उड़ते हैं। भ्रमावत=फिरते हैं।

भावार्थ—फूल फूल कर वृक्षगण बागमें सैर करनेवालों के हर्ष को बढ़ाते हैं, और अपनी सुगंध फैला कर उनके हृदय में अत्यंत आनंद पैदा करते हैं। (यह) फूलों का पराग नहीं उड़रहा है, वरन् लोगों के चित्त हैं जो उड़ रहे हैं। (ये भ्रमर नहीं हैं जो भ्रम रहे हैं वरन् लोगों के जीव हैं जो भौंर बनकर इधर उधर घूम रहे हैं।

अलंकार—मुद्रापह्नुति।

मूल—पादाकुलकछंद*—सुमसरशोभै। मुनि मन लोभै। बरसिज फूले। अलि रस भूले॥ ३२॥ जल चर डोलैं। बहु मन मोलैं। बरनि न जाहीं। उर उरझाहीं॥ ३३॥

शब्दार्थ—सर=तालाब। बरसिज=कमल। अलि=भौंरा। मन=मकरंद। जलचर=जल में रहने वाले जीव मछली इत्यादि।

भावार्थ—(बाग के मध्य में) एक सुन्दर तालाब शोभा दे रहा है जो मुनियों के मन को भी लुभा लेता है। उसमें

* इसे मात्रिक भी कहते हैं।

कमल फूले हुए हैं, जिनके मकरंद पर [illegible] मछलियां कलोल कर रही हैं, बहुत [illegible] हैं जिनका वर्णन नहीं करते बनता [illegible] अपने में उलझा लेते हैं।

मूल—चतुष्पदीछंद—देखी वनवारी चंचल [illegible] तपोधन मानी। अति तपमय लेखी गृहथित [illegible] दिगंबर जानी। जग यद्यपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि मन मोहैं। पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भ सहित सब सोहैं॥ ३४॥

विशेष—इस छंद में 'वनवारी' शब्द के दो अर्थ [illegible] विरोध का आभास प्रदर्शित किया गया है। इस [illegible] लेना चाहिये कि (१) फुलवारी या वाटिका के प्रसंग [illegible] तो यथार्थ अर्थ है और (२) वनकन्या के प्रसंग [illegible] विरोधाभास अलंकार के लिये हैं।

शब्दार्थ—वनवारी=(१) फूलवाटिका, (२) कोई [illegible] कन्या। चंचल=(१) जिसके पत्रादि डोलते हों, (२) [illegible] स्वभावा। तपोधन=(१) जाड़ा, गरमी वर्षादि सहने [illegible] तपस्विनी। गृहथित=(१) परिखा से घिरी हुई, (२) [illegible] रहते हुए। दिगंबर=(१) खुली हुई, (२) नंगी, [illegible] पुष्पवती=(१) फूल वाली, (२) रजोधर्मयुत। पावन (१) पवित्र, (२) सुन्दर। गर्भ सहित=(१) फलसहित (२) सगर्भा, गर्भवती।

भावार्थ—विश्वकर्मा जी ने राजा दशरथ की फुलवारी (कैसे बनकन्या) देखी। उसके पत्र पुष्पादि (वस्तु से) हिल रहे हैं और वह तपस्विनियों की तरह शीत, घाम और वर्षा सहती है। (कन्या पक्ष में—चंचल स्वभाव होने पर भी तपस्विनी के समान है—यही विशेष है—चंचलवृत्ति तपस्वी नहीं हो सकता)। तरुण होने पर भी घर में स्थित है—चारों ओर परिवार या चहारदीवारी से सुरक्षित है। (कन्या पक्ष में—घर में रहते हुए भी तपस्विनी है—यही विशेष है)। वनस्पति जानता है कि यह फुलवारी दिगम्बर (वस्त्र) है अर्थात् सब कोई उसे देख सकता है। (कन्या पक्ष में—नंगी रहना निर्लज्जता है)। (छोटी कन्यायें दिगम्बरा रह सकती हैं। पर यह तो पुष्पवती-रजस्वला-होने पर भी नंगी रहती है—यही विशेष है)। यह फुलवारी दिगम्बर है और बहुत फूलों वाली है जिसे देखकर मनुष्यों के मन मोहित होते हैं। (कन्या-पक्ष में—नंगी को देख देखकर अपने मन से बराबर आसक्त होती है यही विशेष है—दिगम्बरकन्या (अल्पावस्थावाली) यह तो पुष्पवती नहीं होती दूसरे भाव बनकर होकर किसी पर आसक्त नहीं होती)। पुष्पवती होने पर (फुलवारी) अत्यन्त पवित्र है और फूलों के नीचे फलों के कीड़ों सहित नव वृक्ष फोल दे रहे हैं। (कन्या पक्ष में पुष्पवती होने पर भी पवित्र तथा गर्भवती है-यही विशेष है)।

मूल—चतुष्पदीछंद। पुनि गर्भसँयोगी रतिरस भोगी जग जन लीन कहावै । गुणि जगजन लीना नगर प्रवीना अति पति के मन भावै । अति पतिहिं रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै । अब यों दिनरातिन अद्भुत भांतिन कविकुल कीरति गावै ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—रतिरस=(१) प्रेम (२) स्त्री-पुरुष संभोग सुख । पति= (१) मालिक, राजा । (२)स्वपति, अपना खाविंद । रमावै=(१) चित्तको प्रसन्न करती है (२)संभोग सुख देतीहै ।

भावार्थ—वह फुलवारी फल गर्भा है और प्रेमी-जनों से सदा भरीरहतीहै—अर्थात् सब लोग वहां सैरकरने को जाते हैं । (कन्या पक्षमें-गर्भवती होने पर भी अनेक जग जनों के सम्भोग—सुख में लीन रहती है—यही विरोध है) । संसार के गुणीजन और नगर के प्रवीन लोग उस फुलवारी में घूमते फिरते हैं और वह अपने मालिक (राजादशरथ) के मन को भी खूब भाती है । (कन्या पक्षमें-संसार भरके गुणियों और नगर निवासियों के प्रेम में लीन रहकर भी अपने पति को प्यारी है—यही विरोध है) । राजा का चित्त इस फुलवारी में बहुत रमता है यहां तक कि वह वाटिका राजा के चित्त को भैया डालती है—अर्थात् इस फुलवारी की उद्दीपक वस्तुओं को देख के राजा का मन कामवश होता है और वे केकई, सुमित्रादि रानियों से प्रेमालाप करने लगते हैं, इसी कारण वे [illegible] सौतिनें होने [illegible]

सुन्दर। मेरी करी=मेरी बनाई हुई (विश्वामित्र कृत आकाश-गंगा)। दिवि=आकाश।

भावार्थ—(लाल रंग के पताका-पट) अथवा द्रोणाचल पर्वत के शिखरपर मानो दिव्य जड़ी बूटियों के प्रकाश चमक रहे हैं, अथवा बिजली की ज्योति जो ध्वजाओं के दंडों से उलझ गई है उसी को, बादलों के दखवर्ती होने के कारण, हवा पुनः बादलों की तरफ लौटा रही है; वा रघुवंशियों के प्रचंड प्रताप की अग्नि (पृथ्वीपर न अट सकने के कारण) अब सुरपुर की ओर जा रही है। (और सफेद रंगके पताका-पट) अथवा यह मेरी बनाई हुई कौशिकी गंगा है जो आकाश में खेल रही है, (इस छंद में नगर के घरों का अति ऊँचा होना दर्शाया गया है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, संदेहसंकरोक्ति और संदेह।

मूल—दोहा-छांति छांति कीरति लहैं रघुपुन की यहु भांति।
पुर पर कोंधी सोभिऐं मानो तिनकी पांति॥ ४०॥

भावार्थ—(सफेद पताकापट) रामचन्द्रजी ने शत्रुओं को जीत जीत कर उनकी कीर्तियां छीन ली हैं। मानो (ये श्वेत पताका) उन्हीं कीर्तियों की पंक्ति है जो नगर के ऊपर बँधी हुई शोभा दे रही है। (अलंकार—उत्प्रेक्षा)

मूल—त्रिभंगीछंद—राम सब घर सोभैं मुनि मन लोभैं रिपु गन छोभैं दीसैं सबै। बहु उतुंग बाजैं जनु अब गाजैं दिग-ज लाजैं सुनत जबै। जहँ तहँ मूरति बहुरी बिबन न बहुरी

जय यश मढ़हीं सकल दिशा। सबई सब विधि क्षम बसत
यथाक्रम देवपुरी सम दिवस निशा॥ ४१॥

शब्दार्थ—सम=बराबर उचाई के। छोभैं=डरते हैं, ईर्ष्या करते हैं। श्रुति=वेद। मढ़ही=छा जाते हैं। क्षम=योग्य। यथाक्रम=सिलसिले से, यथोचित रीति से।

भावार्थ—अयोध्या नगर के सब घर सम उँचाई के बने हैं इससे ऐसी शोभा देते हैं जिसे देख कर औरों की तो बात ही क्या है मुनियों के भी मन मोहित हो जाते हैं (क्योंकि मुनि जन रागद्वेष हीन होते हैं और समता को पसंद करते हैं) और जिस समता को देख कर शत्रुओं के चित्त में क्षोभ होता है। नगर में जहां तहां (देवालयों में वा बड़े लोगों के द्वार पर) बहुत से नगाड़े बजते हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो बादल गरजते हैं, जिस शब्द को सुनकर दिगज लज्जित होते हैं। जहां तहां विप्रगण वेद पाठ करते हैं (यज्ञ, पूजन, हवन में) जिससे विघ्न नहीं बढ़ने पाते (दुःख रोगादि नहीं होते) और सब ओर नगर निवासियों का जैजैकार और यश छा जाता है। नगर के सब लोग सब ही प्रकार से योग्य हैं और सिलसिले से जहां जिसको बसना चाहिये वहीं वह बसता है जिससे सदैव यह नगर देव पुरी के समान जान पड़ता है।

मूल—विभचौछंद—कविकुल विद्याधर, सकल कला राजराज वर वेश बने। गणपति सुखदायक, पशुपति गुर सहायक, कीन गने। सेनापति बुधजन, मंगल

धर्मराज मन बुद्धि धनी। बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ-विद्याधर=विद्वान्। कलाधर=कलाओं को जानने वाले। राजराज=श्रेष्ठ क्षत्री। गणपति=एक एक समूह का प्रधान मनुष्य, अफसर, अधिकारी। पशुपति=अश्वशाला, गजशाला, गोशाला इत्यादिके अधिकारी। सूर=वीर, योद्धा। सेनापति=नायक, दफेदार, हवालदार इत्यादि। बुधजन=बुद्धिमान् लोग। मंगल=मांगलिक पाठ करनेवाले ब्राह्मण। गुरुगण=पाठशालाओं के शिक्षक, गुरु, मुदर्रिस, स्कूलमास्टर। धर्मराज=न्यायकर्ता, जज, मुंसिफ, काजी, मुफ्ती इत्यादि। मनसाकर=मनवांछित फल देनेवाला। करुणामय=दयावान्। सुरतरंगिनी=सरयू नदी। शोभसनी=शोभायुक्त।

विशेष—४१ वें छंद में अयोध्या नगर को देवपुरी कह आये हैं। इस कारण 'मुद्रालंकार' से देवपुरी की वस्तुओं की सूचना इस छंद में देते हैं। इस अलंकार को उर्दू में 'सिलसिलाए-जवाहिर' कहते हैं। क्या उर्दू प्रेमी इतना अच्छा और इतना बड़ा वर्णन इस अलंकार का उर्दू-साहित्य में दिखला सकते हैं? उर्दू में चार शब्द तक का निर्वाह देखा गया है। यहां १६ शब्द तक निर्वाह किया गया है। अलंकार

* उर्दू में इस अलंकार का एक अनोखा उदाहरण यह है—"बाग़ बहारी जो कुछ, एक बाग़ की। उर्दू बाग़ के फूलों एक एक की"। इसमें बाग़, बहार, और [illegible] 'बाग़' शब्द है।

द्वारा सूचना हेतु शब्दार्थ यों जानना चाहिये:—कवि=शुक्र। विद्याधर=देवविशेष। कलाधर=चन्द्रमा। राजराज=कुबेर। गणपति=गणेश। सुखदायक=इंद्र। पशुपति=महादेव। सूर=सूर्य। सेनापति=षड्ानन। बुधजन=बुद्ध। मंगल=मंगल ग्रह। गुरु=बृहस्पति। धर्मराज=यम। मनसाकर=कल्पवृक्ष, कामधेनु। करुणामय=विष्णु। सुरतरंगिनी=आकाशगंगा।

भावार्थ—(इस देवपुरी समान अयोध्यानगरी में) विद्वान् कविगण सब कलाओं के जानकार अच्छे शिल्पकार और सुन्दर भव्य रूपवाले क्षत्री बसते हैं। सुख देने वाले (सुलायमत और प्रेम से कामलेने वाले) अफसर हैं, योग्य अश्वपाल और गजपालादि हैं, और शूरवीर योद्धा और सहायता करने वाले अनेक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती। अच्छे २ सेना नायक हैं, पंडित हैं, मंगलपाठी विप्र हैं, दीक्षक और शिक्षक हैं और बड़ी बुद्धिवाले न्यायाधीश (जज, मुंसिफादि) हैं। बहुत से ऐसे अच्छे दानी और दयावान् भी हैं जो याचक की इच्छा पूरी कर देते हैं, और (नगर के निकट) सुन्दर सरयू नदी भी बहती है।

अलंकार—मुद्रालंकार।

मूल—वीरकलंद-पंडित गण मंडित गुण मंडित मति देखिये। क्षत्रियवर धर्म प्रवर सुन्दर नगर लेखिये। वेदज्ञ सहित सत्य रहित पाप प्रगट मानिये। शूद्र सकाति विप्र भगति जीव जगत जानिये॥ ४३॥

शब्दार्थ—पंडित गण=ब्राह्मणलोग। गुण मंडित=गुणों से भूषित, गुणवान्, विद्वान्। दंडित मति=सुशासित बुद्धि। धर्म प्रवर=धर्म में प्रबल। समर=युद्ध। सकति=शाक्तिक, शक्ति के उपासक। जीव=मन, हृदय। जगत=जगती है।

भावार्थ—ब्राह्मण लोग सब गुणों से विभूषित हैं और उनकी बुद्धि शिक्षा से सुशासित देख पड़ती है। श्रेष्ठ क्षत्री गण क्षात्र धर्म में प्रबल हैं और समर ही में क्रोध करते हैं। वैश्य लोग सत्य सहित और पाप रहित व्यवहार करते हैं सो प्रकट ही है। शूद्र लोगों के मन में शक्ति की उपासना और ब्राह्मणों की भक्ति जगरही है, (इस प्रकार चारो वर्ण के लोग अयोध्या में बसते हैं)।

मूल—सिंहविलोकित छंद*—अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो। कछु बुधि बल बचन न आय कह्यो। पशु पक्षि नारि नर निरखि सबै। दिन रामचंद्र गुण गनत सबै॥ ४४॥

भावार्थ—(अयोध्या को देख कर) मुनि (विश्वामित्र) का तन मन मोहित हो रहा बुद्धिबल से कुछ वचन नहीं कहाजाता (प्रशंसा नहीं करते बनती), तदनंतर देखा कि वहाँके स्त्री और पुरुष, पशु और पक्षी सब जीव नित प्रति राम गुण गान करते हैं।

मूल—मरहट्टाछंद—अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु गिरिमालि भाँति। बहु बाल मंच-धूमनि-धूपित अंगन हरि की सी अनुहारि। बिथरी बहु बिथीनि परम बिचित्रन केशवदास

* यह छंद कहीं कहीं केशवदासी छंद है।

निहारि । जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—पगार=छारदीवारी, सिरबंदी । नारि=समूह, खानि । बहुशत=सैकड़ों । मख धूमनि धूपित=यज्ञों के धुँवा से धूपित । अंगन=आंगन, सहन । हरि=विष्णु । अनुहारि=रूपकी सदृशता । चित्री=चित्रित, चित्रयुक्त । विश्वरूप=संसार । अमल=निर्मल । आरसी=आईना ।

भावार्थ—बड़े ऊंचे मकानों पर (रत्नजटित) छारदीवारी बनी हैं मानो चिन्तामणियों का समूह है । घरों के आंगन सैकड़ों यज्ञों के धुवां से सुगन्धित होकर विष्णु की तरह श्याम वर्ण के होगये हैं (प्रत्येक घर में नित्य यज्ञ हवन हुआ करते हैं) और बहुत से घर अत्यंत विचित्र चित्रों से चित्रित हैं (चित्र बने हैं), केशवदास कहते हैं कि वे घर ऐसे दिखलाई पड़ते हैं मानों संसार भरको देखने के लिये ब्रह्मा ने विचार करके निर्मल आरसी रची है (संसार भर की सब वस्तुओं के चित्र बने हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—सोरठा—जग यशवन्त विशाल, राजा दशरथ की पुरी । चन्द्र सहित सब काल, भालथली जनु ईश की ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—चन्द्र सहित=रामचन्द्र सहित । भालथली=मस्तक, ललाट । ईश=महादेव ।

भावार्थ—राजा दशरथ की पुरी (अयोध्या) संसार में

यशवाली है और (चूंकि) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र नित्य वहां रहते हैं) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव जी का ललाट है (सरजू तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी बालकरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो द्वितीया के कलाहीन चंद्र सहित महादेवका ललाट है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुंडलिया—पण्डित अति सिगरी पुरी मनहु गिरा गति गूढ़। सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़। मोहत मूढ़ अमूढ़ देवमगदिति ज्यों सोहै। सब शृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै। सब सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मंडित। मनो शची विधि रची विविधि विधि वर्णत पण्डित॥४३॥

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। गूढ़=गुप्त। चंडिका=दुर्गा। मूढ़=मूर्ख। अमूढ़=ज्ञानी। दिति=अदिति (यहाँ 'अ' का लोप है)। सदेह=देह सहित। मन्मथ=कामदेव। सुखमा=शोभा। मण्डित=विभूषित, युक्त। शची=इन्द्राणी।

भावार्थ—सब पुरी अत्यंत विद्वान् है मानो पुरी स्वयं सरस्वती ही है या अपने रूप को छिपाये हुए है। (अथवा) सिंह पर आरूढ़ दुर्गा हैं जिन्हें देख कर ज्ञानी और अज्ञानी सभी मोहित हो जाते हैं (ज्ञानी लोग मोक्ष से अज्ञानी लोग भय से)। (विद्वान् ज्ञानियों के कारण सरस्वतीरूप है, सिंह समान प्रबल पराक्रमी सैनिकों के कारण चंडिका है)। ज्ञानी और सैनिकों को मोहनी हैं (अयोध्या पुरी)

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों) देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो। सब शृंगार किये हुए और सदेह सकल सुखों और शोभाओं से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—काव्य छंद*—मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय। होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय। दुर्गति दुर्गन ही सु कुटिल गति सरितन ही में। श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मूलन=जड़ों। अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति। हुताशन=अग्नि। मलिनाइय=मलीनता, मैलापन। दुर्गति=दुर्दशा, अपहुँचपन, दुर्गमत्व। दुर्गन=गढ़ों, किलों। कुटिल गति=टेढ़ी चाल। सरितन=नदियों। श्रीफल=द्रव्य, बेल का फल (उपमान होने के कारण यहाँ 'कुल' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ समझिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि अयोध्या में किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

यशवाली है और (चूँकि) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र नित्य वहाँ रहते हैं) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव जी का ललाट है (सरजू तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी बालकरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो द्वितीया के चन्द्रहीन चन्द्र सहित महादेवका ललाट है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुंडलिया—पण्डित जति सिगरी पुरी मनहु गिरा गति गूढ़। सिद्ध चंडिका जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़। मोहत मूढ़ अमूढ़ देषि गढ़ दिति की सोहै। सब सृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै। सब सिंगार सदेह सकल सुख सुषमा मंडित। मनो शची विधि रची विधिधि विधि वर्णत पण्डित॥४३॥

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। गूढ़=गुप्त। चंडिका=दुर्गा। मूढ़=मूर्ख। अमूढ़=ज्ञानी। दिति=नदिति (यहाँ 'अ' का लोप है)। सदेह=देह सहित। मन्मथ=कामदेव। सुषमा=शोभा। मण्डित=विभूषित, युक्त। शची=इन्द्राणी।

भावार्थ—सब पुरी अत्यंत विद्वान् है मानो पुरी स्वयं सरस्वती ही है पर अपने रूप को छिपाये हुए है। (अथवा) सिद्ध पर काम्य दुर्ग है जिसे देख कर ज्ञानी और अज्ञानी सबकी मोहित हो जाते हैं (ज्ञानी लोग भक्ति से अज्ञानी लोग भ्रम से)। (विद्वान् ज्ञानियों के कारण सरस्वतीरूप है, सिद्ध मनाने प्रबल पराक्रमी वीरों के कारण चंडिका है)। ज्ञानी और अज्ञानियों को मोहती है ([illegible])।

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों) देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो। सब शृंगार किये हुए और सदेह सकल सुखों और शोभाओं से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—काव्य छंद*—मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय। होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय। दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में। ओफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में॥ ४८॥

शब्दार्थ—मूलन=जड़ों। अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति। हुताशन=अग्नि। मलिनाइय=मलीनता, मैलापन। दुर्गति=बुरीदशा, अपहुँचपन, दुर्गमत्व। दुर्गन=गढ़ों, किलों। कुटिल गति=टेढ़ी चाल। सरितन=नदियां। ओफल=द्रव्य, बेल का फल (उपमान होने के कारण यहां 'कुच' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ समझिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि अयोध्या में किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

यशवाली है और (चूंकि) सदा चन्द्र सहित है (रामचन्द्र नित्य वहां रहते हैं) इसलिये ऐसी जान पड़ती है मानो महादेव जी का ललाट है (सरजू तट पर बसी हुई अयोध्या नगरी बालरूप रामचन्द्र सहित होने से ऐसी जान पड़ती है मानो द्वितीया के कलंकहीन चन्द्र सहित महादेवका ललाट है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुंडलिया—पण्डित अति सिगरी पुरी मनहु गिरा गति गूढ़। सिद्ध चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़। मोहत मूढ़ अमूढ़ देवसंगादिति ज्यों सोहै। सब शृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै। सबै सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मंडित। मनो शची विधि रची विविधि विधि वर्णत पण्डित॥४७॥

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। गूढ़=गुप्त। चंडिका=दुर्गा। मूढ़=मूर्ख। अमूढ़=ज्ञानी। दिति=अदिति (यहाँ 'अ' का लोप है)। सदेह=देह सहित। मन्मथ=कामदेव। सुखमा=शोभा। मण्डित=विभूषित, युक्त। शची=इन्द्राणी।

भावार्थ—सब पुरी अत्यंत विद्वान् है मानो पुरी स्वयं सरस्वती ही है पर अपने रूप को छिपाये हुए है। (अथवा) सिद्ध पर आरूढ़ दुर्गा है जिसे देख कर ज्ञानी और अज्ञानी सभी मोहित हो जाते हैं (ज्ञानी लोग भक्ति से अज्ञानी लोग भय से)। (विद्वान ब्राह्मणों के कारण सरस्वतीरूप है, सिद्ध समान प्रबल पराक्रमी क्षत्रियों के कारण चंडिका है)। मूर्ख और अज्ञानियों को मोहती हुई (अयोध्या पुरी)

नगर निवासियों सहित ऐसी सोहती है जैसे (निज पुत्रों) देवताओं सहित अदिति (निर्मल चरित्र नगर निवासी पुरी को माता समान जानते हैं) और ऐसी सुन्दर है मानो सब शृंगार किये हुए देह धारिणी रति काम को मोहती हो। सब शृंगार किये हुए और सदेह सकल सुखों और शोभाओं से युक्त है मानो ब्रह्मा की रची हुई इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा विद्वान अनेक प्रकार से करते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—काव्य छंद*—मूलन ही की जहां अधोगति केशव गाइय। होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय। दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में। श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुलके जी में॥ ४८॥

शब्दार्थ—मूलन=जड़ों। अधोगति=नीचे को गमन, नीचगति। हुताशन=अग्नि। मलिनाइय=मलीनता, मैलापन। दुर्गति=दुर्दशा, अपहुँचपन, दुर्गमत्व। दुर्गन=गढ़ों, किलों। कुटिल गति=टेढ़ी चाल। सरितन=नदियां। श्रीफल=द्रव्य, बेल का फल (उपमान होने के कारण यहां 'कुच' का अर्थ है)

भावार्थ—(परिसंख्या अलंकार समझकर इसका अर्थ समझिये तो मजा आजाय) केशव कहते हैं कि अयोध्या में किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति

होती है तो केवल वृक्षों की जड़ों ही की होती है । नगर में किसी प्रकार की मलीनता है ही नहीं, यदि है तो केवल होनाग्नि के धुवां ही की है। दुर्गति किसी की नहीं, यदि है तो केवल दुर्गों ही की दुर्गति है अर्थात् दुर्गों के रास्ते ऐसे कठिन हैं कि शत्रु भीतर नहीं आ सकता, और अयोध्या में किसी की भी टेढ़ी चाल नहीं है, यदि है तो केवल नदियों की । श्रीफल (धन) की अभिलाषा किसी को नहीं है (सब सहज ही अति धनी हैं), यदि नाम मात्र को किसी को श्रीफल की अभिलाषा है तो केवल कवियों को है (अर्थात् शृंगार वर्णन में कभी कभी कविलोग कुचों की उपमा श्रीफल से दे देते हैं) ।

मूल—दो०—अति चंचल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि ।
मन मोहो कौशिकराज को यह सुन नगर निहारि ॥८०

शब्दार्थ—चंचल=चलायमान, डोलनेवाला । चलदल=पीपर का पत्ता ॥ विधवा=(१)पतिहीना, रांड (२)धवा नामक वृक्ष से हीन । बनी=वाटिका ।

भावार्थ—जहां केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं (और कोई व्यक्ति चंचल प्रकृति का नहीं है) और जहां कोई नारि विधवा (रांड) नहीं है, यदि नाम मात्र को कोई विधवा (धवा नाम वृक्ष से हीन) है तो केवल बनी (वाटिका) ही है । ऐसा अद्भुत नगर देख कर विश्वामित्र का मन मोहित हो गया ।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल—सोरठा—नागर नगर अपार, महा मोह तम मित्र से।
तृष्णा लता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से॥४९॥

शब्दार्थ—नागर=चतुर, विद्वान। तम=अंधकार। मित्र=सूर्य।

भावार्थ—अयोध्या में असंख्य ऐसे विद्वान और चतुर मनुष्य हैं जो महामोह रूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान, तृष्णा रूपी लता को काटने के लिये कुठार के समान, और लोभ रूपी समुद्र को सोखने के लिये अगस्त्य के समान हैं।

अलंकार—इस में रूपक और उल्लेख का संकर है।

मूल—दोहा—विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की गये राज दरबार॥ ५० ॥

भावार्थ—केशव कवि कहते हैं कि इस प्रकार पवित्र चित्त और उदार बुद्धिवाले विश्वामित्र मुनि नगर की शोभा देखते हुए राजा दशरथ के दरबार तक जा पहुँचे।

पहिला प्रकाश समाप्त।

दूसरा प्रकाश

मूल—या द्वितीय परकाश में, मुनि आगमन प्रकास।
राजा सों रचना वचन, राघव चलन विलास॥

भावार्थ—इस दूसरे प्रकाश में विश्वामित्र मुनि का अयोध्या आना, प्रकट होना, राजा दशरथ से बात चीत होना और राम लक्ष्मण विश्वामित्र जी के साथ जाना वर्णित है।

मूल—हंस छंद—आवत जाता। राजके लोगा।
मूरति धारी। मानहु भोगा॥ १॥

भावार्थ—प्रजा गण दर्बार में आ जा रहे हैं, मानो मूर्तिधारी लोग विलास ही हैं (अर्थात सब लोग अत्यंत सुखी और स्वस्थ देख पड़ते हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मालती छंद*—तहँ दरबारी। सब सुखकारी॥
कृतयुग कैसे। जनु जन वैसे॥ २॥

शब्दार्थ—दरबारी=दर्बार के लोग, राजकर्मचारी, दर्बार के अनेक अफसर लोग। कृतयुग=सतयुग। वैसे=बैठे हैं।

भावार्थ—राम दर्बार के राजकर्मचारी लोग सब को न्याय सुख सुख देनेवाले हैं। वे दर्बार में अपने स्थान पर हैं

---

* [illegible]

प्रकार बैठे हैं मानो सतयुग के लोग हों (अर्थात बहुत वृद्ध, बुद्धिमान, और न्यायपरायण हैं)।

मूल—दोहा—महिष मेष मृग वृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज ॥३॥

भावार्थ—(राज महल के आगे वाले मैदान में) कहीं भैंसों कहीं मेढों, मृगों, बैलों, कहीं मल्ल लोगों और कहीं हाथियों के युद्ध हो रहे हैं (लड़ भिड़ रहे हैं), कहीं पायक (पैदल सिपाही) और कहीं सैनिक योद्धा लड़ रहे हैं (सैनिक परेड कर रहे हैं) और कहीं अच्छे अच्छे नट लोग नाट्य कला कर रहे हैं।

मूल—सवैयाछंद—देखि देखि कै सभा। विप्रमोहियो प्रभा॥
राजमंडली लसै। देव लोक को हँसै॥४॥

भावार्थ—राजा दशरथ की सभा की प्रभा (शोभा) देख देख कर ब्रह्मचारी (विश्वामित्र) मोह गये। राजमंडली ऐसी शोभा देती है कि देवलोक को हँसती है (लज्जित करती है)।

अलंकार—ललितोपमा।

मूल—सवैयाछंद*—देश देशके नरेश। शोभिजै सुवेशसुवेश॥
जानिये न आदि अंत। कौन दास कौन संत ॥५॥

शब्दार्थ—सुवेश=सुन्दर भेष से। आदि=सभा का प्रधान व्यक्ति (राजा दशरथ)। अंत=सभा का सदस्य सभासद

* [illegible]

(कोई छोटा बड़ा राजा)। दास=सेवक, कर्मचारी। संत=मालिक, सेव्य व्यक्ति।

भावार्थ—देश देश के राजा सुन्दर राजसी ठाठ से सभा में बैठे शोभा दे रहे हैं, न तो यह जान पड़ता है कि सभा का आदि व्यक्ति (प्रधान वा सभापति अर्थात राजा दशरथ) कौन है, न यह जान पड़ता है कि सभा का अंत (सर्व लघु बड़ा राजा) कौन है—अर्थात् सभी सभासद बड़े वैभवशाली हैं, और यह भी नहीं लख पड़ता कि कौन सेवक है और कौन मालिक—अर्थात् दरबार के कर्मचारी भी ऐसी पोशाकें पहने हैं कि सब कोई बड़े राजा से जान पड़ते हैं। (इस से राजा दशरथ का वैभव सूचित होता है)।

मूल—दोहा—शोभत बैठे तेहि सभा सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसैं देवदेव अनुरूप ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—देवदेव=इन्द्र। अनुरूप=सम, तुल्य, समान।

मूल—दोहा—देखि तिन्हैं नय दूरि ते गुदरायो प्रतिहार।
आये विश्वामित्र जी जनु दूजो करतार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—तिन्हैं=विश्वामित्रको। गुदरायो=राजा दशरथ से निवेदन किया। प्रतिहार=नकीब, चोबदार। करतार=ब्रह्मा

भावार्थ—तब विश्वामित्र को दूर पर आते हुए देखकर दरबार के चोबदार ने राजा से निवेदन किया कि हे राजन विश्वामित्र जी (मिलने के लिये) आये हैं जो ऐसे भव्य और गौर

देख पड़ते हैं मानो दूसरे ब्रह्मा हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और समतद्रूप रूपक का संकर।

मूल—दोहा—उठिदौरे नृप सुनत ही जाय गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन ज्यों सुरगुरु सुरराइ ॥८॥

भावार्थ—विश्वामित्र के आगमन की खबर सुनते ही राजा सिंहासन से उठ कर दौड़े और विश्वामित्र के चरणों पर जा गिरे, तदनंतर बड़े आदर से सभाभवन के भीतर लिवा ले गये जैसे इन्द्र बृहस्पति को (लिवा ले जाते हैं)।

मूल—सोरठा—सभा मध्य बैताल, ताहि समय सो पढ़ि उठो।
केशव बुद्धि विशाल, सुन्दर सूरो भूप सो॥९॥

शब्दार्थ—बैताल=भाट, बंदीजन, चारण। पढ़िउठो=बोल उठा, पद्य में प्रशंसा की। विशाल= बड़ी। सूरो=शूरवीर। भूप=राजा।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि उसी समय बड़ी बुद्धिवाला, सुन्दर तनवाला, और राजा के समान शूरवीर बंदीजन सभा के बीच में बोल उठा।

मूल—(बैताल)—घनाक्षरीछंद-विधि के समान है विमानी-कृत राजहंस, विविध विबुध युत मेरु सो अचल है। दीपति दिपति अति सातो दीपि दीपियतु दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को पल है। सागर उजागर को, बहु वाहिनी को पति, छत्रदान प्रिय किधौं सूरज अमल है। सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ, भगीरथ-पथगामी गंगा जैसो जल है॥ १०॥

शब्दार्थ—विमानीकृत=विमान बनाये हुये हैं, सवारी किये हुए हैं। राजहंस=(१)हंस पक्षी (२)राजाओं के जीव। विबुध=(१)देवता (२)विशेषज्ञ पंडित गण। दीपति=दीप्ति। दिपति=दीप्तमान होती है। दीपियतु=प्रकाशित हो जाते हैं। सुदक्षिना=(१)दिलीप की स्त्री का नाम (२)सुंदर दक्षिणा। उजागर=प्रसिद्ध। की=कि, किधौं, या, अथवा। वाहिनी=(१) नदी (२)सेना। छन=(क्षण) आनंद उत्सव। छन दान प्रिय=(१)आनंद देना प्रिय है जिस को (२)प्रतिक्षण दान करना प्रिय है जिसे। भगीरथपथगामी=भगीरथ के पथ पर चलनेवाला, भगीरथ की रीति-नीति का अनुगामी।

भावार्थ—राजा दशरथ ब्रह्माके समान हैं, क्योंकि जैसे ब्रह्मा राजहंस पर सवारी करते हैं, वैसे ही राजा दशरथ अनेक राजाओं के जीवों पर सवारी किये हुए हैं (सब राजाओं के चित्त पर चढ़े रहते हैं)। और राजा दशरथ मेरु पर्वत के समान हैं, क्योंकि मेरु पर जैसे अनेक देवता रहते हैं, वैसे ही राजा दशरथ अनेक विशेषज्ञ पण्डितों से युक्त हैं (जिनके दरबार में बहुत से विद्वान्‌ रहते हैं)। राजा दशरथ के यश का प्रकाश इतना अधिक है कि उससे सातों द्वीप प्रकाशित हो उठे हैं, और राजा दशरथ मानो दूसरे दिलीप हैं, क्योंकि जैसे उन दिलीप को अपनी पतिव्रता रानी सुदक्षिणा के पातिव्रत का बल था, वैसे ही राजा दशरथ को सुंदर दक्षिणा का बल

है। अथवा राजा दशरथ प्रत्यक्ष ही सागर हैं, क्योंकि जैसे समुद्र अनेक नदियों का पति है वैसे ही राजा दशरथ भी अनेक सेनाओं के स्वामी हैं, अथवा राजा दशरथ निर्मल सूर्य हैं, क्योंकि जैसे सूर्य सब को (प्राणी मात्र को) आनंद देते हैं, वैसे ही राजा दशरथ प्रतिक्षण दान करने को प्रिय कार्य समझते हैं। राजा दशरथ सब प्रकार से समर्थ हैं और अपने पूर्व पुरुषों की रीति नीति के वैसे ही अनुगामी हैं जैसे गंगा का जल भगीरथ के दिखलाये हुए रास्ते पर आज तक चला जाता है।

नोट—इस छंद में केशव ने कमाल कर दिखाया है। वैताल के मुख से राजाको सूचना मिलती है कि विश्वामित्र कुछ मांगने आये हैं, और विश्वामित्र को सूचना मिलती है कि राजा बड़े दानी हैं तुम्हें अवश्य मन माना दान मिलेगा। पाठक को सूचना मिलती है कि जिस राजा की सभा का भाट इतना चतुर और दूर दर्शी है तो वह राजा और उसकी सभा के पंडित कैसे विद्वान होंगे।

अलंकार—इस छंद में उल्लेख अलंकार मुख्य है और उपमा, रूपक, संदेह तथा श्लेष इसके अंगीभूत हैं।

मूल—दोहा—यद्यपि दंधन आदि गये, अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के, पलपल बढ़त प्रकास॥६॥

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि यद्यपि राजा दशरथ के

शत्रुगण ईंधन रूप होकर जल चुके हैं, तो भी प्रतापरूपी लपटों का प्रकाश प्रति क्षण बढ़ता ही जाता है।

अलंकार—विभावना मुख्य है और रूपक अंगीभूत है।

मूल—सोमरछंद—बहुभांति पूजि सुराय। कर जोरि के परि पाय। हँसि कह्यो ऋषि मित्र। अब बैठु राज पवित्र॥ १२॥

शब्दार्थ—ऋषिमित्र=ऋषियों में सूर्यवत् प्रतापवान, ऋषि विश्वामित्र।

भावार्थ—राजा दशरथ ने विश्वामित्र की अनेक भांति से पूजा की और हाथ जोड़ कर पैरों पड़े। तब विश्वामित्र ने हँसकर (प्रसन्न होकर) कहा कि हे पवित्र राजा! अब सिंहासन पर बैठो।

मूल—(मुनि) सोमर[1]—मुनि दान-मानस-हंस। रघुवंस के अवतंस। मन माँह जो अति नेहु। एक वस्तु माँगहि देहु॥१३॥

भावार्थ—(विश्वामित्र कहते हैं) हे दान रूपी मानसरोवर के हंस, हे रघुवंश के शिरोमणि राजा दशरथ जी! यदि तुम मनचाहा हमसे दिल्ली देने रखते हो तो हम एक वस्तु माँगते हैं, वह हमें दीजिये।

मूल—(राजा)—अमृतगति छंद—

सुनि महामुनि मुनिये। तन धन के मन गुनिये।
मन मटै होय सु कहिये। धनि सु तु आपुन लहिये॥१४॥

१-[illegible]
२-[illegible]

शब्दार्थ—सु=सो । जु=जो । आपुन=आप ।

भावार्थ—(राजा दशरथ कहते हैं) हे सुन्दर मतिवाले महामुनि सुनो, मेरे पास तन है, धन है और या मन है, सो विचार लीजिये । और विचार के उपरान्त जो वस्तु तुम्हें पसंद आवै वह माँग लो । धन्य है वह वस्तु जो आप पावैं (आप के काम आवैं) ।

मूल—(ऋषि)—दोधकछंद—राम गये जब ते बन माहीं । राकस बैर करैं बहुधा हीं । राम कुमार हमैं नृप दीजै । तौ परिपूरन यज्ञ करीजै ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—राम=परशुरामजी । राकस=राक्षस । करीजै=करैं ।

भावार्थ—जब से परशुराम जी (तप करने के लिये) बन को चले गये हैं, तब से राक्षस लोग (मुनियों से) बहुधा बैर विरोध किया करते हैं—(अर्थात् परशुराम जी जब ब्रह्मचारी थे और आश्रम के निकट रहा करते थे तब उनके डर से राक्षस हम लोगों से बैर विरोध न करते थे, अब उनके चले जाने से ये लोग हमारे कार्यों में विघ्न डालते हैं) इस हेतु हे राजन् ! आप हमें अपने राम नामक राजकुमार को दीजिये, तो हम (उनकी रक्षा में) अपना यज्ञ पूर्ण कर लें ।

मूल—तोटक छंद—। यह बात सुनी नृपनाथ अबै । सर से लगे आसर चित्त सबै । मुख ते कछु बात न जाइ कही । अपराध बिना ऋषि देह दही ॥ १६ ॥

भावार्थ—अति सरल है।

अलंकार—दूसरे चरण में पूर्णोपमा और चौथे में विभावना।

मूल—(राजा)—तोटकछंद। अतिकोमल केशव बालकता। बहु दुस्कर राकसघालकता। हम हीं चलिहैं ऋषि संग अबै। साजि सैन चलैं चतुरंग सबै॥ १७॥

शब्दार्थ—बालकता=लड़कपन॥ दुस्कर=(दुष्कर) जो न की जा सके, अतिकठिन। राकस घालकता=राक्षसों का वध। चतुरंग सेना=वह सेना जिसमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदल हों।

भावार्थ—(राजा दशरथ विश्वामित्र से कहते हैं) राम जी का लड़कपन अभी अति कोमल है (अति अल्पवयस्क हैं), उनके लिये राक्षसों का मारना बड़ा कठिन काम है। इस लिये हे ऋषि जी, हम ही सब चतुरंगिणी सेना साथ लेकर अभी (तत्काल) चलेंगे।

मूल—(विश्वामित्र)—पद्धटिका। जिन दानव हठि हरषि हनत हरिनी-सुतनंदन। तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन? जिन बेधत सुख लखत लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि। तिन बालन बागाद बाघ मारत नहिं सिंहन। नृपनाथ-नाथ दशरथ यह अकथ कथा नहिं मानिये। मृगराज-राज-कुल-कलस कहँ बालक कुश न जानिये?॥ १८॥

शब्दार्थ—सुतनंदन=(हरिनी शब्दके सादृश्य से) सिंह का बच्चा। सुख=सहज ही में। लख=लाखों। लक्ष=नि-

शाना। नृपकुँवर=राजकुमार। कुँवरमनि=कुमारों में श्रेष्ठ, जेठा राजकुमार। वाराह=सुअर। अकथ=न कहने योग्य, झूठ। कथा=कथन। मृगराज कुल-कलस=सिंह का श्रेष्ठ बच्चा। राज-कुल-कलस=राजा का प्रतापी बालक। बालक वृद्ध=बालक नहीं वरन् बड़ाही समझना चाहिये। न जानिये=क्या आप यह बात नहीं जानते?

भावार्थ—(विश्वामित्र राजा दशरथ से कहते हैं) हे राजन्! जिन हाथों से सिंह का बच्चा हठ करके आनंद से (बिना परिश्रम) किसी मृगी को मारता है, क्या उन्हीं हाथों से वह मदमस्त हाथियों को नहीं मारता? (अर्थात् मारता है), (और) जिन हाथों से कुमारश्रेष्ठ कोई राजकुमार सहज ही में लाखों निशाने बेध डालता है, क्या उन्हीं हाथों से अपने बाणों द्वारा वह सुअर, बाघ और सिंहों को नहीं मारता? (अर्थात् मारता है)। इस लिये हे राजराजेश्वर महाराज दशरथ। मेरे इस कथन को झूठा मत मानिये। (मैं कहता हूँ कि) सिंह के और राजवंश के किसी बच्चे को बालक नहीं वरन् बड़ा ही समझना चाहिये।

मूल—(विश्वामित्र) सुन्दरी छंद*—राजन मैं तुम राज पठे अति। मैं सुत माँगो सु देहु महामति। दंब-सहायक ही नृपनायक। है यह बालक रामहि लायक॥ १९॥

* यदि भगवान के मुखारबिंद हो तो ऐसा होगा।

भावार्थ—राजाओं में तुम बहुत बड़े राजा हो। हे महामति! मैं ने जो माँगा है सो मुझे दीजिए (और जो आप स्वयं मेरे साथ चलने को कहते हैं उसका उत्तर यह है कि) आप देवताओं के सहायक और राजाओं के नायक हैं (अर्थात् जब देवताओं और राजाओं पर कष्ट पड़े, तब आप सहायतार्थ जायँ। आप देवताओं और राजाओं का कामकर सकते हैं, ऋषियोंका नहीं) यह काम (अर्थात ऋषियों के यज्ञ की रक्षा) राम ही के करने योग्यहै।

मूल—(राजा)—सुंदरीछंद—मैं तु कह्यौ ऋषि देन सु लीजिय। काज करौं हठ मूलि न कीजिय। प्राण दिये धन जाहिं दिये सब। केशव राम न जाहिं दिये अब॥ २०॥

(ऋषि)—राज तज्यो धन धाम तज्यो सब। नारि तजी सुत मोह तज्यो तब। आपनपौ तु तज्यो जगबंद है। सत्य न छाड़ तज्यो हरिचंद है॥ २१॥

शब्दार्थ—आपनपौ=अहंकार। जगबंद है=(जगद्वन्द्य) जिसे सारा संसार अच्छा समझता है।

भावार्थ—छन्द नं० २० तथा २१ का अर्थ सरल ही है।

मूल—(ऋषि)—सुंदरीछंद—राज पढ़ै पढ़ साज पढ़ै पुरु। नाम पढ़ै पढ़ धाम पढ़ै गुरु—मूढ़ सो मूढ़हि बाँधत हौ मन। ऐंड़त हौ नृप सत्य सनातन॥ २२॥

भावार्थ—बहुत सरल और स्पष्ट है।

मूल—दोहा—जान्यो विश्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आय।
राजा दशरथ सों कह्यो, वचन वशिष्ट बनाय ॥ २३ ॥

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है।

मूल—(वशिष्ठ)—षट्पद—इन ही के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं। इन ही के तपतेज सकल राक्षसबल हरिहैं। इन ही के तपतेज तेज बढ़िहै तन तूरण। इन ही के तपतेज होहिगे मंगल पूरण। कहि केशव जयजुत आइहैं इन ही के तपतेज घर। नृप बेगि राम लछिमन दोऊ सौंपौ विश्वामित्र कर ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—तपतेज=तपस्यां के तेज से। तूरण=(तूर्ण)शीघ्र। मंगल=विवाहादि शुभकार्य।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है।

मूल—(वशिष्ठ)—जोरछा-राजा और न मित्र, जानहु विश्वामित्र से। जिनको अमितचरित्र, रामचन्द्रमय जानिये ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे राजन्! विश्वामित्र के समान तुम्हारा और कोई भी मित्र नहीं है, क्योंकि इनका अपार चरित्र सब रामचंद्रमय है (तात्पर्य यह कि विश्वामित्रजी जितने काम करेंगे वे सब रामचन्द्र ही की भलाई के लिये होंगे)।

मूल—दोहा—नृप पै पठयन वशिष्ठ को, ऐसे भेटो आय।
सौंप्यो विश्वामित्र कर, रामचंद्र अकुलाय ॥ २६ ॥

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

मूल—पंकज वाटिका छन्द*—राम चलत नृपके युग लोचन। बारि भरित भये बारिद रोचन ॥ पायन परि क्षपिके सजि मौनहिं। केशव उठि गये भीतर भौनहिं ॥ २७ ॥

भावार्थ—रामचंद्रके चलते समय राजा दशरथ के दोनों नेत्र ऐसे हो गये जैसे पानी से भरा हुआ लाल बादल (आँखें लाल होगईं और आसू आगये)। विश्वामित्र के चरण छूकर चुपचाप उठकर महलों के अन्दर चले गये।

मूल—चामरछन्द—वेद मन्त्र तंत्र शोधि अस्त्र शस्त्र दै भले। रामचन्द्र लक्ष्मने सु विप्र छिप्र लै चले। लोभ लोभ मोह गर्व काम कामना हई। नींद भूख प्यास त्रास पासना सबै गई ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—अस्त्र=हथियार जो फेंक कर चाले जाते हैं (जैसे तीर, चक्र, बंदूक आदि) शस्त्र=वे हथियार जो हाथ में पकड़े हुए ही शत्रुपर चाले जाते हैं (जैसे तलवार, कटार, गदा इत्यादि)। लक्ष्मने=लक्ष्मण जी को। विप्र=विश्वामित्र। छिप्र=शीघ्र, जल्दी। लोभ=क्रोध। हई=(हनी) नष्ट कर दी गई।

भावार्थ—वेद और तन्त्रशास्त्र के मन्त्रों से अभिमंत्रित करके राम लक्ष्मण को अच्छे २ अस्त्र शस्त्र दिये गये (अर्थात् अर्पित की और विश्वामित्र जी ने निडर सब प्रकार के दु-

* [illegible]

थियारों के घालने की विधि वा युक्ति बताई), तदनंतर विश्वामित्र जी शीघ्र ही राम लक्ष्मण को अपने आश्रम को ले चले। (चलते समय) विश्वामित्र ने रामलक्ष्मण को बला और अतिबला विद्या पढाई जिसके प्रभाव से लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार और कामेच्छा नष्ट होगई और नींद, भूख, प्यास डर और सब प्रकार की अनिष्टकारिणी वासनायें जाती रहीं।

विशेष—इस छन्द के अंतिम दो चरणों से स्पष्ट विदित है कि जब किसी नव युवक को किसी महान् कार्य के लिये विदेश जाना पड़े, तब उसे चाहिये कि वह लोभ, मोहादि अनिष्टकारिणी मनोवृत्तियों के वशीभूत न रहे।

मूल—निशिपालिका छन्द—कामवन राम सब बास-तरु देखियो। नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो। ईश जहँ काम तनु कै अतनु उरिओ। छोड़ि वह, यह थल केशव निहारियो॥ २९॥

शब्दार्थ—कामवन=वह वन जहां महादेव ने काम को जला थाथा। बास=मुनियों के निवास स्थान। नैनसुख दैन=नेत्रों को सुख देने वाले। मन मैनमय=मन में कामेच्छा उत्पन्न करने वाले अर्थात् अत्यंत सुन्दर। ईश=महा देव जी।

भावार्थ—राम ने काम वन में पहुंचकर वहां के रहने वाले मुनियों के निवासस्थानों और वृक्षों को देखा जो ऐसे सुन्दर

थे कि उन्हें देख कर आँखों को सुख मिलता था और मन कामनामय हो उठता था, जिस वन में महा देव जी ने काम को जला कर बिना देह का कर दिया था। (पुनः) उस वन को छोड़कर (और आगे जाकर) विश्वामित्र का यज्ञ-स्थल देखा।

× मूल—दोहा—रामचंद्र लक्ष्मण सहित तन मन अति सुख पाय। देखी विश्वामित्र को परम तपोधन जाय॥ ३०॥

भावार्थ—सरल और स्पष्ट ही है।

दूसरा प्रकाश समाप्त॥

कहुँ हरि हरि हर हर रट रट्टहीं । कहुँ मृगशिशु मृगपति पय पियहीं । कहुँ मुनिगण चितवत हरि हिय हीं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—सुख=स्वाभाविकरीति से । श्रुति=वेद । मृगपति=सिंह । पय=पानी । मृगपति मृगशिशु पय पियहीं=मृग के बच्चे और सिंह एक साथ पानी पीते हैं । कहुँ मुनिगण चितवन हरि हियहीं=कहीं मुनि लोग अपने हृदय ही में ईश्वर को देखते हैं अर्थात् ध्यानावस्थित हैं ।

भावार्थ—अति सरल और स्पष्ट है ।

मूल—नराचछंद*-विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये । अदीयमान दुःख,सुःख दीयमान जानिये । अदंडमान दीन, गर्व दंडमान भेदयै । अपठ्यमान पापग्रंथ, पठ्यमान वेदयै ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—विचारमान=विचारने योग्य । अर्चमान=पूजने योग्य । अदीयमान=न देने योग्य । अदंडमान=अदण्डनीय, दंड न देने योग्य । दंडमान=दंडनीय, दंड देने योग्य । भेद=भेदभाव (समदृष्टि का अभाव) अपठ्यमान=न पढ़ने योग्य । वै=निश्चय ही ।

भावार्थ—(विश्वामित्र के आश्रम में जितने लोग रहते हैं उनके लिये और कोई वस्तु तो विचारने योग्य है नहीं) विचारने योग्य केवल ब्रह्म ही है, पूजने योग्य केवल देवता ही हैं (अन्य किसी की पूजा नहीं करते), न देने योग्य केवल

* लघु गुरु कमहीं देव पद षोडस बरन प्रमान ।
भेद नराच बखानिये केशवदास सुजान ।

दुःख ही है (अर्थात् इतने उदार हैं कि सब को सब कुछ देते हैं, केवल दुःख किसी को नहीं देते), सुख ही देने योग्य पदार्थ है (सब लोग यही चाहते हैं कि हम सबको सुख ही दिया करें), दीन जीव ही अदण्डनीय हैं (दीन जीवों को दंड नहीं दिया जाता), दंड देने योग्य गर्व और भेद भाव ही हैं (जो गर्व करते हैं वा भेदभाव रखते हैं उन्हींको दंड दिया जाता है अन्य को नहीं), पाप सिखानेवाले ग्रंथ ही अपाठ्य समझे जातेहैं (अन्य सब ग्रंथ पढ़े जाते हैं) और वेद ही पढ़ने योग्य ग्रंथ है (जो पढ़ता है सो वेद ही पढ़ता है)।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल—विशेषक छंद*—साधु कथा कथिये दिन केशवदास जहाँ। निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ। पावन वास सदा ऋषि को सुख को बरषै। को बरणै कवि ताहि विलोकत जी हरषै॥ ४॥

शब्दार्थ—दिन=प्रतिदिन। निग्रह=दमन करना, दबाना। मान= (१)अहंकार (२)परिमाण। वास=निवासस्थान। विलोकत=देखते ही।

भावार्थ—प्रति दिन जहां केवल साधु कथा (उत्तम वार्ता) ही कही जाती है (सिवाय उत्तम कथा वार्ता के और कोई वार्ता होती ही नहीं), वहां केवल मन ही का दमन किया जाता है

* पंच भगण धरि अंत गुरु केशव वरण सुसाज।
भगण्ड छंद विशेषक कह केशव कविराज।

(अन्य किसी का नहीं), मान (अहंकार) किसी में नहीं है; केवल 'दिनमान' शब्द में नाममात्र के लिये 'मान' शब्द (बोल चाल में सुनाई पड़ता) है । वह विश्वामित्र का पवित्र आश्रम सदा सुख की वर्षा किया करता है (वहां सब जीव सुखी ही रहते हैं) उसका माहात्म्य कौन कवि वर्णन कर सकता है, केवल उसके दर्शन मात्र से मन हर्षित हो जाता है।

अलंकार—परिसंख्या और संबंधातिशयोक्ति ।

(यज्ञ-रक्षण)

मूल—चंचला छन्द*—रक्षिबे को यज्ञ कूल बैठ बीर सावधान । होन लाग होमके जहां तहां सबै विधान । भीम भाँति ताड़का सु भंग लागि कर्न आय । बान तानि राम पै न नारि आनि छाँड़ि जाय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—कूल=निकट, किनारे । सावधान=सजग होकर । विधान=क्रिया विधि । होम=हवन । भीम भाँति=बड़े भयकर ढंग से । भंग लागि कर्न आय=आकर यज्ञ भंग करने लगी ।

भावार्थ—राम और लक्ष्मण दोनों बीर भ्राता सजग होकर यज्ञ की रक्षा के लिये यज्ञ-स्थल के निकट बैठे और जहां तहां हवन (यज्ञ) की क्रिया विधि होने लगी । (हवन होता हुआ देख कर) ताड़का नाम्नी राक्षसी ने आकर भयंकर ढंग से यज्ञ को भंग करना आरंभ कर दिया । राम जी

*कम ही गुरु लघु दीजीये आते पद पंद्रह वर्ण ।
चार ठौर यह चंचला प्रगटत कवि [illegible]

ने बाण तो ताना परंतु ताड़का को स्त्री समझ कर वह बाण उस पर छोड़ा नहीं जाता (स्त्री पर आघात करना वीरधर्म-विरुद्ध बात है)।

मूल—(ऋषि) सोरठा-कर्म करति यह घोर, विप्रन को दसहू दिसा। मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँड़िये ॥ ६ ॥

भावार्थ—(राम जी को संकोच में पड़ा हुआ देखकर विश्वामित्र जी कहते हैं कि) हे राम ! यह ताड़का सब ओर ब्राह्मणों को सताने के लिये घोर पापकर्म किया करती है, एक हजार मस्त हाथियों का बल इसमें है, इसे स्त्री (अबला) जान कर छोड़िये मत।

मूल—(राम)-शशिवदना छंद-सुनि मुनि राई। जग सुख दाई ॥ कहि अब सोई। जेहि यश होई ॥ ७ ॥

भावार्थ—(राम जी ने कहा) हे जगत को सुख देनेवाले मुनिराज ! सुनिये, मुझसे अब वह बात कहिये, जिससे मेरा यश हो (अर्थात् कोई ऐसा उदाहरण बतलाइये जिससे अगर मैं इस स्त्री को मारूं तो मुझे लोग स्त्रीवध का अपयश न दे सकें)।

मूल—(ऋषि)—कुंडलिया-सुता विरोचन की हुती दीरघजिह्वा नाम। सुरनायक सो संहरी परम पापिनी वाम। परम पापिनी वाम बहुरि उपजी कविमाता। नारायण सो हती चक्र चिन्तामणि दाता। नारायण सों हती सकल द्विज दूषण संयुत। त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सह सुत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—सुरनायक=इन्द्र। संहरी=मारी। कवि=शुक्राचार्य। हती=मारी। नारायण सों=नारायण की कसम खाकर

कहता हूं। हती=थी। सकल द्विज दूषण संयुत=सब ब्राह्मणों के लिये जो कार्य दूषणवत् था उसी दूषण से वह संयुक्त थी। त्यौं=उसी प्रकार यह ताड़का भी द्विज द्वेषिणी है।

भावार्थ—दैत्यराज विरोचन की पुत्री, जिसका नाम दीर्घजिह्वा था, बड़ी पापिनी स्त्री थी। उसे इन्द्र ने मारा था। उस के बाद शुक्राचार्य की माता बड़ी पापिनी हुई, उसे नारायण ने (जो चिंतामणि के समान सेवकों को मन वांछित फल देनेवाले हैं, इन्द्र के कहने से) अपने निज चक्र से मारा। मैं नारायण की सौगंध खाकर कहता हूं कि जैसे वह (कविमाता) सब ब्राह्मणों (देवताओं) की द्वेषिणी थी, वैसे ही यह ताड़का भी है, इसलिये हे त्रिभुवन नाथ (रामचंद्र) तुम इसे पुत्रों सहित मार डालो।

अलंकार—इस छन्द में 'परम पापिनी वाम' और 'नारायण सो हती' की आवृत्ति से यमक अलंकार सिद्ध होता है।

सूचना—यदि "नारायण सों हती" में यमक न माना जायगा तो पुनरुक्ति दोष आजायगा, जो केशव ऐसे महाकवि के महाकाव्य में हो नहीं सकता।

मूल—[ऋषि]—दोहा—द्विज दोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि। राम विराम न कीजिये वाम ताड़का तारि॥९॥

भावार्थ—विप्रद्रोही के मारने में सोच विचार न करना चाहिये, क्या पुरुष और क्या स्त्री (यदि वह विप्रद्रोही हो तो उसे निश्चय मार देना चाहिये) हे राम! अब देर

मत करो, इस दुष्टा स्त्री ताड़का को तारो (अपने हाथों मारकर सुगति दो)।

मूल—मरहट्टा छन्द-यह सुनि गुरु बानी, धनु-गुन तानी जानी द्विजदुखदानि। ताड़का सँहारी, दारुण भारी, नारी अति बल जानि। मारीच बिडान्यौ जलधि उतान्यौ मान्यौ सबल सुबाहु। देवन गुण पर्ख्यौ पुष्पन बर्ख्यौ हर्ष्यौ अति सुरनाहु॥ १०॥

शब्दार्थ—धनु गुन=धनुष का रोदा। दारुण=कठिन। अति बल=प्रबला। बिडान्यौ=भगा दिया। देवन गुण पर्ख्यौ=देवताओं ने रामचन्द्र के गुण को परख लिया। सुरनाहु=इन्द्र। हर्ष्यौ=(इस हेतु कि इन्द्र को निश्चय होगया कि ईश्वरावतार होगया, अब रावण मारा जायगा)।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

मूल—दो०—पूरण यज्ञ भयो जहीं जान्यो विश्वामित्र।
धनुषयज्ञ की शुभ कथा लागे सुनन विचित्र॥११॥

भावार्थ—सरल और स्पष्ट ही है।

अलंकार—यज्ञ और धनुषयज्ञ में 'यज्ञ' की आवृत्ति से लाटानुप्रास है।

मूल—चंचरी छंद*—आइयो तेहि काल ब्राह्मण यज्ञ को थल देखि कै। ताहि पूछत बोलि कै ऋषि भाँति भाँति विशेषि कै॥ संग सुन्दर राम लक्ष्मण देखि देखि सु हर्षई। बैठि कै सोइ राज मंडल वर्णई सुख वर्षई॥ १२॥

भावार्थ—सरल ही है—

मूल—(ब्राह्मण)—शार्दूलविक्रीड़ित छन्द

सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जना शोभना।
राजा राज पुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्रदा।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्या परा सर्वदा ॥१३॥

शब्दार्थ—शोभन=सुन्दर। संभार=प्रबंध। संभावना=विचार। तत्तत्कार्य=अपने अपने काम में। समग्र=सब। व्यग्र=चित्त से लगे हुए। समागता=आए हुए हैं। पूज्यापरा=दूसरों से पूजे जाने योग्य।

सूचना—जनक पुर से आया हुआ एक ब्राह्मण पथिक विश्वामित्र के यज्ञ में यह कथा वर्णन करता है। यहां से लेकर पांचवें प्रकाश के दूसरे छन्द तक सब वाक्य उसी ब्राह्मण के मुख के समझने चाहिये।

भावार्थ—नाना देशों से आये हुए सम्माननीय राजागण जनकपुरमें एकत्रित हैं। राजा जनक, और राज पुरोहित (सतानंदादि) तथा उनके मित्र और सुमंत्र देनेवाले मंत्री गण, तथा मिथिला पुर के सबही सुन्दर पुरवासी जन, सब अपने अपने काम में चित्त से लगे हुए हैं, क्योंकि सीता के सुंदर विवाहोत्सव (स्वयंवर सभा) की सामग्री तथा प्रबंध का विचार सबही के चित्त में चढ़ा हुआहै।

मूल—दोहा—खण्ड परशु को शोभिजै सभा मध्य कोदण्ड।
मानहु शेष अशेषधर धरयहार बरिबंड ॥ १४ ॥

भावार्थ—खण्डपरशु=महादेव । अशेष=समस्त । धर=धरती, पृथ्वी । वरिवंड=प्रवल ।

भावार्थ—सभाके बीच में महादेव का धनुष रक्खा हुआ ऐसा शोभायमान है मानो सारी पृथ्वी को धारण करनेवाला प्रवल शेषनाग है ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार ।

मूल—सवैया—

शोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्वल छाई ।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जोन्हाई ॥
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
देवन स्यौं जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई ॥१५॥

शब्दार्थ—ईश=ब्रह्मा । सुधाधरमंडल=चंद्रमा का परिवेष (वर्षाऋतु में जो कभी कभी चंद्रमा के इर्दगिर्द गोल घेरा सा दिखाई पड़ता है) । स्यौं=साहित, समेत ।

भावार्थ—हाथीदांत की बनी हुई सुन्दर उज्वल छविवाली मचानों की ऐसी पंक्ति शोभा दे रही है। मानो ब्रह्माने चंद्रमा के परिवेष की ज्योति को पृथ्वीपर सुधारके रख दिया है । उसी पर सब सुन्दर राजकुमार बैठे हुए हैं । सो वह समाज कैसी शोभित होती है, मानो देवताओं सहित देवसभा ही सीता के स्वयंवर को देखने के लिये आई हो ।

अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

मूल-दोहा-नचति मंच-पंचालिका कर संकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्त-वृत्ति सुकुमार॥१६॥

शब्दार्थ-पंचालिका=(१)नटी, (२)पाँचो पंक्तियाँ। कर=हाथ, हस्तक। संकलित=युक्त। मंच-पंचालिका=मंच की पांचोपंक्तियाँ।

भावार्थ--(राजा लोग पंचावली पर बैठे हुए हाथ उठा उठाकर एक दूसरे से बातें करते हैं वा परस्पर प्रचारते हैं, उसीकी उत्प्रेक्षा है कि) मंचपंचावली रूपी वेश्या हाथ उठा उठाकर अर्थात् हस्तक के अनेक भाव बता बता कर नाचती है, (अर्थात् कभी झुकती है कभी पुन. ऊपर को उठती है) मानो राजाओं की सुकोमल चित्तवृत्ति नाचती है (अर्थात् सब राजा अपने अपने अनेक प्रकार के विचार हाथ उठाउठा कर प्रकट करतेहैं)।

अलंकार--उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

मूल--सोरठा-सभामध्य गुण ग्राम, बंदी सुन द्वै शोभहीं।
सुमति विमति यहि नाम, राजन को वर्णन करहिं॥१७॥

शब्दार्थ--गुणग्राम=गुणों के समूह अर्थात् बड़े गुणी।

भावार्थ--उस सभा में बड़े गुणी (अच्छे जानकार, जो सब राजाओं को अच्छी तरह जानते थे) दो बंदीजन (भाट) शोभायमान हैं। एक का नाम सुमति दूसरे का नाम विमति है। वेही दोनों सब राजाओं का परिचय वर्णन करते हैं। (सुमति प्रश्न करके प्रत्येक राजा का परिचय पूछता जाता है, और विमति बड़ी चतुराई से उत्तर देता है। सुमति विमति

को इस बात चीत में 'श्लेष' अलंकार की अच्छी गंभीर छटा दिखलाई गई है)।

मूल—(सुमति) दोहा—

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु बिशाल।
सुरभि स्वयंबर जनु करी मुकुलित शाख रसाल ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—सुरभि=बसन्त ऋतु । मुकुलित=मंजरीयुक्त । रसाल=आँब ।

भावार्थ—सुमति पूंछता है, यह कौन राजा है जो अपनी रोमांचित विशाल भुजा को देख रहा है । मानो स्वयंवर रूपी बसन्त ऋतु ने आँब की शाखा को मंजरीयुक्त कर दिया है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—(विमति) सोरठा—

जेहि यश परिमल मत्त चंचरीक चारण फिरत ।
दिशि विदिशन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप ॥१९॥

शब्दार्थ—परिमल=सुगंध । चंचरीक=भँवर । चारण=बंदीगण । अनुरक्त=अनुरागयुक्त । मल्लिकापीड़=(१)मल्लिक नामक पहाड़ी देश का शिरोभूषण (राजा) (२)चमेलीकी माला ।

भावार्थ—(विमति उत्तर देता है) जिसके यश रूपी सुगंध से मस्त होकर भौंर रूपी बंदीजन अनुरागयुक्त होकर चारो ओर घूमते फिरते हैं, यह वही मल्लिक नामक पार्वत्य प्रदेश का राजा है ।

अलंकार—इस में चमेली की माला और राजा का सम अभेद रूपक है ।

सूचना—श्लेष से इसका अर्थ चमेली की माला पर भी घटित हो सकता है।

मूल—(सुमति) दोहा— ×

जाके सुख मुखबास ते बासित होत दिगंत।
सो पुनि कहि यह कौन नृप शोभित शोभ अनंत ॥ २० ॥

शब्दार्थ—सुख=सहज, स्वाभाविक। शोभ=शोभा।

भावार्थ—(सुमति पूंछता है) जिसके तन की स्वाभाविक सुगंध से सब दिशायें सुवासित हो रही हैं, जो अनंत शोभा से शोभित हो रहा है, वह कौन राजा है, सो पुनः मुझसे कहो।

मूल—(विमति) सोरठा—

× राजराजदिग-भाम-भाल-लाल लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जगनाम काशमीर को तिलक यह ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—राजराज=कुबेर। राजराजदिग=उत्तर दिशा।

भावार्थ—उत्तर दिशा रूपी स्त्री के मस्तक के लाल (माणिक जटित बेना) का सदैव लोभ रखनेवाला, जिसका नाम संसार में अति प्रसिद्ध है, यह काश्मीरदेश का राजा है।

सूचना—इसके श्लेष से और कई अर्थ हो सकते हैं

मूल—(सुमति) दोहा—

× निज प्रताप दिनकर करत लोचन कमल विकास।
पान खात मुसुकात मृदु को यह केशवदास ॥२२॥

भावार्थ—जो अपने प्रताप रूपी सूर्य के द्वारा सब के कमल

रूपी नेत्रों को विकसित कर रहा है (जिसे सब लोग आंखें फाड़ फाड़ कर देख रहे हैं) और पान खाये हुए मुसकुरा रहा है यह कौन राजा है ?

मूल-(विमति)सोरठा—

नृप माणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो।
कटितट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई ॥ २३ ॥

भावार्थ—राजाओं में माणिकवत् (लालवत्=बड़ा रागी, अत्यंत प्रेमी) और सुन्दर, तथा दक्षिण दिशा रूपी स्त्री का मनभाया हुआ (प्रेमी नायक) जिसकी कमर में सुन्दर वस्त्र पड़ा हुआ है, यह राजा सुन्दर और शुभ कांचीपुरी को मंडित करने वाला है (कांची पुरी का राजा है)।

मूल-(सुमति)दोहा—

कुंडल परसन मिस कहत कहो कौन यह राज।
शंभु सरासनगुण करौं करणालंबित आज ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुमति पूंछता है कहो विमति, यह कौन राजा है, जो कुंडल छूने के बहाने से (मानों) यह कह रहा है कि आज मैं शंभु के धनुष की डोरीको अवश्य कानतक खींचूंगा।

मूल-(सुमति)सोरठा—

जानहि बुद्धि निधान, मत्स्यराज यहि राज को।
समर समुद्र समान जानत सब अवगाहि कै ॥ २५ ॥

भावार्थ—(विमति कहता है) हे बुद्धि निधान सुमति, इस

राजा को तुम मत्स्यराज (मत्स्यदेश का राजा) समझो। यह राजा समर को समुद्र की तरह मथ डालना भली प्रकार जानता है। (श्लेष से इसका अर्थ किसी बड़े मच्छ पर भी घटित हो सकता है)।

मूल—(सुमति)दोहा—

अंगराग रंजित रुचिर भूषण भूषित देह।
कहत विदूषक सों कछू सो पुनि को नृप यह॥२६॥

भावार्थ—(सुमति पूछता है) जिसका शरीर चंदन केशर आदि के लेप से रंजित (रँगा हुआ) और सुन्दर है तथा जिसका शरीर सुन्दर भूषणों से विभूषित है, और जो विदूषक से कुछ कह रहा है वह कौन राजा है सो पुनः मुझे बतलाओ।

मूल—(विमति)सोरठा—

चंदन चित्र तरंग सिंधुराज यह जानिये।
बहुत वाहिनी संग मुकुतामाल विशाल उर॥२७॥

भावार्थ— जिसके शरीर पर चंदन, की चित्रविचित्र तरंगें सी देख पड़ती हैं, बहुत सी सेना जिसके साथ है और जिसके विशाल हृदय पर मोतियों की माला है, यह सिंधु देश का राजा है। (श्लेष से इसका अर्थ समुद्र पर भी घटित होसकता है)।

मूल—दोहा—लिगरे राज समाज के कहे गोत्र गुणग्राम।
देश स्वभाव प्रभाव वर कुल बल विक्रम नाम॥२८॥

भावार्थ—स्पष्ट है।

मूल—घनाक्षरी छंद—पावक पवन, मणि पन्नग पतंग पितृ जेते

जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं। असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिन्धु, केशव चराचर जे वेदन बताये हैं। अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब बरणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाये हैं। सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे को भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—मणिपन्नग=बड़े बड़े पन्नग अर्थात् शेष, वासुकी इत्यादि। पतंग=पक्षी। पितृ=पितृलोक निवासी। जोतिवंत=प्रतापी (चन्द्र सूर्यादि)। विश्वरूप=विश्व भरके रूपधारी लोग।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—सोरठा—कहौ विमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनायकै।
चहूं ओर कर फेरि, सब ही को समुझाय के ॥३०॥

मूल—गीतिका—कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै। पुनि श्रौण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षिहै। वह राज होइ कि रंक केशवदास सो सुख पाइहै। नृपकन्यका यह तालुके उर पुष्पमालहि नाइहै ॥३१॥

मूल—दोहा—नेक शरासन आसनै तजै न केशवदास।
उद्यम के थाक्यो सबै राज समाज प्रकास ॥ ३२ ॥

भावार्थ—छंद—नं० ३०, ३१ तथा ३२ का भावार्थ सरल ही है।

मूल—सुंदरी—शक्तिकरी नाहिं भक्ति करी अब। सो न नयो तिल शीश नये सब। देख्यो मैं राज कुमारन के बर। चाप चाल्यो नहिं आप चढ़े सर ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—शक्ति=बल। तिल=तिलभर भी। बर=बल।

खर=गदहा।

भावार्थ—(बिमति कहता है) इस समय राजाओं ने अपना अपना बल नहीं लगाया, वरन् शिव जी का धनुष जान कर उस पर अपनी भक्ति दर्शाई है (केवल उसे छूकर भक्ति से शीश नवाया है), धनुष तो तिलमात्र भी नहीं नया, वरन् सब के सिर झुक गये। मैं राजकुमारों का बल देख चुका। धनुष तो किसी से न चढ़ा, (धनुष की प्रत्यंचा कोई न चढ़ा सका) वरन् सब राजाकुमार स्वयं ही गदहे पर सवार हुए (अपनी प्रतिष्ठा खोई)।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल-मत्तगयंद-दिगपालन की भुवपालन की लोकपालनकी किन मातु गई च्वै। कत मांड़ भये उठि आसन तें कहि केशव शंभु सरासन को छुई। अरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आंगुरहू द्वै। कछु स्वारथ सो न भयो परमारथ आयं है धीर चले बनिता है॥ २४॥

शब्दार्थ—किन मातु गई च्वै=माता का गर्भ क्यों न गिर गया। मांड़ भये=अपने हाथों अपनी अप्रतिष्ठा कराई।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

अलंकार—तृतीय विषम।

(इति तीसरा प्रकाश)

चौथा प्रकाश

दोहा—कथा चतुर्थ प्रकाश में बाणासुर संबाद ।
रावण सों, अरु धनुष सों दशमुख बाण विषाद ।

मूल—दोहा—सबही को समझो सबन बल विक्रम परिमाण ।
सभा मध्य ताही समय आये रावण बाण ॥ १ ॥

शब्दार्थ—विक्रम=करतूत । परिमाण=मात्रा । बाण=बाणासुर ।

भावार्थ—स्पष्ट और सरल ही है ।

मूल—डिल्लाछंद—नर नारि सबै । भय भीत तबै ॥
अचरज्जु यहै । सब देखि कहै ॥ २ ॥

भावार्थ—रावण और बाणासुर को आया हुआ देखकर, सब नर-नारी भयभीत हुए और सब ने यही कहा कि यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ।

मूल—दोहा—है राकस दशशीश को दैयत बाहु हजार ।
कियो सबन के चित्त रस अद्भुत भय संचार ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह दस मूंड वाला राक्षस कौन है ? और यह हजार भुजा वाला दैत्य कौन है ? (इन दोनों की अद्भुत आकृतियां और भयंकर भेस देख कर) सबों के चित्त में अद्भुत और भयानक रस ने संचार किया (सब को आश्चर्य हुआ और सब डर गये) ।

अलंकार—'को है' शब्द में देहरी-दीपक अलंकार है ।

मूल—(रावण)-विजोहाछंद—शंभुकोदंड दै। राजपुत्री किने। टूक द्वै तीन कै। जाहुँ लंकाहिं लै ॥ ४ ॥

भावार्थ—रावण मुनति से कहता है महादेव का धनुष मुझे दो और बताओ कि राजपुत्री कहां है? धनुष को तोड़ कर दो तीन खंड कर डालूं और उसे लंका को ले जाऊं।

मूल—(विमति)—शशिवदनाछंद—दसशिर आओ। धनुष उठाओ॥ कछु बल कीजै। जग जस लीजै ॥ ५ ॥

भावार्थ—(विमति उत्तर देता है) हे दसशिर आइये और धनुष को उठाइये। कुछ बल कीजिये और जगत में यश लीजिये।

मूल—(बाण) गीतिकाछंद—दसकंठ रे शठ छांडि दे हठ बार बार न बोलिये। बल साजु राज समाज में बल साजु चित्त न डोलिये॥ गिरिराज ते गुरु जानिये सुरराज को धनु हाथ लै। सुख पाय ताहि चढ़ायकै घर जाहि रे यश साथ लै॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बल साजु=पराक्रम करो। चित्त न डोलिये=साहस न हारो। सुरराज=महादेव।

भावार्थ—सरल और स्पष्ट है।

मूल—मंथना छंद*—बाणी कही बान। कीन्हो न सो कान॥ अद्यापि आनी न। रे बंदि कानीन ॥७॥

शब्दार्थ—कीन्हो न सो कान=सुनी अनसुनी कर गया, सुन कर भी ऐसा भाव जताया मानो सुना ही नहीं। अद्यापि=

* लगभग दो तथा छह बरनुन रचहु मंथना छंद।

अभी तक। आनी न=नहीं लाया (सीता को)। कानीन= कन्या से उत्पन्न (क्षुद्र, चोट्टी का)।

भावार्थ--सरल है।

मूल-(वाण)मालतीछंद*--जुपै जिय जोर। तजौ सब शोर॥
सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि॥ ८॥

शब्दार्थ और भावार्थ-सरल है।

मूल—(रावण) दंडकछंद—वज्रको अखर्व गर्व गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै ल अंगना। खंडित अखंड आशु कीन्हो है जलेश पाशु, चंदन सी चन्द्रिका सों कीन्हीं चंद वंदना॥ दंडक में कीन्ही कालदंड हू को मान खंड मानो कीन्ही काल ही की कालखंड खंडना। केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडैं अब मेरे भुजदंडन की बड़ी है विडंबना॥ ९॥

शब्दार्थ—अखर्व=बहुत बड़ा। पर्वतारि=इन्द्र। सुपर्व=देवता। अंगना=स्त्री। आशु=शीघ्र ही। जलेश=वरुणदेव। पाशु= फांसी, कमंद। दण्डक=एक दंड में। कालदंड=यमराज की गदा। कालखंड=(कालका खंडन करनेवाला) ईश्वर। कोदंड=धनुष। विषदंड=कमल की नाल, पौनार। विडंबना= लज्जा की बात।

भावार्थ—(रावण कहता है)-मेरे जिन भुजदंडो ने वज्र का भारी गर्व गंजनकर डाला (वज्र भी जिन्हें नहीं काट सका),

* जगन दोय षट वरण युत रचहु मालती छंद।

जिन्हों ने इन्द्र को जीत लिया, जिनके डर से सब देवता अपनी अपनी स्त्रियां ले ले कर भाग गये, वरुण के अखंड फांस को जिन्होंने शीघ्र ही तोड़ डाला, और चंन्द्रमाने भी न लड़ सकने के कारण) जिन भुजदंडों की चंदन समान शीतल चन्द्रिकासे पूजा की, एक घड़ी मात्रमें जिन्होंने कालदंडका भी मान ऐसे खंडित करडाला जैसे स्वयं परब्रह्म परमेश्वर काल ही को खंडित करडालते हैं। भला वही मेरे प्रबल भुजदंड अब इस कमलनाल की भांति (अत्यन्त कमजोर) धनुष को तोड़ें, यह काम मेरे भुज दंडों के लिये बड़ी लज्जा की बात है ! (रावण, बहाने से धनुष उठाने तथा तोड़ने से इनकार करता है)।

अलंकार—अत्युक्ति।

मूल—तुरंगम छंद*—

(बाण)—बहुत वदन जाके। विविध वचन ताके।
(रावण)—बहुभुज युत जोई। सबल कहिय सोइ॥ १०॥

शब्दार्थ—वदन=मुख। विविधि=अनेकप्रकारके (असत्य, छलयुक्त इत्यादि)।

भावार्थ—(बाणासुर कहता है)-हां ठीक है ! जिसके बहुत से मुख होते हैं उसके वचन भी अनेक प्रकार के होते हैं (अर्थात् असत्य बोलता है, छल कपट युक्त वचन बोलता

* चरन है गुरु भाई है रुचि तुरगम छंद।

है)। (रावण जवाब देता है) हां ठीक है ! जिसके बहुत सी भुजायें होती हैं वही तो बली कहलाता है (अर्थात् कहलाता ही भर है, वास्तव में बली होता नहीं)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

मूल—दोहा—

(रावण)-अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण।
(बाण)-मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ बिधान॥११॥

भावार्थ—(रावण कहता है) बाण, इन अत्यंत बलहीन भुजाओं के बोझ के बल से ही बली कहलाना चाहते हो ? (बाणासुर कहता है) हे रावण, मेरी भुजाओं ने संसार में जो काम किया है उसे सुनो।

मूल—(बाण)—सवैया—

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप पणासी।
देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातों रसातलके जे विलासी।
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमंडल छत्र प्रभासी।
जाने को केशव कैतिक बार में सेस के सीसन दीन्ह उसासी१२

शब्दार्थ—हौं=मैं। पापप्रणासी=पापविनाशक। विलासी=रहनेवाले। अखंड=सम्पूर्ण। छितिमंडल=पृथ्वी। छत्र प्रभासी=छत्र के समान। उसासी=दम लेने की फुरसत, आराम, छुटकारा।

भावार्थ—(बाणासुर कहता है) जब जब मैं अपने पिता जी के पवित्र और पापनाशी चरणों की वंदना करने के लिये (पाताल

में रहनेवाले राजा बलि बाणासुर के पिता हैं) जाता हूँ, तब तब मैं सातों रसातलों के निवासियों को देखता हूँ (उनमें से कोई भी मेरे समान बली नहीं है)। मैं समस्त पृथ्वीमंडल को अपने भुजदंडों पर छाता के समान तान लेता हूँ। न जाने कितनी बार मैंने शेषनाग के फनों को (पृथ्वीमंडल को अपने हाथों से थाम कर) दम लेने की फुरसत दी है। (अर्थात् जब मैंने पृथ्वी को उठा लिया तब इस धनुष को उठाना कौन बड़ी बात है)।

अलंकार—काव्यर्थापत्तिगर्भित अत्युक्ति।

मूल—(रावण)—कमलाछंद*—तुम प्रबल जो हुते। भुजबलनि ॥ पितहि भुव ल्यावते। जगत यश पावते ॥ १३ ॥

(रावण बाणासुर से कहता है) यदि तुम बली थे और तुम्हारी भुजायें बलसंयुक्त थीं, तो बाप को इस भूमिलोक में लाते, और संसार में यश लेते।

मूल—तोमरछंद—(बाण)—

पितु आनिये केहि ओक। दिय दक्षिणा सब लोक
यह जानु रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन ॥

शब्दार्थ—ओक=घर, निवासस्थान। दीन=बलहीन (ब्राह्मण)। रस=आनन्द।

भावार्थ—(बाणासुर कहता है)—पिता को भूलोक में लाकर

* नगन आदि दै नगन पुनि लघुगुरुदीजै अंत।
आठ चरण प्रतिपद लखौ कमलाछंद कहंत।

किस स्थान पर बैठालें उन्हों ने तो सब पृथ्वी दान कर दी है (दान की वस्तु पुनः ग्रहण करना पाप है)। हे दीन (ब्राह्मण) रावण ! तुझे जानना चाहिये कि हमारे पिता ब्रह्मानंद में मग्न हैं (तेरी तरह विषयानंद के लिये दौड़े नहीं फिरते)।

मूल—सवैया—

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुरसो जेइ मार्‍यो।
लोक चतुर्दश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचार्‍यो।
श्रीकमलाकुचकुंकुममंडन-पंडित देव अदेव निहार्‍यो।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहुकोकरतार पसार्‍यो ॥१५॥

शब्दार्थ—श्री कमला-कुच-कुंकुम-मंडन-पंडित=श्री लक्ष्मी जी के कुचों पर केशरचंदनादि की मकरिकादिचित्र-रचना बनाने में चतुर पंडित। अदेव=दानव। करतारहु को करतार=ब्रह्मा के भी बनानेवाले (विष्णु)।

भावार्थ—(बाणासुर अपने पिता बलि की बड़ाई करता है) जिस विष्णु ने एक पल मात्र में कैटभ, नरकासुर, मधु, और मुर नामक दैत्यों को मार डाला (अर्थात् अत्यंत बली थे), जो चौदहो लोकों का रक्षक है; सर्वत्र व्याप्त है (पूरण) और जिसके गुणों का बखान वेद और पुराण करते हैं, जो श्री लक्ष्मी जी के कुचों पर केशर की रचना करने में चतुर पंडित है (अर्थात् साक्षात् लक्ष्मी ही जिसकी स्त्री हैं), जिसको देवताओं और दैत्यों सबों ने देखा है, उसी ब्रह्माके भी बनाने-

वाले विष्णु ने बलि के सामने भिक्षा मांगने के लिये हाथ फैलाया था। (इसमें मधुकैटभादिक के मारनेवाले कहकर विष्णु की संहारक शक्ति का पता दिया, लक्ष्मीपति जताकर विष्णु की पालनशक्ति का अनुमान कराया और 'ब्रह्मा के भी रचयिता' कहकर सृष्टिकरण शक्ति का परिचयदिया। ऐसे विष्णु भी जिस बलि के सामने सिवाय भीख मांगने के और कुछ न कर सके वह बलि कैसा प्रबल प्रतापी होगा इसका अनुमान सहजही में हो सकता है। व्यंग से यह बात निकली कि ऐसे पिता का पुत्र मैं हूं, तो मेरे बल और प्रताप का भी कुछ अनुमान कर लो, क्योंकि पुत्र में पिता के गुण होते ही हैं)।

२१ छंद में जितने विशेषण वाक्य हैं वे विष्णु के अलावा 'कर' पर भी लग सकते हैं। दोनों दशाओं में छंद के तात्पर्य में कुछ अंतर नहीं आता।

अलंकार—प्रथम निदर्शना।

मूल—(रावण)—दोहा—

हमहिं तुमहिं नहिं बूझिये विक्रम वाद अखंड।
अब ही यह कहि देहगो मदनकदन-कोदंड॥ १६

भावार्थ—रावण कहता है अपने अपने बल पराक्रम के में हमको तुमको बहुत बड़ा झगड़ा न करना चाहिये। अभी शंकर का धनुष ही इसका फैसला कर देगा। अर्थात् हम तुम दोनों धनुष को उठावें। जो उठालेगा वही अधिक बली

लिये हो समझा जायगा ।

मूल—संयुता छंद—

वृत वाण रावण को सुन्यो। सिर राज मंडल में धुन्यो।
(विमति)जगदीश अब रक्षा करो। विपरीत बात सबै हरो॥१७॥

भावार्थ—जब रावण और बाणासुर की ऐसी वार्ता (विमति ने) सुनी, तब उसी समय उसी राजमंडल में वह अपना सिर पीटने लगा (व्याकुल हो उठा) और बोला कि हे जगदीश (महादेव) अब हमारी रक्षा करो और जो अमंगल होता दिखाई देता है उसे हरो (क्योंकि तुम्हारा नाम 'हर' है) ।

मूल—दोहा-रावण वाण महाबली जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु करपि हैं ताको कहा विचार॥१८॥

भावार्थ—रावण और बाणासुर दोनों बड़े बलवान हैं, यह बात सारा संसार जानता है । यदि दोनों धनुष चढ़ावेंगे तो फिर क्या होगा ? (अर्थात् यदि दोनों ने धनुष को उठा लिया तो सीता किसको व्याही जायगी ?)

मूल—(वाण)--सवैया—

केशव और ते और भई गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आय मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी।
वाढ़िगयो बकवाद वृथा यह भूलि न भाट सुनावहि गारी।
चाय चढ़ाइहौं कीरति को यह राज करै तेरी राजकुमारी॥१९॥

भावार्थ—(बाणासुर कहता है)—दशा कुछ की कुछ होगई । ईश्वर की करणी जानी नहीं जाती । मैं तो शरबीर पुरुषों से

भेंट करने को आया था (धनुष उठाने को नहीं), परंतु यहाँ आने पर सदैव के अविचारी रावण से भेंट होगई, और व्यर्थ विवाद बढ़गया। हे भाट (विमति) तू भूल करके भी मुझे यह गाली न दे (कि बाणासुर ब्याह करने के निमित्त धनुष उठाना चाहता है)। मैं तो इस धनुष को केवल अपनी कीर्ति के वास्ते उठाता हूँ। तेरी राजकुमारी अपना मनमाना राज्य करे (जिसके साथ चाहे अपना विवाह करे)।

मूल—मधुछंद—(रावण)—

रोकि सकै कहु को रे। युद्ध जुरे यम हू कर जोरे।
राज सभा तिनुका करि लेखौं। देखि के राज सुता धनु देखौं॥२०॥

भावार्थ—(रावण कहता है)—मुझको विवाह करने से कौन रोक सकता है। युद्ध में यमराज भी सामने आकर हाथ जोड़ने लगता है। इस सभा के राजाओं को मैं तृण के समान समझता हूँ। परंतु पहले राजकुमारी को देखूँ (कि कैसी सुन्दरी है) तब धनुष को देखूँगा।

मूल—सवैया—(बाण)—

बेगि कहौ तब रावण सों अब बेगि चढ़ाउ शरासन को।
बनाइ बनाइ कहा कहै छोड़ि दे आसन बासन को।
जानत है किधौं जानत नाहिन तू अपने मदनासन को।
ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत पूजे बिना नृपशासन को॥२१॥

शब्दार्थ—आसन=बिछौना। बासन=वस्त्र (राजोचित वस्त्र)। मदनासन=घमंड छोड़नेवाला (मैं बाणासुर)। नृपशासन=

राजा जनककी आज्ञा अर्थात् धनुष को तोड़ने की शर्त।

भावार्थ—(बाणासुर ने रावण से कहा कि) अब तू शीघ्र ही धनुष को चढ़ा, बातें क्यों बनाता है। सिंहासन छोड़ राजोचित वस्त्राभूषण उतार, काछा कस, मल्ल रूप से तैयार हो जा। तू अपने अहंकार तोड़नेवाले (मुझको) को जानता है कि नहीं? विना राजा की आज्ञा पूरी किये हुए वैसे ही तेरा मनोर्थ कैसे पूरा हो सकेगा (अर्थात् मेरे रहते तू विना धनुष तोड़े ही सीता को कैसे विवाह लेगा)।

मूल—बंधुछंद—(रावण)—बाण न बात तुम्हैं कहि आवै।
(बाण)—सोई कहौं जिय तोहि जो भावै?
(रावण)—का करिहौ हम योंहीं बरैंगे?
(बाण)—हैहयराज करी सो करैंगे॥ २२॥

भावार्थ—(रावण) हे बाण तुम्हें बात करने तक का शहूर नहीं है। (बाण) तो क्या मैं तुम्हारी चितचाही बात कह दिया करूं तब तुम समझोगे कि मुझे बात करने का शहूर है? (रावण) अच्छा यदि हम विना धनुष तोड़े ही सीता को विवाह लें तो तुम क्या करोगे? (बाण) बस वही करेंगे जो सहस्रार्जुन ने किया था।

विशेष—सहस्रार्जुन ने एक समय रावण को विलक्षण जंतु समझ कर पकड़ लिया था, और अगाड़ी पिछाड़ी लगाकर घोड़े की तरह अस्तबल में बांध रक्खा था, पुनः दसो सिरों पर

दीपक रख कर दीवट की तरह नृत्यशाला में खड़ा कर रक्खा था।

मूल—दंडकछंद—(रावण)—भौंर ज्यों भँवत भूत बासुकी गणेशयुत मानो मकरंद बुंद माल गंगा जलकी। उड़त पराग पट, नाल सी विशाल बाहु, कहा कहौं केशोदास शोभा पल पल की। आयुध सघन सर्वमंगला समेत शर्व पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की। जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल जानत न बाण बात मेरे बाहुबल की॥ २३॥

शब्दार्थ—भूत=शंकर के गण। बासुकी=शेषनागादि। पट=पार्वतीजी के वस्त्र। नाल=कमल की दण्डी। आयुध=महादेवजी, पार्वती, गणेशादि के अस्त्रादि अर्थात् त्रिशूल, पिनाक, खड्ग, अंकुश इत्यादि। सघन=अनेक। सर्वमंगला=पार्वती। शर्व=शिव। गति कीन्ही है कमल की=कमल का आकार बना दिया।

—हे बाणासुर! जब सब लोकपाल और समर पाल मेरे बाहुबल की बात जानते हैं, तब एक तूही न जानता तो क्या हुआ? मैं ने जिस समय कैलास को उठाया था उस समय शंकर के समस्त गण, बासुकी, और गणेशादि इस तरह मँडराते फिरते थे मानो भँवर हों, और गंगाजल मानो मकरंद था, पारवतीजी का पट (वस्त्र) फहरा उठा था वही मानो पराग था और मेरी विशाल बाहु नाल के समान थी, समय की पलपल की शोभा मुझ से नहीं कही जाती।

अनेक अस्त्रशस्त्र, पार्वती और महादेव सहित कैलाश को उठा कर कमलके आकार का दृश्य बना दियाथा (जैसे पुष्प का भार नाल को नहीं अखरता, वैसे हीं मुझे तनक भी भार नहीं जान पड़ा था)—तात्पर्य यह कि मैं ने इस धनुष सहित सारा कैलाश ही उठा लिया था।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट रूपक, और उस रूपक से पुष्ट संबन्धातिशयोक्ति।

मूल—मधुभारछंद—तजि कै मुरारि। रिस चित्त मारि॥
दशकण्ठ आनि। धनु छुयो पानि॥ २४॥

भावार्थ—वह झगड़ा छोड़कर और क्रोध को चित्तमें ही दबा कर, निकट आकर रावण ने धनुष में हाथ लगायां।
(ज्यों ही रावण को हाथ लगाते देखा त्योंही विमति बंदी बोला)

मूल—मधुभारछंद—तुम बलनिधान। धनु अति पुरान॥
पीसजदु अंग। नहिँ होहि भंग॥ २५॥

भावार्थ—हे रावण तुम बली हो और धनुष अति पुराना है। तोभी चाहे तुम अपने अंगों को (उठाने के उद्योग में) पीस ही क्यों न डालो, पर धनुष टूटैगा नहीं। (यह सुनकर रावण हट गया)।

अलंकार—विशेषोक्ति। ✗

मूल—सवैया—खण्डित मान भयो सब को नृपमण्डल हारि रह्यो जगती को। व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल विग्रह लंकपती को। कोटि उपाय किये कहि केशव केहू न

छांड़त भूमि रतीको । भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग-यती को ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—जगती=संसार । निराकुल=बहुत घबड़ाई हुई । लंकपती=रावण । विक्रम=उपाय । केहूं=किसी प्रकार । रती कौ=एक रती भर । विभूति=सम्पत्ति । योगयती=योगी ।

भावार्थ—सब का मान खण्डित होगया (बल का गर्व जाता रहा) । संसार के सब राजा हार गये । रावण की भुजाएं व्याकुल हो गईं, बुद्धि घबड़ा गई, और शारीरिक बल और उपाय थक गये । केशव कवि कहता है कि करोड़ उपाय करने पर भी किसी प्रकार वह धनुष एक रत्ती भर भी वैसेही भूमि नहीं छोड़ता जैसे बहुत संपत्ति के प्रभाव से (लालच से) योगी का मन सहज ही नहीं डिगता ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—पद्धटिका—

धनु अति पुरान लंकेश जानि । यह बात बाण सों कही आनि ।
हौं पलक माहिं लेहौं चढ़ाय । कछु तुमहूं तो देखो उठाय ॥२७॥

भावार्थ—रावण ने धनुष को अति पुराना समझ कर, बाणासुर के पास आकर यह बात कही कि मैं तो उस धनुष को एक पलमात्र में उठालूंगा, भला जरा तुम भी तो उठा देखो (अंदाज करलो कि तुमसे उठेगा कि नहीं) ।

(बाण)दोहा— मेरे गुरु को धनुषयह सीता मेरी माय ।
दुहू भांति असमंजसै, बाण चले सुखपाय ॥ २८ ॥

भावार्थ—बाणासुर ने कहा कि यह धनुष तो मेरे गुरु शिवजी का है, और सीता मेरी माता है । दोनो प्रकार से यह कार्य मेरे लिये अड़चन का है । यह कह कर बाणासुर तो सहर्ष चला गया ।

मूल—(रावण) तोटक छंद—अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौलगि नेम धरौं। जबलौं न सुनौं अपने जनको। अति आरत शब्द हते तन को ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—नेम धरौं=प्रतिज्ञा करता हूं । जन=सेवक । हते तन को=(तन में हते को) शरीर में चोट लगने की सी पुकार ।

भावार्थ—रावण ने कहा कि मैं तो विना सीता को लिये हुए यहां से न हटूंगा । मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं यहां से तब तक न हटूंगा जब तक कि मैं अपने किसी सेवक की आर्त पुकार न सुनूंगा कि "दौड़ो नाथ शत्रु ने मुझे मार डाला" ।

मूल—(ब्राह्मण)—मोदकछन्द—काहू कहूं सर आसर मार्‍यो । आरतशब्द अकाश पुकार्‍यो। रावण के वह कान पर्‍यो जब । छोड़ि स्वयम्बर जात भयो तब ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—सर=बाण । आसर=असुर । आरत शब्द=दुःख-पूर्ण शब्दसे ।

भावार्थ—(जनकपुर से आया हुआ ब्राह्मण कहताहै) हे विश्वामित्र जी,इतने ही में कहीं किसी ने किसी असुर को बाण मारा और उसने आकाश में दुःखपूर्णवचन से गुहार मचाई-

वह शब्द जब रावण ने सुना, तब स्वयम्बरभूमि छोड़ कर वह चला गया।

मूल—दोहा—जय जान्यो सब को भयो सबही विधि व्रत भंग
धनुष धर्यो लै भवन में राजा जनक अनंग ॥ ३१॥

शब्दार्थ—अनंग=विदेह।

चतुर्थ प्रकाश समाप्त।

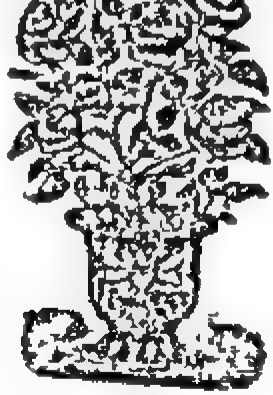

पांचवाँ प्रकाश

विषय-वर्णन।

दो०—यह प्रकाश पंचम कथा, राम गवन मिथिलाहि।
उद्धारण गौतम-घरणि स्तुति अरुणोदय आहि॥
मिथिलापति के बचन अरु धनुभंजन उर धार।
जैमाला दुंदुभि अमर वर्षन फूल अपार॥

मूल—(ब्राह्मण)-तारकछंद-जब आनि भई सब को दुचिताई।
कहि केशव काहू पै मेटि न जाई। सिय संग लिये ऋषि की तिय आई। इक राजकुमार महा सुख दाई॥ १॥

शब्दार्थ—दुचिताई=सन्देह (कि सीता का विवाह होगा कि नहीं)।

भावार्थ—जब सब को ऐसा सन्देह होने लगा कि अब सीता का विवाह होगा कि नहीं, और, यह संदेह किसी से मिटाया नहीं जा सकता था (कोई नहीं कह सकता था कि क्या होगा) तब अनायास एक त्रिकालदर्शी ऋषिपत्नी आई। वह एक चित्र लिये हुए थी जिसमें सीता के चित्र के साथ एक अति सुन्दर राजकुमार का चित्र था (उस चित्र में लिखा राजकुमार कैसा था सो आगे के छंद में देखिये)।

मूल—मोहनछंद—

सुंदर वपु अति स्यामलसोहै। देखत सुर नर को मन मोहै।
लिखि लाई सिय को वरु ऐसो। राजकुमारहि देखिय जैसो॥२॥

भावार्थ—वह ऋषिपत्नी सीता का वर चित्र में ऐसे ही रूप का लिख लाई थी जिस रूपका कि मैं इस (रामकी ओर इशारा करके) राजकुमार को देखता हूँ।

मूल—तोटकछंद—

ऋषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
बन राम शिला दरसी जबहीं। तिय सुन्दर रूप भई तबहीं॥३॥

शब्दार्थ—ऋषिराज=विश्वामित्र। शिला=शिला रूप में अहल्या। दरसी=देखी।

भावार्थ—विश्वामित्र ने ज्योंही ब्राह्मण के मुख से बात सुनी, त्योंही आनन्दित होकर मिथिला को चल पड़े। चलते में, एक वन में ज्योंही राम ने एक शिला देखी त्योंही (दृष्टि पड़ते ही) वह शिला सुन्दर रूपवाली स्त्री हो गई।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति।

मूल—दोहा—पूछी विश्वामित्र सों रामचन्द्र अकुलाइ।
पाहन तें तिय क्यों भई कहिये मोहिं समुझाइ॥४॥

भाव—(विश्वामित्र)—सोरठा—

गौतम की यह नारि, इन्द्र-दोष दुर्गति गई।
देखि तुम्हें नरकारि, परम पवित पावन भई॥ ५॥

शब्दार्थ—इन्द्र दोष दुर्गति गई=इन्द्र द्वारा दूषित किये जाने पर गौतम के शाप से दुर्गति को प्राप्त हुई (पत्थर हो गई थी)। नरकारि=नरकासुर के शत्रु अथवा नरक के शत्रु

(मुक्तिदाता) श्री रामजी ।

मूल—कुसुम-विचित्रा छंद—

तेहि अति रूरे रघुपति देखे । सब गुण पूरे तन मन लेखे ॥
यह वरु माँग्यो दयो न काहू । तुम मो मन तें कबहुँ न जाहू ॥६॥

भावार्थ—सुगमही है ।

मूल—कलहंस छंद—तहँ ताहि दै वरु को चले रघुनाथ जू
अति सूर सुन्दर यों लसैं ऋषिसाथ जू ॥ जनु सिंह के सुत
दोउ सिद्धिश्री रये । वन जीव देखत यों सबै मिथिला गये ॥७

शब्दार्थ—वरु=वरदान । सूर=शूरवीर । सिद्धि=विश्वामित्र
की तपस्या की सिद्धि । श्री=शोभा । रये=रँगे । सिद्धिश्रीरये=
तपस्या की सिद्धि से रङ्गे हुए । जनु सिंह के सुतदोउ सिद्धि
श्रीरये=मानो दोनों सिंह पुत्र हैं और विश्वामित्र की तपस्या
के बल से उनके वशीभूत हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—काहू को न भयो काहूँ, ऐसो सगुन न होत ।
पुर पैठत श्री राम के, भयो मित्र उद्योत ॥ ८

शब्दार्थ—सगुन=शुभसूचक घटना । मित्र=सूर्य । उद्योत=
उदित ।

भावार्थ—न कभी किसी को ऐसा सगुन हुआ, न होता है
हैं । ज्योंही श्री रामजीने मुनिमंडलीसहित जनकपुर की
सीमा में प्रवेश किया, त्योंही सूर्योदय हुआ ।

जो कुमोदिनी को पकड़ने के लिये फैले हैं, या कमलिनी को (स्पर्श से) अति सुख देने के लिये फैले हैं। तारे अस्त हो गये हैं, सो मानो इस डर से भाग गये हैं कि कहीं सूर्य की किरणों के फँदे में फँस न जायँ। और चकोर भी फंदा ही समझ कर ठगा सा हो रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और संदेह।

मूल—(राम) चंचरी छंद—

× व्योम में मुनि देखिये भाति लाल श्रीमुख साजहीं।
सिंधु में वड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई॥१२॥

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। मुनि=विश्वामित्र (संबोधन है)। लालश्रीमुख=लालरंग वाले सूर्य। पद्मराग=माणिक। दिवि=आकाश। सूरवाजि=सूर्य के रथ के घोड़े। खुरी=सुम। तिक्षता=तीक्ष्णता, चोखापन। हई=मारा हुई, चूर्ण की हुई।

भावार्थ—श्रीराम जी कहते हैं कि हे मुनि जी! देखिये लाल मुखश्री वाले सूर्य आकाश में कैसी शोभा दे रहे हैं, मानो समुद्र में वड़वाग्नि की ज्वालाओं का समूह एकत्र होकर वि-

[illegible]

सा हो गया हो।

अलंकार—संदेह और उत्प्रेक्षा।

मूल—(विश्वामित्र)—सोरठा छंद।

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—दिनकर=सूर्य। अरुनमुख=लाल मुखवाला। झुकि=खीजकर, क्रुद्ध होकर। झहराय=हिला कर। तारका=तरैयां।

भावार्थ—सूर्य रूपी लाल मुखवाला बंदर आकाश रूपी वृक्ष पर दौड़ कर चढ़ गया है और क्रुद्ध होकर उस वृक्ष को हिला कर उसे समस्त तारे रूपी फूलों से रहित कर डाला है।

अलंकार—रूपक।

मूल—(लक्ष्मण)—दोहा—

जहीं वारुणी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जहीं=ज्योंही। वारुणी=(१) पश्चिमदिशा (२) शराब। द्विजराज=(१) चंद्रमा (२) ब्राह्मण। तहीं=त्योंहीं। भगवंत=(१) सूर्य (२) भगवान्।

भावार्थ—(१) ज्योंही चंद्रमा पश्चिम की ओर जाने की तनिक भी इच्छा करता है, त्योंही सूर्य उसे बिना संपत्ति का और शोभा के सामान से हीन कर देता है। (२) ज्योंहीं कोई ब्राह्मण जरा भी मदिरा की इच्छा करता है, त्योंही (तुरंत) भगवान उसकी संपत्ति और कान्ति हरलेते हैं।

अलंकार—श्लेष।

(हों) जहां जलजहार शोभित न, (जिनके) पीन पयोधर प्रगट न।

भावार्थ–(रामजी कहते हैं कि) जनक के देश में ऐसी नगरी नहीं है जो पग पग पर हंसों, जल और कमल समूह से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हों (अर्थात् जनक के देश भर में सर्वत्र ही सब नगरों में बड़े बड़े जलाशय हैं जो जल से परिपूर्ण हैं और जिनमें हंस और कमल अधिकता से पाये जाते हैं) और जनक के देश में ऐसी नागरी (स्त्री) नहीं है जिनका प्रतिपग (प्रत्येक पैर) नूपुरों से हीन हो, जिनके उत्तंग कुचों पर मोती की मालायें शोभित न हों (अर्थात् जनक के देश भर में सब ऐसी स्त्री हैं जो प्रतिपग में बिछुव पहने हैं (कोई विधवा नहीं हैं) और जिनके बड़े बड़े पुष्ट कुचों पर मोतियों की मालायें शोभित हैं (अर्थात् सब स्त्रियां सधवा हृष्ट पुष्ट और सम्पन्न है)।

नोट–प्राचीन लिपि प्रथा में 'ते' को 'ति' लिखते थे। यहां भी केशव ने उसी प्रथा से काम लिया है।

अलंकार–श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति (दूसरी), अनुप्रास

मूल—सवैया–

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने
बीसबिसे व्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु ताने
शोक की आग लगी परिपूरण आइगये घनश्याम विहाने
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने।

मूल—तोमर छंद—

× चहुँ भाग बाग तड़ाग अब। देखिये बड़भाग।
फल फूल सों संयुक्त। अलि यों रमैं जनु मुक्त ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—चहुँ भाग=चारो ओर। बड़ भाग=बड़े भाग्यशाली (राम जी केलिये संबोधन है)। मुक्त=स्वच्छन्दचारी साधु।

भावार्थ—हे भाग्यशाली (रामचन्द्र जी) अब यह दृश्य देखिये कि जनक नगर के चारो ओर बाग और तालाब भी बहुत से हैं। सब बाग फल और फूलों से परिपूर्ण हैं और उनमें भौंरे इस प्रकार फिरते हैं मानो स्वच्छन्द-चारी साधु हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—(राम)—दोहा—

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलज हार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—ति=ते, वे। नगरी=बस्ती। नागरी=चतुर स्त्री। प्रतिपद=(१)हर एक पैर में (२)पद पद पर। हंसक=(१)बिछुवा (२)हंस+क=हंस और जल। जलज=(१)मोती (२)कमल। पयोधर=(१)कुच (२)जलाशय (कूप, वापी तड़ागादि)। पीन=(१)पुष्ट (२)बड़े बड़े।

(१)वे नगरी न, (जो) प्रतिपद हंस (और) क हीन (हों) जहां जलजहार शोभित न, जहां प्रगट पीन पयोधर न। (२)वे नागरी न, (जो) प्रतिपद हंसक हीन

(हों) जहां जलजहार शोभित न, (जिनके) पीन पयोधर प्रगट न।

भावार्थ–(रामजी कहते हैं कि) जनक के देश में ऐसी नगरी नहीं है जो पग पग पर हंसों, जल और कमल समूह से भरे हुए बड़े बड़े सरोवरों से हीन हों (अर्थात् जनक के देश भर में सर्वत्र ही सब नगरों में बड़े बड़े जलाशय हैं जो जल से परिपूर्ण हैं और जिनमें हंस और कमल अधिकता से पाये जाते हैं) और जनक के देश में ऐसी नागरी (स्त्री) नहीं है जिनका प्रतिपग (प्रत्येक पैर) नूपुरों से हीन हो, जिनके उत्तंग कुचों पर मोती की मालायें शोभित न हों (अर्थात् जनक के देश भर में सब ऐसी स्त्री हैं जो प्रतिपग में बिछुव पहने हैं (कोई विधवा नहीं हैं) और जिनके बड़े बड़े पुष्ट कुचे पर मोतियों की मालायें शोभित हैं (अर्थात् सब स्त्रियां सधवा हृष्ट पुष्ट और सम्पन्न है)।

नोट–प्राचीन लिपि प्रथा में 'ते' को 'ति' लिखते थे। यहां भ केशव ने उसी प्रथा से काम लिया है।

अलंकार–श्लेष, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति (दूसरी), अनुप्रास

मूल–सवैया–

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने
धीसविसे व्रत भंग भयो सु कहो अब केशव को धनु ताने
शोक की आग लगी परिपूरण आइगये घनश्याम विहाने
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने १

शब्दार्थ—अवनीपति=राजा । बीसबिसे=(बीसोबिस्वा) निश्चय । प्रत=प्रतिज्ञा । घनश्याम=(१)रामजी, (२)काले बादल । बिहाने=प्रातःकाल । तरु पुण्य पुराने=पूर्वकालीन पुण्य रूपी तरु ।

भावार्थ—जब राजा जनक ने यह जान लिया कि पृथ्वीतल के राजा जोर लगा कर हार गये हैं, अब तो मेरी प्रतिज्ञा निश्चयही भंग हुई, अब कौन धनुष को चढ़ा सकता है । (इस प्रकार जब राजा जनक नितान्त निराश हो गये थे) और पूर्णरूप से उनके हृदय में शोक की अग्नि लगी हुई थी कि अचानक प्रातःकाल के समय में घनवत् श्याम रंगवाले (रामजी) जनकपुर में आगये (जिस आगमन के प्रभाव से) जिससे जानकी जी और जनकादि के पुराने पुण्य के वृक्ष पुनः प्रफुल्लित हो उठे ।

अलंकार—समाधि, परिकरांकुर (घनश्याम में) और रूपक।

मूल—दोधकछंद—

आय गये ऋषि राजहिं लीने । मुख्य सतानंद विप्र प्रवीने ।
देखि दुऊ भये पायन लीने । आशिष शीरष बासु ले दीने ॥१८॥

शब्दार्थ—ऋषि=याज्ञवल्क्य ऋषि । राजहिं लीने=राजाजनक को साथ लिये हुए । प्रवीने=पुरोहित-कार्य में निपुण । दुऊ=दोनों । (राजा जनक और सतानंद) । आशिष=आशीर्वाद । शीरष बासु ले=सिर सूंघकर ।

नोट—प्राचीन काल में सिर सूंघ कर आशीर्वाद देने की रीति थी। ऐसा वर्णन कई स्थलों पर आया है।

भावार्थ—विश्वामित्र का आगमन सुनकर जनकराज्यनिवासी ऋषि याज्ञवल्क्य जी राजा जनक और मुख्य मुख्य ब्राह्मणों तथा कर्मकांडनिपुण सतानन्द को साथ लिये हुए विश्वामित्र की अगवानी को आये। विश्वामित्र को देखकर दोनों—अर्थात् राजा जनक और सतानन्द ऋषि—विश्वामित्र के चरणों में गिरे (दंडवतप्रणाम किया), तब विश्वामित्र ने दोनों को उठाकर और सिर सूंघ कर आशीर्वाद दिया। (अथवा) दोनोंने (अर्थात् राम और लक्ष्मण) ऋषि याज्ञवल्क्य और सतानन्द को दंडवत प्रणाम किया और उन्होंने सिर सूंघ कर आशीर्वाद दिया। (अथवा) सतानन्दादि मुख्य और प्रवीण ब्राह्मण राजर्षि (ऋषिराज=राजऋषि=राजर्षि) जनक को साथ लिये आयगये।

अलंकार—स्वभावोक्ति और परिवृत।

मूल—(विश्वामित्र)—सवैयाछंद—

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-वेलि बई है।
दान-कृपान विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
बेदत्रयी अरु राज सिरी परिपूरणता शुभ योग मई है॥ १९॥

शब्दार्थ—केशव=(संबोधन) हे रामचन्द्र जी। दान

विधानन सों=दान देकर। कृपान विधानन सों=युद्ध करके। सिगरी=सब। वसुधा=पृथ्वी। हाथ लई है=अपने वश में कर ली है। अंग छः=षडांग वेद—१-शिक्षा। २-कल्प। ३-व्याकरण। ४-निरुक्ति। ५-ज्योतिष। ६-छंद। (शिक्षा ज्योतिष व्याकरण कल्प निरुक्ति रु छंद)। अंग सातक=राज्य के सात अंग—१-राजा। २ मंत्री। ३-मित्र। ४-खजाना। ५-देश। ६-दुर्ग। ७-सेना। (राजा, मंत्री, मित्र, निधि, देश, दुर्ग, अरु सैन) अंग आठक=योग के आठ अंग*—१-यम। २-नियम। ३-आसन। ४-प्राणायाम। ५-प्रत्याहार। ६-धारणा। ७-ध्यान। ८-समाधि। भव=उत्पन्न। अंग छ सातक आठक सों भव=वेद के छः, राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न। सिद्धि=कार्य सिद्धि। वेदत्रयी=ऋग्, यजुर् और साम। राजसिरी=(राज्य श्री) राजापन, राजसी वैभव और भोग। शुभ योग मय=अच्छा जोड़ा मिल गया है (जैसा अन्य राजों में नहीं है)।

भावार्थ—हे (केशव) रामचन्द्र! देखो ये मिथिला नरेश हैं, जिन्हों ने संसार में अपनी कीर्ति की बेल लगाई है (संसार भर में जिनकी नेकनामी फैली है) दान और युद्ध-वीरता द्वारा जिन्हों ने सारी पृथ्वी को अपने वश में कर

लिया है। वेद के छः, राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न की हुई सिद्धि द्वारा जिन्होंने तीनों लोकों में अपना कार्य सिद्ध कर लिया है। (तीनों लोकों के भोग भोगते हैं)। इनमें वेदत्रयी और राज्यश्री की परिपूर्णता का अच्छा योग जुड़ा है (अच्छे विद्वान और नीति-निपुण राजा हैं) तात्पर्य यह कि राजा में जितने गुण होने चाहिये वे सब इन में हैं वरन् कुछ अधिक हैं अर्थात् ये राजा होते हुए भी पक्के योगी हैं।

अलंकार---

मूल—(जनक)—सोरठा—

जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये॥ २०॥

शब्दार्थ—मेलि=डाल कर। वर्ण=(१) रंग (२)जाति।

भावार्थ—राजा जनक अपनी ओर के लोगों से कहते हैं कि देखो ये ही वे विश्वामित्र जी हैं, जिन्हों ने अपने शरीर रूपी सोने को तपरूपी अग्नि में डाल कर और तपा कर उस शरीर का वर्ण उत्तम किया है (तप करके क्षत्री से ब्राह्मण हुए हैं)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

मूल—(लक्ष्मण)—मोहन छंद-जन राजवंत। जग योग वंत॥
तिनको उदोत। केहि भांति होत॥२१॥

भावार्थ—(यह सुन कर कि राजा जनक अच्छे योगी भी

हैं, लक्ष्मण जी को संदेह हुआ कि यह कैसे होसकता है, इस लिये पूछते हैं कि) जो राजा जग में योग भी करते हैं उनका अभ्युदय कैसे होता है ? क्योंकि दोनों कर्म परस्त विरुद्ध हैं।

मूल—(श्रीराम)—विजय छंद।

सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निशि बासर केशव लोकन को तम तेज भगै॥
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै॥२

शब्दार्थ—बिजना=पंखा। बात=हवा। डगै=हिलती है। तम तेज=घना अंधकार। भवभूषण=राख (दिया के गुल की भस्म)। मसी=कालिख (काजल)।

भावार्थ—हे लक्ष्मण, निमिवंश में अद्भुत् ज्योति जागती है जिसकी शोभा (श्री) जल और स्थल में परिपूर्ण हो रही है। (वह ज्योति कैसी है कि) समस्त क्षत्रियों में से किसी ने भी उसको छू तक नहीं पाया, और न वह ज्योति पंखे की हवा से डगमगाती है। रातो दिन एक सी रहती है—घटती बढ़ती नहीं, उसके प्रकाश से लोकों का घना अंधकार भाग जाता है। वह ज्योति राख से भूषित नहीं होती (उस चिराग में गुल नहीं पड़ता)—(देव से) सांसारिक अलंकारों से निमि-वंश की वह ज्ञान ज्योति नहीं ढकने पाती—उस ज्योति में मस्त हाथियों की कमरी नहीं लगती (हाथी घोड़े इत्यादि

खने का घमंड निमिवंशियों को ज़रा भी अहंकारी नहीं बना सकता)—निमिवंश की ज्ञान ज्योति ऐसी अद्भुत है कि राज-वैभव उसमें कभी विघ्न बाधा नहीं उपस्थित कर सका।

अलंकार—व्यतिरेक।

मूल—(जनक)-तारक छंद-यह कीरति और नरेशन सोहै। सुनि देव अदेवन को मन मोहै॥ हम को बपुरा सुनिये ऋषिराई। सब गाँउँ छ सातक की ठकुराई॥ २३॥

शब्दार्थ—कीरति=(कीर्ति) बड़ाई। अदेव=असुर। बपुरा=दीनहीन। ठकुराई=राज्य।

भावार्थ—सरल ही है

अलंकार—लोकोक्ति।

मूल—(विश्वामित्र)—विजय छंद—

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई॥
भूषन की तुमही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषण की भवि भूषण भू-तनतें तनया उपजाई॥ २४॥

शब्दार्थ—भुव=(भू) पृथ्वी। विदेह=जीवन मुक्त। कल=निर्मल। भूषण की भवि भूषण=भूषणों के लिये भी भव्य भूषण अर्थात् अलंकारों को भी अलंकृत करने वाली (अत्यन्त रूपवती)। भू-तनते=पृथ्वी के शरीर से। तनया=कन्या।

भावार्थ—हे जनक! अपने अपने स्थान पर तो सभी राजा सदैव ही भूमि का पालन करते हैं, पर वे केवल नामही के

भूमिपाल हैं, वास्तव में वे 'भूपति' नहीं हैं, क्योंकि उनसे भूमि का पालन यथार्थ (पतिवत्) नहीं हो सकता। केवल आपही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो शरीर को राजाओं का धारण किये हुए हैं, पर हैं ऐसे कि विदेहों (जीवनमुक्त लोगों में) में आप की निर्मल कीर्ति गाई जाती है। ऐसे विदेह होकर भी आप सच्चे 'भूपति' हैं, क्योंकि आपने पृथ्वी के गर्भ से अत्यन्त सुन्दर कन्या पैदा करली (पति वहीं है जो स्त्री से संतान पैदा करे)।

अलंकार—विधि और विरोधाभास।

मूल—(जनक)—दोहा—

इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर रचिबे को समरत्थ॥ २५॥

शब्दार्थ—अकत्थ=अकथनीय, कठिन। समरत्थ=शक्तिवान्।

भावार्थ—सरल है।

मूल—(जनक)—सवैया—

लोकन की रचना रचिबे को जहीं परिपूरण बुद्धि विचारी।
है गए केशवदास तहीं तब भूमि अकाश प्रकाशित भारी॥
शुद्ध सलाक समान लसी अतिरोपनयी दृग दीठि तिहारी।
होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रँगवारी॥ २६॥

शब्दार्थ—परिपूरण बुद्धि विचारी=सोच विचार कर निश्चय कर लिया। सलाक=नाप। सूर=सूर्य। सुधाधर=चन्द्रमा। सुधा=चूना।

भावार्थ—ज्योंहीं आपने नवीन लोकों की रचना करने का निश्चय कर लिया, त्योंही (केशव कहते हैं कि) भूमि और आकाश सब अति प्रकाशित हो गये (अर्थात् तुम्हें विदित हो गया कि कहां पर कौनसी रचना करनी चाहिये)। जिस समय तुम्हारी क्रोधयुक्त दृष्टि तीक्ष्ण बाण के समान (ब्रह्मा की रचना को मिटाने के लिये) सन्नद्ध हुई, उसी समय (भय के मारे) सूर्य तो चंद्रमा सम सपेद होगये और अग्नि भी चूना के रंग की हो गई अर्थात् भय से इन तेजधारियों का रंग फीका पड़ गया।

अलंकार—प्रथम हेतु।

मूल—दोहा—केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृग जानि।
संध्यासी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि॥२७॥

शब्दार्थ—उपासी=उपासना (सेवा, स्तुति, वंदना)।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि जब विश्वामित्र के क्रोधयुक्त नेत्रों को संध्या सम अरुण देखा, तब तीनों लोक के जन (नर, नाग, देवादि) उनके निकट आकर (संध्योपासन की तरह) उनकी उपासना करने लगे अर्थात् भय से उनकी सेवा वा स्तुति करने लगे।

अलंकार—धर्मलुप्तोपमा (संध्या सम—अरुण—रोषमयी दृष्टि)।

मूल—(जनक)-दोधकछंद-ये सुत कौन के शोभहिं साजे।
सुंदर श्यामल गौर विराजे॥ जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला विमला पति कोऊ॥२८॥

शब्दार्थ—सोदर=सगे भाई। कमलापति=विष्णु। विम-

लापति=ब्रह्मा ।

भावार्थ—(जनक पूछते हैं कि हे विश्वामित्र जी) ये शोभायुक्त सुन्दर श्याम और गौर कान्तिवाले दोनों व्यक्ति किसके पुत्र हैं ? मेरी समझ में तो ऐसा आता है कि ये दोनों सगे भाई हैं या विष्णु और ब्रह्मा के अवतार हैं । (अर्थात् इनमें विष्णु और ब्रह्मा का सा तेज, सौंदर्य और गुणादि लक्षित हैं) ।

अलंकार—सन्देह ।

मूल—(विश्वामित्र)—चौपाईछंद—

सुन्दर श्यामल राम सुजानो । गौर सु लक्ष्मण नाम बखानो
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ । सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥२९॥

दोहा—नृपमणि दशरथ नृपति के प्रगटे चारि कुमार ।
राम भरत लक्ष्मण ललित अरु शत्रुघ्न उदार ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—कुलमण्डन=वंश की शोभा बढ़ानेवाले ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—(चौपाईमें) हेतु ।

मूल—(विश्वामित्र)—घनाक्षरी छंद—दानिन के शील, पर दान के प्रहारी दिन, दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभायके । दीप ह्वै के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के । आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदार प्रिय साधु मन बच काय के । देह धर्मधारी ये विदेहराज जू से राज, राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥ ३१ ॥

दानिन के शील=दानियों का सा स्वभाव है । पर दान के प्रहारी दिन=प्रतिदिन शत्रुओं से दंडरूप दान लेने

वाले। दानवारि=विष्णु। निदान=अंततः। अवनीप=राजा। कंद=बादल। परदार=लक्ष्मी वा पृथ्वी।

भावार्थ—बड़े बड़े दानियों (शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्रादि) के से स्वभाव वाले हैं, सदैव शत्रुओं से दंडस्वरूप धन-दान लेने वाले हैं, और अंततः (विचार पूर्वक देखने से) विष्णु के से स्वभाव वाले हैं। समस्त द्वीपों के राजों के भी राजा हैं, राजा पृथु के समान चक्रवर्ती हैं, पर तो भी ब्राह्मण और गाय के दास हैं (सेवक हैं)। आनंद वारि बरसाने वाले बादल हैं, ये बालक देवताओं के पालक से (इन्द्र सम) हैं, लक्ष्मी के वल्लभ हैं, पर मन वचन कर्म से शुद्ध हैं, देहधारी हैं, पर विदेह समान हैं। हे राजन् ऐसे गुणवाले ये बालक अयोध्यानरेश राजा दशरथ के पुत्र हैं। (ध्वनि से विश्वामित्र ने यह बतला दिया कि ये विष्णु के अवतार हैं)।

अलंकार—विरोधाभास।

मूल—सोरठा—जब तें बैठे राज, राजा दशरथ भूमि में।
सुख सोयो सुरराज, तादिन ते सुरलोक में॥३२॥

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—असंगति।

मूल—स्वागता छंद—
राज राज दशरथ तनै जू। रामचन्द्र ध्रुवचन्द्र बने जू॥
त्यों विदेह तुम हू अरु सीता। ज्यों चकोर तनया शुभ गीता३३

शब्दार्थ—राज राज=राजाओं के राजा (चक्रवर्ती राजा)।

भुव-चन्द्र=भूमि के चंद्रमा । शुभगीता=सर्व प्रशंसिता, जिसकी प्रशंसा सब जन करते हों ।

भावार्थ--(विश्वामित्र जी कहते हैं) हे मिथिलेश ! जैसे राजा दशरथ चक्रवर्ती राजा हैं, वैसे ही उनके पुत्र रामचन्द्र भी भूमि के चंद्रमा हैं (सब को सुखद और यश से प्रकाशित हैं) अर्थात् ऐश्वर्यशाली पिता के सौन्दर्यशाली पुत्र हैं । इसी प्रकार हे विदेहराज ! आप भी ऐश्वर्यशाली राजा हो और तुम्हारी पुत्री शुभगीता सीता भी चकोरपुत्रीवत् सौन्दर्य और प्रेमपात्री है । अर्थात् तुम्हारा और इनका कुल, शील, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, यश इत्यादि सम है । (व्यंग यह कि चकोरी का प्रेम चंद्र पर ही उचित है, अतः सीता का विवाह इन्हीं से होना उचित है) ।

अलंकार—सम ।

मूल--(विश्वामित्र)-तारकछंद—

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो ।
अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यो ॥
(जनक) कपि है वह मन्दिर मांझ मँगाऊँ ।
गाहे ब्यावहि हौं जन यूथ बुलाऊँ ॥ ३४ ॥

छंद—

अब लोग कहा करिबे अपार । ऋषिराज कही यह बार बार ।
इन राजकुमारहि देहु जान । सब जानत हैं बल के निधान ॥३५॥

सूचना—छंद ३४ और ३५ के शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही हैं ।

(जनक)-दंडक छंद-बज्र ते कठोर है कैलास ते विशाल

कालदंड ते कराल सब काल काल गावई। केशव त्रिलोक के विलोकि हारे देव सब, छोंड़ि चन्द्रचूड़ एक और को चढ़ावई॥ पन्नग प्रचंडपति प्रभु की पनच पीन पर्वतारि पर्वतप्रभा न मान पावई। विनायक एक हू पै आवै ना पिनाक ताहि कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ--कालकाल=काल का भी काल। चन्द्रचूड़=महादेव। पन्नगपति-प्रभु=बड़े बड़े सर्पों के राजा अर्थात् वासुकी। पनच=प्रत्यंचा। पीन=पुष्ट, मोटी। पर्वतारि=इन्द्र। पर्वत-प्रभा=दैत्य। मान=गरुवाई का अन्दाज। विनायक एक= मुख्य विनायक (गणेशजी)।

भावार्थ—(जनकजी कहते हैं)-जो धनुष वज्र से भी अधिक कठोर है, कैलाश से भी अधिक बड़ा है, कालदण्ड से भी अधिक भयंकरहै, जिसे सब लोग काल का भी काल बतलाते हैं, त्रिलोक के माननीय लोग जिसे देख कर हिम्मत हारगये, एक महादेव को छोड़कर जिसे कोई दूसरा चढ़ा नहीं सकता, प्रचण्ड वासुकी की जिसमें पुष्ट प्रत्यंचा लगती है, इन्द्र और दैत्यादि भी जिसकी गरुवाई का अन्दाज नहीं पाते, जिसको गणेश भी यहाँ तक नहीं उठा ला सकते, ऐसे पिनाक को कमल सम कोमल हाथोंवाले राम कैसे उठा लावेंगे।

अलंकार—वाचकलुप्तोपमा (कोमल कमलपाणि)।

मूल—(विश्वामित्र)—दोहा—

राम हत्यो मारीच जेहि अरु ताड़का सुबाहु।
लक्ष्मण को यह धनुष दै तुम पिनाक को ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे राम ! जिस धनुष से तुमने मारीच, ताड़का और सुबाहु को मारा है, वह लक्ष्मण को दे कर तुम पिनाक तोड़ने के लिये जाओ।

विशेष—इस दोहे में व्यंग यह है कि ऊपर के छन्द में जनकजी राम को 'कोमलपाणि' कहते हैं। इस दोहे से मुनि जी उन्हें 'कठोरपाणि' जताते हैं।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—(जनक)-त्रिभंगी छंद—

सिगरे नर-नायक असुर-विनायक राक्षसपति हियहारि गये। काहू न उठायो थल न छोड़ायो टर्‌यो न टारो भीत भये। इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आये हौ पैज करे। व्रत भंग हमारो भयो तुम्हारो ऋषि तपतेज न जानि परै॥३८॥

शब्दार्थ—नरनायक=राजा। असुरविनायक=असुरों में मुख्य, बाणासुर। राक्षसपति=रावण। पैज=प्रतिज्ञा।

भावार्थ—(जनक कहते हैं) सब राजे, बाणासुर, रावण इत्यादि महा बली भट कोशिश करके हिम्मत हार गये तिस-परभी कोई उठा न सका, (उठाने की तो बात क्या !) कोई उसे स्थान से भी न हटा सका, जब वह नहीं टसका तब सब लोग भयभीत हुए (कि अब क्या होगा)। ऐसे कठिन धनुष को तुड़वाने के लिये आप प्रतिज्ञा करके इन सुकुमार राजकुमारों को अपने साथ लाये हैं। हमारा व्रत तो भंग होही चुका है, पर हे ऋषि, आपके तपतेज का प्रभाव नहीं जान सकते

(अर्थात् शायद आपके तपके प्रभावसे ये राजकुमार धनुष को उठालें पर मुझे आशंका होती है कि कहीं आपकी भी प्रतिज्ञा न भंग हो जाय)।

मूल—विश्वामित्र—तोमरछन्द—

सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिये इकवार।
पुनि वेगि ताहि चढ़ाउ। जस लोक लोक बढ़ाऊ॥ ३९॥

शब्दार्थ—इक वार=एक ही वार में (जनक के महल से रंगभूमितक एक ही बार में-बीच में सुस्ताने के लिये कहीं रख मत देना)।

भावार्थ—विश्वामित्रजी रामजी को (आशीर्वादात्मक) आज्ञा देते हैं:-"हे कुमार रामचन्द्रजी, मेरी आज्ञा सुनो। तुम जनक के महल में चले जाओ और धनुष को उठाकर एक ही बार में यहाँ तक ले आओ (बीच में दो एक बार भूमि में रखकर सुस्ताना मत) फिर उसको जल्दीसे चढ़ाकर अपना यश सब लोकों में बढ़ाओ।

मूल—दोहा-ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाय॥४०॥

भावार्थ—(राजा जनक की ऐसी दशा हो रही है कि) विश्वामित्र ऋषि की ओर देख कर और उनके तपबल को स्मरण करके राजा हर्षित होतें है, रामजी को देखकर और उनकी सुकुमारता का ख्याल करके उनका हृदय निराश होजाताहै, तथा धनुषको देखकर भयभीत होजाते हैं, इस प्रकार चिन्ता

उनके चित्त को चंचल कर रही है।

अलंकार—पर्याय—(क्रमही सों जहँ एक में आवैं बस्तु अनेक)।

मूल—स्वागता छंद—

रामचन्द्र कटिसों पटु बाँध्यो। लीलयैव हर को धनु साध्यो।
नेकु ताहि कर पल्लव सों छ्वै। फूल-मूल जिमि टूक कर्‍यो है॥

शब्दार्थ—लीलयैव=(लीला+इव) खेल सा करते हुए, क्रीड़ावत्, सहज ही में। साध्यो=संधान किया, उठा कर प्रत्यंचा चढ़ादी। फूलमूल=फूलकी डण्डी। कटिसों=कटि में।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—विभावना से पुष्ट पूर्णोपमा।

सूचना—कटि सों पटु बाँध्यो—यह बुंदेलखण्डी मुहावरा है।

मूल—सवैया—

उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथ जू हाथ के लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो॥
पैच्यो जहीं तबही कियो संयुत तिच्छ कटाक्ष नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभुको साँचो शरासन कीनो॥

शब्दार्थ—उत्तम गाथ=(सर्व प्रशंसित व्यक्ति अर्थात्) वह शिव का धनुष। हाथ के लीनो=हाथसे उठा लिया (यह भी बुंदेलखण्डी मुहावरा है)। निर्गुण ते गुणवंत कियो=पहले जिसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ी थी, उसकी प्रत्यंचा चढ़ादी अथवा उस गुणहीनधनुष को गुण विशिष्ट कर दिया। नराच=बाण।

भावार्थ—(आजतक जिस धनुष को हाथ में लेकर किसी

ने शरसंधान नहीं किया था) उस उत्तम गाथ धनुष को जब रामजी ने उठा लिया तब वह सनाथ होगया (धनुष को हर्ष हुआ) । जब प्रत्यंचा चढ़ा दी तब असंख्य सन्तों को (जिनमें विश्वामित्र, मुनि मण्डली, जनक सतानंदादि भी थे) सुख हुआ । जब उसे तान', तब अपने नवीन तीक्ष्ण कटाक्ष का बाण उस पर रखदिया (धनुष की प्रत्यंचा खींचते समय स्वाभाविक रीति से दृष्टि-सूत्र भी तीर की तरह उस पर पड़ता है ।) इस प्रकार राज कुमार श्रीरामजी ने प्रेमदृष्टि से देख कर उस शंभु-धनुको सच्चा शरासन बनादिया अर्थात् आज उसका 'शरासन' नाम सार्थक हुआ, क्योंकि रामजी ने कटाक्षरूपी बाण उसपर संधान किया है ।

अलंकार—विधि ।

मूल—विजया छंद—प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद चंड कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखण्ड को । चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के वचन परचण्ड को । सोधु दै ईशको बोधु जगदीशको क्रोध उपजाय भृगुनंद बरि-वण्ड को । बाधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग धनुभंगको शब्द गयो भेदि ब्रह्मण्ड को ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—झुकि=क्रुद्ध होकर । चण्ड कोदण्ड=कठोर धनुष । मण्डिरह्यौं=भरगया (इसका 'कर्ता' है 'टंकोर', 'चण्ड कोदण्ड' नहीं) । नवखण्ड=ईला, रमणक, हिरण्य, कुरु, हरि, वृष, किंपुरुष, आल और भरत । अचला=पृथ्वी । घालि=

तोड़कर। दिगपाल=इन्द्र, वरुण, कुबेरादि। ऋषिराज=विश्वामित्र। ईश=महादेव। जगदीश=विष्णु। भृगुनंद=परशुराम। बरिवण्ड=बली। स्वर्ग को बाधि=स्वर्ग लोक के निवासियों के कार्य में बाधा डालकर अर्थात् उनको भी चौंक कर, उनकी शान्ति भंग करके। साधि अपवर्ग=यह धनुष राजा दधीचि की हड्डियों का बना था, अतः उनको मुक्ति दिलाकर।

भावार्थ—उस प्रचण्ड धनुष की प्रथम ही टंकोर ने क्रुद्ध होकर सारे संसार का मद हटा दिया और नवो खण्डों में गूँज उठी। सुदृढ़ पृथ्वी को कंपायमान करके, समस्त दिग्पालों के बल तोड़कर, विश्वामित्र के शानदार वचनों का पालन करके (उनकी बात रखकर) महादेव को खबर देकर, विष्णु को यह बोध देकर कि आपकी इच्छा के अनुसार संसार का कार्य होरहाहै, बली परशुरामजी को क्रोध दिलाकर, स्वर्ग निवासियों के कार्य में बाधा डालकर—उनको आश्चर्यान्वित करके, राजा दधीचि को मुक्तिपद दिलाकर धनुर्भङ्ग का शब्द समस्त ब्रह्मांड को भेदन करके उसके आगे अन्तरिक्ष में चढ़ गया।

अलंकार—सहोक्ति।

—(जनक)—दोहा—

× सतानंद आनंद मति तुम जु हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब तोड्यो श्री रघुनाथ॥ ४४॥

शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही है।

मूल—(सतानंद)—तोमरछंद—

सुनि राजराज विदेह । जब हौं गयो वहि गेह ।
कछु मैं न जानी बात । कब तोरियो धनु तात ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ और भावार्थ सरल ही है ।

मूल-दोहा—सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल ।
पहिराई जनु सबन की हृदयावलि भूपाल ॥ ४६ ॥

अर्थ—धनुभंग होजाने पर सीता जी ने रघुनाथ जी को सुन्दर स्वच्छ कमलों की माला पहना दी । वह माला ऐसी जान पड़ती है मानो सब राजाओं की हृदयावली हो । (अत्यन्त उचित उत्प्रेक्षा है, क्योंकि हृदय का आकार भी कमलवत् होता है) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—चित्रपदाछंद—

सीय जहीं पहिराई । रामहिं माल सोहाई ।
दुंदुभि देव बजाये । फूल तहीं बरसाये ॥ ४७ ॥

अर्थ—ज्योंही सीता ने रामजी को माला पहनाई त्योंही देवताओं ने नगाड़े बजाये और फूल बरसाये ।

पांचवाँ प्रकाश समाप्त ।

छठवाँ प्रकाश

—:o:—

दोहा—छठे प्रकाश कथा रुचिर दशरथ आगम जान,
लगनोत्सव श्री रामको व्याह विधान बखान॥

मूल—(सतानन्द)—तोटकछंद—

विनती ऋषि, राज की चित्त धरो। चहुँ भैयन के अब व्याह करो।
अब बोलहु वेगि बरात सबै। दुहिता समदौ सुख पाय अबै॥१॥

शब्दार्थ-बोलहु=बुलवाओ। दुहिता=कन्या। समदौ=विवाहो।

भावार्थ—(विश्वामित्र के मुख से राजा दशरथ के वैभव का वर्णन तथा चार पुत्रों का होना सुनकर, एवं दो पुत्रों का बल और सौंदर्य देखकर जनक ने चारो के विवाह के लिये निवेदन किया है। इस पर सतानन्द जी सिफारिश करते हैं) हे ऋषि (विश्वामित्र) राजा की विनती को स्वीकार कीजिये, अब इन्हीं के परिवार में चारो भाइयों के विवाह कीजिये। अब सब बरातों को (चारो भाइयों की चार बरातें) शीघ्र बुलवाइये और सुखपूर्वक कन्याओं को अभी (तुरंत) विवाहिये।

तबही लगन लिखि अवधपुरी सब बात।
राजा दशरथ सुनत ही चाल्यो चलीं बरात॥२॥

—तोटनकछंद—

दशरथ बरात सजे। दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
१७ दूलह बाल बने। मोहे सुर औरनि कौन गने॥३॥

मूल—तारकछंद— ४

बनि चारि बरात चहूँदिसि आई। नृप चारि चमू अगवान पठाई।
जनु सागर को सरिता पगुधारी। तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी४

शब्दार्थ—चमू=टुकड़ी। अगवान=स्वागत करने के लिये।

अर्थ—सरल है।

विशेष—चारो दिशाओं से बरातें आईं जिससे महल के चारो फाटकों पर अलग अलग मुहूर्त से सब काम होजाय। जनकपुर समुद्र, बरातें नदियां और अगवानी लेने वाली चारो चमू बाहें हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल-दोहा-बारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो पहिराये सब भूप॥ ५॥

शब्दार्थ—बारोठे को चार=दरवाजा चार, द्वारपूजन (दरवाज़े पर लाकर वर का धन और वस्त्र से सत्कार करने का कृत्य)। अनुरूप=यथा योग्य।

अर्थ—यथायोग्य दरवाजा चार करके राजा जनक ने ब्राह्मणों और दूलहों तथा बरात में आये हुए सब राजाओं को पहिरावन दिये (पहनने के लिये अपने यहां से नवीन वस्त्र दिये)।

अलंकार—पदार्थावृत्त दीपक।

मूल—त्रिभंगीछंद— ५

दशरथ सँवाती सकल बराती बनि बनि मंडप माहँ गये।
आकाशविलासी प्रभा प्रकासी जलजगुच्छ जनु नखत भये।

अति सुन्दर नारी सब सुखकारी मंगलगारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहाँ तहाँ शुभ शोभ जगीं

शब्दार्थ—सँघाती=साथ में आये हुए राजा। मंडप=विवाह मंडप। आकाशविलासी=(मंडप का विशेषण है) बहुत ऊँचा और विस्तृत है। प्रभा प्रकासी=रोशनी से खूब जगमग हो रहा है। जलजगुच्छ=मोतियों के गुच्छे। नखत=नक्षत्र। शुभ शोभ जगी=अत्यन्त शोभा युक्त है।

भावार्थ—(दरवाजाचार करके सब बराती जनवासे को गये, यह वर्णन कवि ने छोड़दिया है) जनवासे से राजा दशरथ के साथ आये हुए सब बराती लोग सज धज कर भाँवरों के लिये मंडप को गये। वह मंडप बहुत ऊंचा और विस्तृत है, रोशनी से खूब जगमगा रहा है, मोतियों के गुच्छे (बंदनवार में) मानो नवीन नक्षत्र हैं। सुन्दर स्त्रियां मंगलगान करने लगीं। बहुत से जो बाजन बज रहे हैं, वे मानो मंद मंद ध्वनि से बादल गरज रहे हैं, जहाँ देखिये वहीं अत्यन्त शोभा से मंडप-स्थान परिपूर्ण है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल-दोहा-रामचंद्र सीता सहित शोभत हैं तेहि ठौर।
सुवरणमय मणिमय सहित शुभ सुंदर सिर मौर॥ ७॥

शब्दार्थ—सुवरण मय=सोने की बनी हुई मणिमय। खचित=चित्रित। मौर=दूल्हे दुलहिन के विवाह-मुकुट।

अर्थ—सरल है।

नोट—इस छंद में राम जी को 'रामचन्द्र' कहने में बड़ा ही मजा है। मंडप को आकाशवत माना, मोती के गुच्छों को नक्षत्र कहा, तो वहाँ 'चंद्र' का होना अत्यन्त उचित है। 'सीता' शब्द भी कम प्रभावोत्पादक नहीं। जहां चंद्र होगा वहां शीत होहीगी।

अलंकार—परिकरांकुर।

मूल—छप्पय—बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण।
केशव दास प्रसिद्ध सिद्ध सब अशुभ निवारण। भरद्वाज
जावालि अत्रि गौतम कश्प मुनि। विश्वामित्र पवित्र चित्रमति
वामदेव पुनि। सब भांति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ वशिष्ठ पूजत
कलस। शुभ सतानंद मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस॥८॥

शब्दार्थ—मागध=वंश-विरद वर्णन करनेवाले। सूत=स्तुति करने वाले। विद्याधर=विद्वान्। चारण=वंशावली बताने वाले भाट। सिद्ध=सिद्धि प्राप्त योगी जन। सब अशुभ निवारण=सब प्रकार की बाधाओं को निवारण करने वाले। चित्रमति=विचित्र बुद्धिवाले। निष्ठमति=उत्तम बुद्धिवाले। शाखोच्चार=विवाह समय में वर-वधू की वंशावली तथा गोत्रादिका परिचय।

अर्थ—सरल है।

मूल—अनुकूला छंद—
पावक पूज्यो समिध सुधारी। आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हो। भाँवरि पारि जगत जस लीन्हो॥९॥

शब्दार्थ—समिध=हवन की लकड़ी (पलाश वा आम की)। भाँवरि पारि=अग्निपरिक्रमा कराके (यही आ विवाह का पूरक है)।

अर्थ—सरल ही है।

मूल—स्वागताछंद—

राज पुत्रिकनि स्यों छवि छाये। राजराज सब डेरहि आये
हीर चीर गज बाजि लुटाये। सुंदरीन बहु मंगल गाये ॥१

शब्दार्थ—स्यों=सहित। राज राज सब=राजाओं सहित राज दशरथ। डेरा=जनवासा। हीर=हीरे।

अर्थ—सरल है।

विशेष—इस रीति को बुंदेलखंड में 'रहसबधावा' कहते हैं।

(शिष्टाचार-रीति वर्णन)

मूल—सोरठा—बासर चौथे जाम, सतानंद आगू दिये।
दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह बनि ॥१

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

कहूँ बाज बाजे कहूँ मेघ सूरे। कहूँ मत्त हंती लरैं लोह पूरे ॥

(१) आगू दिये=आगे किये हुए, मुखिया

बनाये हुए। धाम=डेरा, जनवासा। विदेह बनि=मारे आनन्द के देह की सुधि भूले हुए,(अथवा विदेह कुलके सब लोग सज धज कर आये)(१२)शोभना=सुंदर।दुंदुभी दीह=बड़े बड़े नगारे। भीम भंकार=भयंकर शब्द। कर्नाल=बड़ी बड़ी तोपें। कहूं भीम... साजैं=कहीं बड़ी बड़ी तोपें भयंकर शब्द करती हैं। किन्नरी= किन्नरों की स्त्रियां। किंन्नरी=सारंगी।(१३)मल्ल गाजैं=पहलवान परस्पर ललकारते और कुश्ती करते हैं।भाँड़्यो करैं=भँड़ौवा करते हैं, नकल वा स्वाँग करते हैं। लोलिनी=चंचल प्रकृति वाली। वेड़िनी=वेश्याएँ।(१४)एण=हरिन।एणी=हरिनी।कहूँ एण... हेतकारे=कहीं हरिन हरिनियों प्रति प्रेम करते हैं। बोक= बकरे। मेष=मेढ़ा। दंती=हाथी। लोह पूरे=जिनके पैरों में लोहलंगर पड़े हुए हैं, लोह की भारी जंजीरें जिनके पैरों में पड़ी हैं।

अर्थ—सरल है।

नोट—जिस समय राजा जनक समाज सहित राजा दशरथ के डेरों पर पहुँचे उस समय वहाँ ऐसे कौतुक हो रहे थे।

मूल—दोहा-आगे ह्वै दशरथ लियो भूपति आवत देखि।
राज राज मिलि बैठियो ब्रह्म ब्रह्म ऋषि लेखि॥ १५॥

भवार्थ—राजा जनक को आते देख राजा दशरथ ने कुछ दूर तक चल कर उनका स्वागत किया और पुनः क्षत्रियों की समाज क्षत्रियों से मिलकर और ब्रह्मऋषियों की समाज ब्रह्मऋषियों

[illegible]

अहंकार—[illegible]

[illegible]

पर गंगाजल पाजाय, तो केवल उसकी प्यासही न बुझैगी, वरन् त्रिताप का बल नष्ट हो जायगा, तैसेही आपकी कृपा से जब हमको श्री राम जी के दर्शन प्राप्त हो गये तो हमें केवल एकही सुख (रूप से नेत्रों की तृप्ति) नहीं हुआ वरन् सबही कामनायें पूर्ण हो चुकीं अर्थात् हम सब मोक्ष के भी अधिकारी हो चुके।

अलंकार—(द्वितीय) प्रहर्षण।

मूल—(जनक)—सवैया छंद—

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त-समुद्र वसै नित ब्रह्महु पै वरनी नाहिं जाई।
रूप न रंग न रेख विसेष अनादि अनन्त जु वेदन गाई।
केशव गाधि के नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई १८

शब्दार्थ—सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ=जिसको देखने के लिये अबभी सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं। रुद्र=महादेव। गाधि के नंद=विश्वामित्र जी।

भावार्थ—(जनक जी कहते हैं कि) विश्वामित्र जी ने हम सब को वही ज्योति साक्षात् दिखला दी, जिसको देखने के लिये अब भी सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, जिसे जग में योगियों ने कभी नहीं देखा, जो सदैव महादेव जी के मन रूपी समुद्र में वसती है,जिसका ठीक वर्णन ब्रह्मासे भी नहीं हो सकता, जिसका न रूप है,न रंग है और न विशेष कोई चिन्ह है, और जिसको वेदों ने अनादि और अनन्त कहके गाया है।

से मिलकर बैठी (यथा योग्य आसनों पर विराज गये)।

अलंकार—सम।

मूल—(सतानन्द)—शोभना छंद—मुनि भरद्वाज वशिष्ठ अरु जावालि विश्वामित्र। सबै ही तुम ब्रह्मरूपि संसार शुद्ध चरित्र॥ कीन्हों जु तुम या वंश पै कहि एक अंश न जाय। स्वाद कहिबे को समर्थ न गूँग ज्यों गुड़ खाय॥ १६॥

भावार्थ—हे भरद्वाज, वशिष्ठ, जावालि, तथा विश्वामित्र जी, मेरी विनय सुनिये, आप सब ब्रह्मरूपि हैं, आप लोगों के चरित्र ऐसे हैं जिन को कह सुन कर संसार शुद्ध होजाय। आप लोगों ने जो कृपा इस वंश (निमि वंश) पर की है उसके एक अंश का भी वर्णन नहीं हो सकता, मैं उसके कथन करने में वैसा ही असमर्थ हूँ जैसे गूंगा मनुष्य गुड़ खा कर उसका स्वाद कथन करने में होता है।

१—उदाहरण। कोई कोई दृष्टान्त मानते हैं।

—सुखदा छंद—ज्यों अति प्यासो माँगि नीर लहै गंग। प्यास न एक बुझाइ, बुझै त्रै ताप बलु॥ त्यों तुम तें भयो कछु एक सुख। पूजे मन के काम, जु देख्यो मुख॥ १७॥

र्थ—त्रै ताप=दैहिक, दैविक और भौतिक (तीन प्रकार के दुःख)। पूजे मन के काम=मन की सब कामनायें पूर्ण।

(हे महानुभावगण) जैसे प्यासा पानी माँगने

पर गंगाजल पाजाय, तो केवल उसकी प्यासही न बुझैगी, वरन् त्रिताप का बल नष्ट हो जायगा, तैसेही आपकी कृपा से जब हमको श्री राम जी के दर्शन प्राप्त हो गये तो हमें केवल एकही सुख (रूप से नेत्रों की तृप्ति) नहीं हुआ वरन् सबही कामनायें पूर्ण हो चुकीं अर्थात् हम सब मोक्ष के भी अधिकारी हो चुके।

अलंकार—(द्वितीय) प्रहर्षण।

मूल—(जनक)—सवैया छंद—

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त-समुद्र वसै नित ब्रह्महु पै वरनी नहिं जाई।
रूप न रंग न रेख विसेष अनादि अनन्त जु वेदन गाई।
केशव गाधि के नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई १८

शब्दार्थ—सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ=जिसको देखने के लिये अबभी सिद्ध लोग समाधि लगाते हैं। रुद्र=महादेव। गाधि के नंद=विश्वामित्र जी।

भावार्थ—(जनक जी कहते हैं कि) विश्वामित्र जी ने हम सब को वही ज्योति साक्षात् दिखला दी, जिसको देखने के लिये अब भी सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, जिसे जग में योगियों ने कभी नहीं देखा, जो सदैव महादेव जी के मन रूपी समुद्र में बसती है, जिसका ठीक वर्णन ब्रह्मासे भी नहीं हो सकता, जिसका न रूप है, न रंग है और न विशेष कोई चिन्ह है, और जिसको वेदों ने अनादि और अनन्त कहके गाया है।

सूचना—यह राम जी की प्रशंसा है। आगे के छंदों दशरथ जी की प्रशंसा है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—(पुनः जनक)—तारक छंद—

जिनके पुरिया भुव गंगहि लाये। नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये
जिनके सुत पाहनते तिय कीनी। हर को धनु भंग भ्रमे पुर तीनी।
जिन आपु अदेव अनेक सँहारे। सब काल पुरन्दर के रखवारे।
जिनकी महिमाहि अनंत न पायो। हम को बपुरा यश देवनगायो

शब्दार्थ—भुव गंगहि लाये=राजा भगीरथ। नगरी सिधाये=राजा हरिश्चन्द्र, प्रसिद्ध दान वीर। पाहन ते तिय कीनी=श्रीरामचन्द्र जी। अदेव=असुर। पुरन्दर=इन्द्र। अनंत=शेष। बपुरा=बेचारा, निकम्मा।

भावार्थ—(राजा जनक राजा दशरथ की प्रशंसा में कहते हैं कि) हे महाराज! आप ऐसे वैभवशाली कुल के हैं कि आप के पूर्वजों में से भगीरथ जी गंगा को पृथ्वी पर लाये, और हरिश्चन्द्र जी नगरी समेत सदेह स्वर्ग को चले गये (अर्थात असम्भव को सम्भव करनेवाले हुए) जिनके पुत्र ने पत्थर को सजीव स्त्री बना दिया और शिव का धनुष तोड़ डाला, जिससे तीनों लोकों के निवासियों को भारी भ्रम हो रहा है (कि ये कौन हैं) और आप ने स्वयं अनेक असुरों को मारा है, आप सदा इन्द्र की रक्षा करते रहे हैं जिनकी (आप की) बड़ाई शेष भी नहीं कर सकते। हमारी तो

कोई गिनती ही नहीं, आपका यश तो देवताओं ने गाया है। (अतः मेरी एक विनती सुनिये)।

मूल—तारकछंद-विनती करिये जन जो जिय लेखो।
दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखो॥
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी।
हम हैं चरणोदक के अभिलाषी॥ २१॥

शब्दार्थ—जन जो जिय लेखो=जो आप मुझे हृदय से अपना दास समझते हों। ढिठई=ढिठाई, धृष्टता।

भावार्थ—(राजा जनक भोजन के लिये निमंत्रण देते हैं) यदि आप मुझे हृदय से अपना दास समझते हों तो मैं निवेदन करता हूँ कि जिस प्रकार आपने कल कष्ट उठाया है (कृपा करके मेरे महल तक गये हैं) उसी प्रकार आज भी कष्ट उठाइये। (आप अवश्य कृपा करेंगे) ऐसा समझ कर ही मैंने यह ढिठाई की है; हमलोग (परिवार समेत) आपका चरणोदक लेना चाहते हैं।

अलंकार—पर्यायोक्ति—(उत्तम व्यंग है)।

मूल—तामरस छंद—
जब ऋषि राज बिनै करिलीनो। सुनि सबके करुणा रस भीनो॥
दशरथ राय यहै जिय मानी। यह वह एक भई रजधानी॥२२॥

शब्दार्थ—ऋषि=सतानंद जी। राज=राजा जनक।

भावार्थ—जब ऋषि सतानंद और राजा जनक इस प्रकार विनती कर चुके तब उनकी विनती सुनकर सब के चित्त

करुण रस से आर्द्र हो गये (विदेहराज राजा जनक की इतनी नम्रता देख सब के हृदय करुणा से परिपूर्ण हो गये) और राजा दशरथ ने तो यही समझ लिया कि यह और वह—मिथिला और अयोध्या—दोनों राज्य अब एक हो गये।

मूल—(दशरथ)—दोहा—

हमको तुमसे नृपति की दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीन्ही कन्यका त्रिभुवन की सिरताज॥ २३॥

भावार्थ—(राजा दशरथ कहते हैं कि) हे राजा जनक! हमको तो आप सरीखे राजा की दासी भी मिलना कठिन था, सो आपने हमारे ऊपर कृपा करके त्रिभुवन शिरोमणि अपनी कन्या ही दे दी—कन्या देकर आपने हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई, आपके बनाने से हम आज से बड़े हुए।

मूल—(भरद्वाज)—तामरस छंद—

सुख दुख आदि सबै तुम जीते। सुर नर को बपुरे बलरीते॥
कुल महँ होइ बड़ो लघु कोई। प्रतिपुरपान बड़ो सु बड़ोई॥२४॥

शब्दार्थ—बपुरे=बेचारे। बलरीते=बलहीन। प्रति पुरुषान बड़ो=कई पीढ़ियों से जिसके पूर्वज यश प्रतापादि में बड़े मान्य होते आये हों।

भावार्थ—हे राजन! तुमने सुख दुःख, काम क्रोधादि को जीत लिया है। आपके सामने विचारे शक्तिहीन सुर-नर क्या वस्तु हैं। किसी भी प्रतिष्ठित वंश में छोटा बड़ा (उम्र के विचार से) कोई भी हो, यदि उसके पूर्वज (पिता, दादा,

परदादा आदि) यश प्रतापादि में प्रसिद्ध और सर्वमान्य होते आये हैं तो वह भी बड़ा (मान्य) है।

अलंकार—उल्लास और स्वभावोक्ति।

मूल—(वशिष्ठ)—मत्त गयंद सवैया—

एक सुखी यहि लोक विलोकिय है वहि लोक निरै पगुधारी।
एक यहां दुख देखत केशव होत वहां सुरलोक विहारी॥
एक इहां ऊ उहां अति दीन सु देत दुहूँ दिसिके जन गारी।
एकहि भांति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेस तिहारी॥२५॥

शब्दार्थ—निरै पगुधारी=नरक में जानेवाला।

भावार्थ—सुगम ही है।

मूल—(जावालि)—मत्तगयंत्त सवैया—

ज्यों मणि में अति जोति हुती रवितें कछु और महा छविछाई।
चंद्रहि वंदत हैं सब केशव ईश ते वंदनता अति पाई।
भागीरथी हुतियै अति पावन वावन ते अति पावनताई।
त्यौ निमिवंश बड़ाई हुत्यो भई सीय सँजोग बड़ायै बड़ाई॥२६॥

शब्दार्थ—ईश=महादेव। वंदनता=वन्दनीयता, सम्मान। भागीरथी=गंगा। हुतियै=थी ही। पावनताई=पवित्रता। हुत्यौ=था।

भावार्थ—सुगम है।

अलंकार—अनुगुण।

मूल—(विश्वामित्र)—मालिनीछंद—गुण गण मणिमाला चित्त चातुर्यशाला। जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता॥ अखिल भुवन भर्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्ता। थिर चर अभिरामी

शब्दार्थ—चातुर्यशाला=चतुराई का धाम। सुखदगीता=अति प्रशंसित। पुत्रिका=लड़की। अखिल=सब। अभिरामी=बसनेवाला। जामातु=दामाद (पुत्रीपति)। नामी=प्रसिद्ध, यशवान्।

भावार्थ—(विश्वामित्र जी राजा जनक की प्रशंसा करते हैं) हे राजन्! आप में तो सर्व गुणों का समूह पाया जाता है, आप का चित्त चतुराई का धाम ही है। हे जनक, तुमने इसी से सर्व प्रशंसित सीता समान पुत्री को पाया है। और समस्त भुवनों के पालन-पोषण-कर्ता और ब्रह्मा, रुद्रादि के कर्ता तथा अचर चर जीवों में बसने वाले (राम जी) नामी पुरुष को दामाद बना लिया है (व्यंग यह कि सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं, राम जी विष्णु हैं, इस संबंध से तुम्हारे समान भाग्यवान् दूसरा नहीं है)।

विशेष—इस छंद से ज्ञात होता है कि केशव जी तुकान्त रहित कविता को बुरी नहीं समझते थे।

मूल—दोहा—पूजि राजऋषि ब्रह्मऋषि दुंदुभि दीह बजाय।
जनक कनकमंदिर गये गुरु समेत सुख पाय॥२८॥

शब्दार्थ—राजऋषि=राजा दशरथ तथा अन्य नृपतिगण। ब्रह्मऋषि=वशिष्ट, जाबालि, वामदेवादि। दीह=(दीर्घ) बड़े बड़े। कनकमंदिर=राजा जनक के महल का नाम 'कनक भवन' था। गुरु=सतानन्द।

भावार्थ—सुगम है।

(जेंवनार वर्णन)

मूल—चामरछंद—आसमुद्र के छितीस और जाति को गने।
राजभौन भोज को सबै जने गये बने॥
भांति भांति अन्न पान व्यंजनादि जेंवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं॥ २२॥

शब्दार्थ—आसमुद्रके=समुद्र पर्यन्त के (समस्त पृथ्वी के)। छितीस=(छिति+ईश) राजा। व्यंजन=षट्रस के भोज्य पदार्थ। पूरि भूरि भूरि भेवहीं=अनेक प्रकार के [illegible] से पूर्ण (मर्म भेदी व्यंग से परिपूर्ण)। भेव=भेद, [illegible]।

नोट—छप्पन प्रकार तथा षट्रस युक्त व्यंजनों का [illegible] वें प्रकाश में छंद ३० से ३३ तक की टीका में देखिये।

भावार्थ—समस्त पृथ्वी के राजा लोग (जो [illegible] थे) और अगणित अन्य जातियों (वैश्य शूद्रादि) के [illegible] सज सज कर भोजन करने के हेतु राजा जनक के [illegible] भाँति भाँति के षट्रस व्यंजन खाते हैं और [illegible] प्रकार से व्यंगमय गारियाँ देती हैं (गारी [illegible])।

मूल—हरिगीतछंद—
अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि [illegible]
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी [illegible]
को गने कितने पुरुष कीन्हे कहत [illegible]
सुनि कुँवर चित दै वरणि ताको [illegible]

शब्दार्थ—परदार प्रिय=परस्त्री के [illegible]

रख ली है। कुवाम=(१) बुरी स्त्री (२) (कु=पृथ्वी+वाम=स्त्री) पृथ्वी रूपी स्त्री। व्योहार=आचरण।

नोट—ऐसी किम्वदन्ती है कि यह "सप्त छंदमय गारी" केशव ने अपनी शिष्या प्रवीणराय पातुर से बनवाकर निज ग्रंथ में रखी है। इन सात छन्दों में केशव ने अपना उपनाम नहीं रखा है। ३० से ३६ तक एक ही छन्द है। ऐसा करना केशव की प्रकृति के विरुद्ध है। अतः किंवदन्ती में कुछ सत्यता अवश्य है।

अर्थ—हे दूल्ह राम जी, तुम्हें हम क्या कह के गाली दें, (तुम गाली देन योग्य तो नहीं हो, पर संसारी रीति के निर्वाह के लिये कुछ कहना ही चाहिये) सुनती हैं कि तुम्हारे पिता जी कुछ परस्त्री प्रेमी हैं और एक बुरी स्त्री (पुंश्चली औरत) कर ली है (पृथ्वी को स्त्री बनाया है, भूपति हैं)। उस कुवाम (बुरीस्त्री वा पृथ्वी-स्त्री) ने आज तक न जाने कितने पुरुष किये हैं। सारा संसार यही बात कहता है (हमीं अकेली नहीं)। सो हे कुँवर जी? उसका व्यवहार (आचरण) सुनिये हम वर्णन करती हैं।

अलंकार—श्लेष।

मूल—बहु रूप स्यों नवयौवना बहु रत्नमय वपु मानिये।
पुनि बसन रत्नाकर पन्यों अति चित्त चंचल जानिये।
सुभ सेस-फन-मनिमाल पालका पौढ़ि पढ़ति प्रबंध जू।
करि सीस पच्छिम पाँय पूरब गात सहज सुगन्ध जू॥३१॥

शब्दार्थ—रूप=सौंदर्य। स्यों=सहित। रत्नाकर=(१) समुद्र (२) बहुत रत्नयुक्त। पलिका=पलंग। पढ़ति प्रबन्ध=काव्यादि रसीले वाक्य पढ़ती है। गात=शरीर। सहजसुगन्ध=पृथ्वी में सहज ही सुगंध गुण है।

भावार्थ—(वह आपके बापकी रखनी कुबाम) बड़ी रूपवती और नवयौवना है, उसके शरीर पर बहुत से रत्न हैं—रत्नजटित आभूषणों से सुसज्जित है (पृथ्वी रत्नमय है ही) फिर उसकी साड़ी भी रत्नों से परिपूर्ण है (समुद्र से वेष्ठित पृथ्वी है ही) और उसका चित बड़ा चंचल है (पृथ्वी अति चंचल है ही)। शेषनाग के फनो की मणियों से जटित पलंग पर लेट कर सुन्दर रसीली कविता पढ़ती है (बड़े शानदार पलंग पर लेटती हैं और राग भी गाती है—पृथ्वी शेष के सिर पर है ही, और सायंस ऐसा कहता है कि पृथ्वी से एक प्रकार का राग सा निकलता है) लेटने में सिरहाना पश्चिम को और पैताना पूर्व को करती है, और उसके शरीर में सुगन्ध तो स्वाभाविक ही है (सुगन्ध लगाने की ज़रूरत नहीं)

नोट—यह वर्णन एक सुन्दर ऐयाश युवती का रूपक है जो एक पुंश्चली स्त्री के लिये ज़रूरी है।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट समासोक्ति।

मूल—वह हरी हठि हिरनाच्छ दैयत देखि सुन्दर देह सों।
बर बीर यज्ञ बराह बरही लई छीनि सनेह सों।

है गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिँगार जू।
पुनि कछुक दिन बस भई ताके लियो सरवसु सार जू॥३७॥

१० हिरनाच्छ दैयत=हिरण्याक्ष दैत्य। यज्ञवराह=वाराह भगवान्। बर ही=(बलही) बल पूर्वक, जबरदस्ती। बिह्वल अंग=शिथिलाङ्ग।

भावार्थ—फिर उस कुधाम (पृथ्वीरूपी स्त्री) को सुन्दर देख कर हिरण्याक्षदैत्यने हठ पूर्वक हरण किया। उस दैत्य से श्रेष्ठ वाराह भगवान् ने बल पूर्वक छीन लिया, क्योंकि वे उस पर स्नेह रखते थे। उनके साथ रहते रहते जब वह अत्यन्त शिथिल अंग होगई, तब राजा पृथु ने फिर से उसे सजाया। फिर कुछ दिन पृथुकी वशवर्तिनी होकर रही और उन्होंने उस का सर्वस्व सार निकाल लिया।

नोट—इन छन्दों में पृथ्वी का इतिहास पुंश्चली स्त्री के रूपक में कहा जा रहा है।

अलंकार—पर्याय।

मूल—वह गयो प्रभु पर लोक कीन्हो हिरणकश्यप नाथ जू।
तेहि भाँति भाँतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू।
वह असुर श्रीनरसिंह मार्‍यो लई प्रबल छँड़ाइ कै।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जिय सुख पाइ कै॥३८॥

शब्दार्थ—प्रभु=पति। नाथ=पति। भ्रमि=भूल कर भी। प्रबल=बलसे। लई छँड़ाइकै=छीन ली।

भावार्थ—जब वह पति परलोक गत होगया तब उस कुवाम ने हिरण्यकश्यप को अपना पति बनाया। उसने अनेक भाँति से उसे भोगा और भूलकर भी एक पलमात्र को साथ न छोंडा। उस असुर को श्रीनरसिंह जी ने मार कर जबरदस्ती वह कुवाम छीन ली। उसको लेकर श्रीहरि ने अति प्रसन्न होकर राजा हरिश्चन्द्र को दिया।

मूल—हरिचंद विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै।
तेहि बरो बलि बरिबंड बर ही विप्र तपसी मानि कै।
बलि बाँधि छल बल लई बामन दई इन्द्रहिँ आनि कै।
तेहि इन्द्र तजि पति कर्यो अर्जुन सहसभुज पहिचानि कै ३४

शब्दार्थ—बरो=वरण किया। बरिबंड=बलवान। बर ही=बल से, जबरदस्ती।

भावार्थ—राजा हरिश्चन्द्र ने उसे दुष्टा (पुंश्चली) समझ कर विश्वामित्र को दे दिया, परन्तु उस दुष्टा ने विश्वामित्र को केवल तपस्वी ब्राह्मण समझ कर अपनी जबरई बलवान बलि के साथ विवाह कर लिया। राजा बलि को छल से बाँध कर बामन जी ने उसे लाकर इन्द्र को दिया। तब उस दुष्टा ने इन्द्र को छोड़ कर हजार भुजा वाले अर्जुन को अपना पति बनाया।

मूल—तब तासु छबि मद छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू।
परशुराम सो सकुल जान्यो प्रबल बल की अग्नि जू।
तेहि बैर तब तिन सकल छत्रिन मारिमारि बनाइ कै।
इक बीस बेरा दई विप्रन रुधिरजल अन्हवाइ कै॥ ३५॥

शब्दार्थ—बनाइ कै=खूब अच्छीतरह से।

भावार्थ—तब उसके छबिमदसे मस्त होकर सहस्रार्जुन ने जमदग्नि ऋषि की हत्या करडाली। तब परशुराम ने अपने प्रचंड बल की अग्नि से उसे सपरिवार जला डाला और उसीकी शत्रुता के कारण उन्हों ने सब क्षत्रियों को अच्छी तरह से मार कर इक्कीस बार रुधिर से स्नान करा करा कर को दिया।

७—यह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।
अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ ढूँकि कै।
वह लाज मरियत ताहि तुमसों भयो नातो नाथ जू।
अब और सुख निरखै न ज्यों त्यों राखिये रघुनाथ जू॥३

शब्दार्थ—तजी विप्रन थूँकिकै=अपवित्र और तुच्छ समझकर छोड़ दिया। रहे ताकहँ ढूँकिकै=उसको लेने की अभिलाषा से छिपे छिपे उसकी ओर ताक रहे हैं।

भावार्थ—ऐसी कुनाम को जिसे ब्राह्मणों ने थूँककर छोड़ दिया है, आपके पिता जी ने अपनी पत्नी बनाया है, और सब लोग ऐसा भी कहते हैं कि रावणादि राक्षस उसकी ओर अभिलाषा भरी दृष्टि से ताक रहे हैं (उसे अपनाना चाहते हैं)। हम इस लज्जा से अत्यन्त लज्जित हैं कि अब तो उसका नाता आपसे होगया (आपकी माता हो चुकी) अतः हे नाथ! अब उसे इस प्रकार रखिये कि उसे अन्य पुरुष का मुँह न देखना पड़े।

नोट—बड़ा ही मार्मिक व्यंग है। ऐसे ही व्यंग को उत्तम काव्य कहते हैं)।

विशेष—जेंवनार के बाद बरात जनवासे गई। तदनन्तर दूसरे दिन का आचार आरंभ हुआ।

(पलकाचार वर्णन*)

मूल—सोरठा—प्रात भये सब भूप, बनि बनि मंडप में गये।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजैं॥३७॥

शब्दार्थ—रूप अनुरूप=अपने अपने दर्जे के मुताबिक। सोभिजैं=शोभित हुए, बैठे।

मूल—नराचछंद—रची बिरंचि बास सी निथम्ब राजिका भली। जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली।
बितान सेत स्याम पीत लाल नील के रँगे।
मनो दुहूँ दिसान के समान बिंब से जगे॥३८॥

शब्दार्थ—बिरंचि बास=ब्रह्माका निवास। निथम्बराजिका=खंभोंकीपंक्ति। थली थली=जगह जगह पर। बितान=तंबू। बिंब=प्रतिबिंब।

भावार्थ—(उस मंडप में) ब्रह्मलोक की सी खंभों की पंक्ति रची गई है। सब स्थानों पर खूब बिछौने बिछे हैं। (बिछौनों

---

* बुंदेलखण्ड में यह रीति प्रचलित है। वर अपने सखाओं सहित मण्डप में जाता है। वहां वरवधू को एक पलंग पर बैठा वधू की सखी सहेलियां कुछ हासविलास करती हैं। नगर की सब स्त्रियों को भी सुअवसर मिलता है कि वे वर को अच्छी तरह देखें।

मंडल ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक चंद्रमा ही शोभा दे रहे हैं। उनकी भौंहे देखने से प्रत्यक्ष ऐसी मालूम होती हैं, मानो अत्यन्त सुन्दर काम के मन के बने हुए धनुष हैं। उनका हास्य मानो चंद-चाँदनी से युक्त है (चंद्र किरण ही है), उनके मुख सहज ही सुगन्ध से सुवासित हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा-अमल कपोले आरसी, बाहुइ चंपकमार।
अवलोकनै बिलोकिये, मृगमदमय घनसार ॥४३॥

शब्दार्थ—अमल=निर्मल, स्वच्छ कांतियुक्त। बाहू=(बाहु) भुज। चंपकमार=चंपे की माला। अवलोकन=चितवन। मृगमद=कस्तूरी। घनसार=कपूर।

अन्वय—अमल कपोलै आरसी मय बिलोकिये, बाहुइ चंपकमार मय बिलोकिये, और अवलोकनै मृगमद तथा घनसार मय बिलोकिये।

भावार्थ—उन स्त्रियों के सुन्दर स्वच्छ कपोल आरसीमय देख पड़ते हैं (मानो आरसी ही हैं) उनके बाहु चंपकमालमय (चंपे की माला सम) ही देख पड़ते हैं। और उनकी दृष्टि (यहाँ पर आंखें) कस्तूरी और कपूरमय देख पड़ती हैं—अर्थात् काली पुतली और आँख की सफेदी ऐसी जान पड़ती हैं मानो कस्तूरी और कपूर ही हों।

अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का संदेह संकर है।

मूल-दोहा-गति को भारु महाउरै आँगि अंग को भारु।
केशव नख सिख शोभिजै सोभाई सिंगारु॥ ४४॥

शब्दार्थ—आंगि=अँगिया, चोली। अंग=शरीर।

भावार्थ—(वे स्त्रियाँ इतनी सुकुमारी हैं कि) चलते समय उन्हें महाउर ही भार सा जान पड़ता है, अँगिया ही शरीर का भार जान पड़ता है (महाउर और अँगिया जो सिंगार की वस्तुए हैं वे भी उनको भार समान जान पड़ती हैं)। केशव कहते हैं कि वे नखशिख से शोभित हैं। अतः शोभा ही उनके लिये शृंगार है (अन्य शृंगारों की जरूरत नहीं)।

मूल—सवैया—
बैठे जराय जरे पलिका पर राम सिया सब को मन मोहैं।
ज्योति समूह रहो मढ़िकै सुर भूलि रहे बपुरो नर को हैं॥
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज मंडल मांझ मनो कमला कमला-पति सोहैं॥४५॥

शब्दार्थ—जराय जरे पलिका=जड़ाऊ पलंग। ज्योति समूह रहो मढ़िकै=चारों ओर से एक ज्योति समूह ने उन्हें घेर लिया है। बपुरा=बेचारा। टोहैं=तलाश करते हैं। सोभन=सुन्दर।

भावार्थ—(राजमंदिर के आँगन और ऐसी स्त्रियों के मध्य में) श्री सीताराम जी जड़ाऊ पलंग पर बैठे हुए सब के

मनों को मुग्ध कर रहे हैं। चारों ओर से एक ज्योति मंडल (सुन्दर और कान्तिमयी स्त्रियों की मंडली) उन्हें घेरे हुए है। इस शोभा को देखकर देवता तक भ्रम में पड़ जाते हैं। बेचारे मनुष्य तो किसी गिनती ही में नहीं हैं। केशव कहते हैं कि तीनों लोकों में कविगण वृथा ही चाहे उपमा तलाश करते रहें, पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो सुन्दर तेज मंडल में लक्ष्मी-नारायण विराजे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(राम शिखनख वर्णन)

मूल-दोहा-गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ।
शिव सिर गंगाजल किधौं चंद्रचंद्रिका साथ ॥४

शब्दार्थ—गंगाजल=एक प्रकार का सपेद चमकीला रेशमी कपड़ा।

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी के सिर पर यह गंगाजल की पगड़ी है, या शिवजी के सिर पर सचमुच गंगाजल ही जिसमें चंद्रमा की किरणों की छटा भी संयुक्त है—(चंद्र किरण द्वारा चमकता हुआ गंगाजल ही है)।

अलंकार—संदेह।

नोट—पलकाचार समय पीली पागका होना जरूरी नहीं अतः सपेद पाग वर्णन की गई।

मूल—तोमरछंद—

कछु भ्रकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल छमिल सुवेश

विधि लिख्यो शोधि सुतंत्र। जनु जयाजय के मंत्र ॥४७॥

शब्दार्थ—कुटिल=टेढ़ी। सुवेश=सुन्दर। सुमिल=सचिक्कण। सुदेश=उचित और बराबर लंबाई चौड़ाई की। सुतंत्र=स्वच्छंदता पूर्वक। जयाजय के मंत्र=(जय+अजय के मंत्र) दूसरों को जीतने (वश में करने) तथा स्वयं अजित रहने के मंत्र।

भावार्थ—श्रीं राम जी की भौंहें किंचित टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल, सचिक्कन तथा उचित और बराबर लंबाई चौड़ाई की हैं। वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो ब्रह्माने स्वच्छन्दता पूर्वक संशोधित करके अपने हाथ से दूसरों को जीतने और स्वयं अजित रहने के मंत्र लिख दिये हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल-दोहा-जदपि भ्रकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरनकी निरखि शुद्ध गति होति॥४८॥

भावार्थ—यद्यपि रघुनाथ जी की भ्रकुटी की छवि देखने में टेढ़ी है, तो भी उसे देखकर सुर, असुर और मनुष्यों को सूधीगति (मोक्ष) प्राप्त होती है।

अलंकार—विरोधाभास।

मूल-दोहा-श्रवण मकर-कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र।
शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र॥४९॥

शब्दार्थ—श्रवण=कान। मकरकुंडल=मकराकृति कुंडल।

सुखमा=(सुषमा) शोभा। श्रवण=नक्षत्र। मकर=मकर नाम की राशि।

विशेष—उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते हैं। यह केशव की विचित्र सूझ है और उनके ज्योतिष-ज्ञान की सूचक है।

भावार्थ—रघुनाथ जी के कानों में मकराकृति (मछली की शक्ल के) कुंडल शोभा दे रहे हैं और मुख की शोभा भी वहीं एकत्र हो रही है। यह ऐसा मालूम होता है मानो मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा शोभा दे रहा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—पद्धटिकाछंद—

आंत बदन शोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नैन नासा तरंग।
जन युवति चित्त विभ्रम विलास। तेइ भ्रमर भ्रमत रसरूप आस॥

शब्दार्थ—शोभ=शोभा। सरसी=पोखरी, तलैया। सुरंग=निर्मल। चित्त विभ्रम विलास=चित्तों के भ्रमित होने का कौतुक।

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी के मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल पुष्करिणी है। उसमें नेत्र ही कमल हैं और नासिकाही तरंगें हैं और उस शोभा-पुष्करिणी पर युवतिजनों के जो चित्त कौतुक से भ्रमण करते हैं (कौतूहल से बार बार देखती और मोहित होती हैं) वे ही रूप रूपी मकरंद की आशा से मंडलाते हुए

भँवर हैं। तात्पर्य यह कि जैसे मकरंद की आशा से कमलों पर भँवर भ्रमते हैं, वैसे ही सुन्दर रूपरस-पान की आशा से युवतियों के चित्त श्री राम जी के नेत्रों पर घूमते हैं।

अलंकार--रूपक (सांग)।

मूल—निशिपालिकाछन्द—सोभिजति दंत रुचि शुभ्र उर आनिये। सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये। ओंठ-रुचि रेख सविसेष सुभ श्रीरये। सोधि जनु ईश सुभ लक्षण सबै दये ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—रुचि=कान्ति। शुभ्र=सफेद। अनुरूपक=प्रतिमा। रेख सविसेष=एक विशेष प्रकार की रेखा के समान (अर्थात् बहुत पतले--ओंठों का पतला होना ही शुभ लक्षण है)। श्रीरये=शोभा से रंजित। ईश=ब्रह्मा (रचयिता) सोधि=ढूँढ ढूँढकर।

भावार्थ—दाँतों की कान्ति उज्वल शोभा देती है। जब हृदय में लाकर उसपर विचार करता हूँ तो ज्ञात होता है मानो वह (दाँतों की शोभा) सत्य के रूप की प्रतिमा ही है। ओंठों की कान्ति एक विशेष रेखा सी दीखती है जो शुभ शोभा से रंजित है और ऐसा जान पड़ता है मानो विधाता ने ढूँढ ढूँढ कर समस्त शुभ लक्षण इन्हीं ओंठों को दे दिये हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—ग्रीवा श्रीरघुनाथ की, लसति कंबु वर वेष।
साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ५२

शब्दार्थ—ग्रीवा=गला। कंबु=शंख।

भावार्थ—श्रीरघुनाथ जी का गला, श्रेष्ठ शंख की आकृति का शोभा देता है (अर्थात् शंख की भाँति उसमें भी तीन बलियाँ हैं)। मन, वचन, कर्म तीनों से वह गला साधु है अतः मानो इसी बात के प्रमाण-स्वरूप उसमें ब्रह्मा ने तीन रेखायें करदी हैं

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सुन्दरीछंद—

सोभन दीरघ बाहु विराजत। देव सिहात अदेवत लाजत।
बैरिन को अहिराज बखानहु। है हित कारिन की भुजमानहु।
यों उरमें भृगुलात बखानहुँ। श्रीकर को सरसीरुह मानहु।
सोहत है उर में मणि यों जनु। जानकि को अनुरागि रह्यौ मनु॥

शब्दार्थ—सोभन=सुन्दर। सिहात=डाह करते हैं (कि ऐसी भुजाएँ हमारी न हुईं)। अदेवत=(अदेवता) असुरगण। लाजत=लज्जित होते हैं (कि इन्हीं भुजाओं से हम पराजित हुए हैं)। अहिराज=बड़ा विषधर सर्प। भुज=ध्वजा। भृगुलात=भृगु जी के चरण का चिन्ह। सरसीरुह=कमल। मणि=पदक (एक भूषण विशेष जिसमें एक बड़ा रत्न जड़ा रहताहै, और वह वक्षस्थल पर पहना जाता है)।

नोट—यहाँ प्रसंग से ऐसा जान पड़ता है कि वह मणि लाल रंगकी थी, क्योंकि अनुराग का रंग लाल माना गया है।

भावार्थ—(श्री राम जी की) सुन्दर लंबी लंबी भुजाएँ शोभा दे रही हैं, जिन्हें देख कर देवगण डाह करते हैं और असुरगण लज्जित होते हैं। शत्रुओं के लिये उन्हें बड़ा विष-धर सर्प ही कहना चाहिये और मित्रों के लिये ध्वजा ही मानना चाहिये—अर्थात् वैरियों की विनाशिका है और मित्रों का यश और वैभव सूचन करती हैं (५३)

अलंकार—उल्लेख।

भावार्थ—(श्री रामजी के) वक्षस्थलपर भृगुचरण-चिह्न ऐसा है मानो (हृदयनिवासिनी) श्रीलक्ष्मीजी के हाथ का कमल हो। हृदयपर पदक ऐसा शोभायमान हैं, मानो श्री जानकीजी का मन अनुराग युक्त होकर वहीं वक्षस्थल पर टिक रहा है (५४)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—सोहत जनरत राम उर देखत तिनको भाग।
आय गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग ॥५५॥

शब्दार्थ—जनरत=भक्त वत्सल। अन्तर=हृदय का भीतरी भाग।

भावार्थ—(वह पदकमणि) भक्त-वत्सल श्रीरामजी के उर पर शोभायमान है, उस शोभा को जो लोग देख रहे हैं उन का तो बड़ा सौभाग्य है। केशव कहते हैं कि मुझे तो ऐसा जान पड़ता है मानो हृदय के भीतर का अनुराग (भक्तव-त्सलता) ही ऊपर आगया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—पद्धटिकाछंद—

सुभमोतिन की दुलरी सुदेश । जनु वेदन के आपर सुवेश।
गज मोतिन की माला विशाल। मन मानहु संतन के रसाल।

शब्दार्थ—शुभ=दोषरहित । दुलरी=दो लड़ी की माला। सुदेश=सुन्दर । आपर=अक्षर । सुवेश=सुन्दर । रसाल= शांतरस से परिपूर्ण ।

भावार्थ—दोष रहित मोतियोंकी दोलड़ी की माला श्रीराम जी पहने हैं, वह ऐसी है मानो वेदों के सुन्दर अक्षर हैं बड़े बड़े गजमोतियों की भी माला पहने हैं वे गज-मुक्ता ऐसे जान पड़ते हैं मानो सन्तों के रसाल (शान्तरसपूर्ण) मन हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—विशेषकछंद—श्याम दुऊ पग लाल लसै दुति यों तल की। मानहु सेवति जोति गिरा जमुना जल की। पाट जटी अति सेत सु हीरन की अवली। देवनदी-कन मानहु सेवत भाँति भली ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—दुति=आभा । तल=तलवा । गिरा=सरस्वती। पाट=रेशम । देवनदी=गंगा । कन=(कण) जलबिन्दु ।

विशेष—इसछंद में नूतीपहने हुए चरणका वर्णन है ।

भावार्थ—दोनों पैरों के ऊपरी भाग तो श्याम रंग के हैं और तलवों की आभा लाल है । ऐसा मालूम होता है मानो सरस्वती की ज्योति जमुना जल की ज्योति का सेवन कर रही

है—जमुना में सरस्वती आमिली है (और जूतियों में) रेशम से गुँथी हुई हीरों की अति सफेद पंक्ति भी है। यह संयोग ऐसा जान पड़ता है मानो गंगाजल के कणिका भी उस संगम का सेवन भलीभाँति कर रहे हैं—गंगा भी वहाँ मौजूद हैं। तात्पर्य यह कि त्रिवेणी ही रामचरणों का सेवन कर रही है अतः श्रीरामजी के चरण अति पवित्र और पतित-पावन हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—को बरणै रघुनाथ छवि केशव बुद्धि उदार।
जाकी किरपा सोभिजति, सोभा सब संसार॥५८॥

भावार्थ—केशवदास कहते हैं कि किसकी ऐसी उदार (बड़ी) बुद्धि है कि श्रीरघुनाथजी की शोभा का वर्णन कर सके, जिन रघुनाथजी की कृपा से ही समस्त संसार की शोभा शोभायमान होती है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

(सीता स्वरूप वर्णन)

मूल—दण्डक छंद—को है दमयंती इन्दुमती रति रातिदिन, होहिं न छबीली छनछबि जो सिँगारिये। केशव लजात जलजात जातवेद ओप, जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये॥ मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो, चंद बहुरूप अनुरूपकै विचारिये। सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं, रूपही के रूपक तो वारि वारि डारिये॥ ५९॥

शब्दार्थ—दमयन्ती=राजा नल की स्त्री (रूपवती स्त्रियों में प्रसिद्ध)। इन्दुमती=राजा अज की स्त्री (श्रीरामचन्द्रजी की दादी)

ी रूपवतियों में प्रसिद्ध थीं। छनछवि=बिजली। जलजात=कमल। जातवेद=अग्नि। जातरूप=सोना। विरूप=बदसूरत, असुन्दर। मदन=काम। निरूप=अदेह। बहुरूप=(अनेक रूप धारण करनेवाला) बहुरूपिया, स्वाँग भरने वाला। अनुरूपक=प्रतिमा। देवता=देवियाँ, देवनारियां (शची, ब्रह्माणी, कुबेर-पत्नी इत्यादि)। वारिवारि डालना=निछावर करना।

विशेष—'देवता शब्द का प्रयोग केशव ने इसी ग्रन्थ में स्त्रीलिंगमें कई बार किया है। 'मदन' की उपमा निरूपण में केशव ने उपमा के नियम को भंग किया है। स्त्रियों की शोभा की उपमा पुरुषों की शोभा से देना उचित नहीं।

भावार्थ—दमयन्ती, इन्दुमती और रति (सीता के मुकाबिले) क्या हैं (तुच्छ हैं)। इन्हें जो रातोदिन बिजलीसे सिंगारते रहिये तब भी उतनी छबीली न होंगी (जितनी सीताजी हैं)। केशव कहते हैं कि सीता के रूप के सामने कमल और अग्नि की आभा लज्जित होती है, और सोना बिचारा तो बदसूरत देख पड़ता है। अनुपम कामदेव भी उपमानिरूपण करते समय अदेह होने के कारण कुछ न जँचा, और अनेक रूपधारी चन्द्रमा तो बहुरूपिया की प्रतिमा ही बनारियां क्या हैं? उनका ऐसा रूप है कि सौन्दर्य की जितनी उपमाएँ हैं वे सब उनके रूप पर निछावर कर डालना चाहिये।

अलंकार—काकूक्ति से पुष्ट सम्बन्धातिशयोक्ति अथवा प्रतीप।

(स्वांगी) विचार में आया। सीता के रूप के सामने कुरूप दे-

मूल—गीतिका छंद*—

तहँ सोभिजैं सखि सुन्दरी जनु दामिनी वपु मण्डिकै।
घनस्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघन छंडि कै।
यक अंग चर्चित चारु चंदन चन्द्रिका तजि चंद को।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनन्द—कंद को ॥६०॥

शब्दार्थ—वपुमण्डिकै=शरीर धरके। ओघन=समूह। चर्चित=लगाये हुए। चन्द्रिका=चन्द्र-किरण। आनंदकन्द-=आनंदरूप जलदेने वाले बादल।

भावार्थ—वहाँ सीताजी की सुन्दरी सखियाँभी शोभित हैं, मानो बिजली ही अनेक देह धारण करके जड़ मेघ-समूह को छोड़ कर चैतन्य शरीरधर (मेघवत् श्याम) श्रीरामजी का सेवन करती हैं। कोई सखी अपने शरीरमें सुन्दर (कपूर युक्त) चंदन लगाये है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो राहु के डर से चंद्रकिरण चंद्रमा को छोड़ कर आनंद बरसानेवाले रघुनाथ जी की सेवा कर रही हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—गीतिकाछंद—मुख एक हैं नत लोक-लोचन लोल लोचन कै हरैं। जनु जानकी सँग सोभिजैं शुभ लाज देहहि को धरे॥ तहँ एक फूलन के विभूषन एक मोतिन के किये जनु छीर सागर देवता तन छीर छीटनि को छिये॥ ६१॥

शब्दार्थ—लोक-लोचन=लोगों के नेत्र। लोल=चंचल। देवता=

* यह वर्णिक गीतिका है।

देवी (यहाँ भी 'देवता' शब्द स्त्रीलिंग में है)। छिये=छुए हुए।

नोट—बुँदेलखंड में 'छूना' को 'छीना' और 'खूब' को 'खीब' बोलते हैं।

भावार्थ—कोई सखी लज्जा की अधिकता से मुख नीचे को किये है, पर अपने नेत्रों को चंचल करके (इधर उधर कनखियों से देखकर) लोगों के नेत्रों को हरती है। (अपनी ओर खींचती है), वह ऐसी जान पड़ती है मानो शुभ लज्जा ही शरीर धारण किये जानकी के संग में शोभा दे रही है। वहाँ कोई कोई सखी फूलों के और कोई मोतियों के आभूषण पहने है, वे ऐसी मालूम होती हैं मानो क्षीर सागर निवासिनी देवियाँ (लक्ष्मियाँ) हैं जिनके शरीर में दूध के छींटें अब तक लगे हुए हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सोरठा—पहिरे बसन सुरंग, पावकयुत स्वाहा मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलय की॥६२॥

शब्दार्थ—पावक=अग्निदेव। स्वाहा=अग्नि की स्त्री।

भावार्थ—कोई सखी लाल वस्त्र पहने हुए है, वह ऐसी मालूम होती है मानो अग्नि समेत स्वाहा है। किसी सखी का अंग सहज ही इतना सुगंधित है, मानो वह मलयगिरि-निवासिनी कोई देवी है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चामरछंद—मत्त दंतिराज, राजि, वाजिराज, राजि के।
हंस हीर हार मुक्त चीर चारु साजि के॥

वेष वेष वाहिनी असेष वस्तु सोधियो।
दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दिया॥६३॥

शब्दार्थ—दन्तिराज राजि=बड़े हाथियों का समूह। बाजिराज राजि=बड़े घोड़ों का समूह। कै=को। हेम=सुवर्ण,। हीर=जवाहिरात। मुक्त=मोती। वाहिनी=सेवक-समूह। असेष=सब। सोधियो=तलाश करवाई। दायजो=यौतुक, दहेज। विदेह राज=जनकजी।

भावार्थ—बड़े बड़े मस्त हाथियों के समूहों और बड़े बड़े घोड़ो के समूहों को सुवर्ण के आभूषणों, हीरे मोतियों के हारों और सुन्दर वस्त्रों से सजा कर और तरह तरह के सेवक-समूहों से सब देने योग्य वस्तुओं को तलाश कराके राजा जनक ने भाँति भाँति के दहेज श्री राम जी को दिए।

अलंकार—उदात्त।

मूल—चामरछंद—वस्त्रभौन स्यों वितान आसने विछावने। अस्त्र सस्त्र अंगत्रान भाजनादि को गने॥ दासि दास बासि बास रोम पाट को कियो। दायजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो॥ ६४॥

शब्दार्थ—वस्त्रभौन=वस्त्र के बने हुए घर (तंबू, रावटी, कनात इत्यादि)। स्यों=सहित। वितान=शामियाने। अंगत्रान=कवच, जिरहबख्तर। भाजन=भोजन पान के पात्र (लोटा, थाली, गिलास, सुराही, कलस, परात, कोपरादि)। बासि बास=छोटे बड़े कपड़े। रोम पाट को कियो=ऊन

और रेशम के बुने हुए (कंबल, दुशाले, पीताम्बरादि)।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—दोहा-जनकराय पहिरायो, राजा दशरथ साथ।
छत्र चमर गज बाजि दै आसमुद्र छितिनाथ ॥६५॥

भावार्थ—राजा दशरथ के साथ ही साथ, राजा जनक ने, तमाम पृथ्वी भर से आये हुए राजों को छत्र चमर घोड़े हाथी देकर यथोचित् सत्कार से वस्त्राभूषण पहिनाये।

नोट—इस रीति को बरवौनी कहते हैं।

अलंकार—उदात्त।

मूल—निद्रापालिका छंद—दान दिय राय दशरथ सुख पाय कै। सोधि ऋषि ब्रह्म ऋषि राजन बुलाय कै॥ तोषि जाँचक सकल दादुर मयूर से। मेघ जिमि वर्षि गज बाजि पयपूर से॥ ६६॥

शब्दार्थ—सोधि=तलाश कराके। दादुर=मेंढक। मयूर=मोर। पयपूर=वारिधारा।

भावार्थ—(दहेज पाकर) राजा दशरथ ने भी प्रसन्न होकर ब्रह्मऋषियों और राजाओं को ढूँढ ढूँढ कर बुलाकर सबको यथोचित दान दिया। सब याचकों को हाथी घोड़ों की वर्षा-धारा बरसा कर वैसे ही संतुष्ट कर दिया जैसे मेघ वारिधारा बरसा कर मेंढकों और मोरों को संतुष्ट कर देता है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

छठवाँ प्रकाश समाप्त।

सातवाँ प्रकाश

—:o:—

दोहा—या प्रकाश सप्तम कथा परशुराम संबाद ।
रघुबर सों अरु रोष तेहि भंजन मान विषाद॥

मूल—दोहा—विश्वामित्र विदा भये, जनक फिरे पहुँचाय ।
मिले आगिली फौज को परशुराम अकुलाय॥१॥

मूल—चंचरीछन्द—मत्त दंति अमत्त ह्वैगये देखि देखि न गज्जहीं। ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिँ बज्जहीं। डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय भज्जहीं। काटि के तन त्रान एक हि मारि भेपन सज्जहीं॥ २॥

शब्दार्थ—मत्त=मस्त । दंती=हाथी । अमत्त=मदहीन । सुदेश=सुन्दर । सूरज=शूरों के पुत्र (पीढ़ियों के शूर)। तनत्रान=कवच ।

भावार्थ—(परशुराम के आते ही) मस्तहाथियों का मद उतर गया, अब वे एक दूसरे को देख कर गरजते नहीं, ठौर ठौर पर सुन्दर (गंभीरध्वनि से) नगाड़े नहीं बजते । पीढ़ियों के शूरबीर लोग अस्त्र-शस्त्र फेंक फेंक कर अपने अपने जीव लेले भागते हैं और कोई कोई तो कवचादि काट काट कर (फेंक कर) स्त्री का भेष धारण करलेते हैं ।

नोट—इस छंद में परशुराम के आतंक का अच्छा वर्णन है ।

अलंकार—अत्युक्ति (शूरता की)।

मूल—दोहा—वामदेव ऋषि सों कह्यौ, परशुराम रणधीर।
महा देव को धनुष यह, को तोर्‍यौ बल बीर॥३॥

शब्दार्थ—वामदेव=राजा दशरथ के एक मंत्री।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—(वामदेव)—दोहा—
महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।
तोर्‍यो 'रा' यह कहत ही समुझ्यौ रावणराज॥ ४॥

भावार्थ—वामदेवने उत्तर में कहना चाहा कि हे ऋषिराज परशुराम जी, महादेव के धनुष को 'रा' (म ने तोड़ा है), पर 'रा' अक्षरमात्र के उच्चारण से परशुरामजी ने 'रावण' समझा और अति क्रुद्ध होकर वामदेव की बात काट कर बोल उठे कि:—

मूल—(परशुराम)—दोहा—
अति कोमल नृप सुतन की ग्रीवा दलीं अपार।
अब कठोर दशकंठ के काटहु कंठ कुठार॥ ५॥

भावार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर अपने कुठार को सम्बोधित करते हैं) हे कुठार! तूने असंख्य अति सुकुमार राजकुमारों की गर्दनें काटी हैं (पर यह कोई बड़ा बहादुरी का काम नहीं था) अब रावणके कठोर कण्ठ काट, (तो जानें कि तू वीर है)। फिर विचार कर कहते हैं:—

मूल—(परशुराम)—मत्तगयंद सवैया—
बाधि के बाँध्यो जु बालि बली पलना पर लै सुत के हित ठाटे।
हैहयराज लियो गहि केशव आयो हो छुद्र जु छिद्रहि डाटे॥

बाहर काढ़ि दियो बलिदासिन जाय पर्‍यो जु पताल के बाटे।
तोहि कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठहि काटे॥६॥

शब्दार्थ—बाधि कै=रोक कर। सुत के हित ठाटे=पुत्र का हित किया, (जोपुत्र चाहता था वही किया)। हैहयराज= सहस्राजुन, कार्तवीर्य। आयो हो=आया था। छिद्रहि डाटे=कुअवसर देखकर। बाटे=रास्ते में।

भावार्थ—जिस रावण को बली बालिने रोक कर बाँध लियाथा और पलना में खिलौना की तरह उलटा लटका कर अपने पुत्र का हित साधन किया था (पुत्रको खुश किया था) और जिस रावण को हैहयराज ने पकड़ लिया था जब वह क्षुद्र कुअवसर देखकर उसके निकट गया था (स्त्रियों सहित जलक्रीड़ा करते समय रावण हैहयराज के पास गयाथा) और जिस रावण को बलि की दासियों ने बाहर निकाल दियाथा जब वह पाताल के मार्ग जापड़ा था (जब पाताल गया था) उस ऐसे बलहीन रावण के कंठों को काटने से हे कुठार! तूही कह! तुझे क्या बड़ाई मिलैगी? (अर्थात् कुछ भी नहीं)

नोट—बालि, हैहयराज और बलि की दासियों द्वारा रावण के अपमान की कथायें ग्रन्थान्तर से समझ लो।

मूल—सोरठा—जद्यपि है अतिदीन, मोहि तऊ खल मारने।
गुरु अपराधहि लीन, केशव क्योंकरि छोड़िये॥७॥

भावार्थ—यद्यपि रावण मेरे कुठार के लिये अति तुच्छ बलि है, तथापि मुझे उस खल को मारनाही पड़ेगा, क्योंकि जो

कर दिया (तोड़ डाला)। कौन जानता था कि ऐसा होगा।

अलंकार—असंभव।

मूल—(परशुराम, प्रकट) किरीट सवैया—

बोरों सबै रघुवंश कुठारकी धार में बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की बायु उड़ाय के लच्छन, लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै बन, कोप के भार में भूँजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥१२

शब्दार्थ—बारन=हाथी। लच्छन=लक्ष्मण। लच्छ=(लक्ष्य) निशाना। अरिहा=शत्रुघ्न। रघुनाथ=राम।

भावार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर कहते हैं) आज हाथी घोड़े और रथ समेत समस्त रघुवंशियों को कुठार की धारा में डुबादूँगा (मारडालूँगा), बाणों की वायु से लक्ष्मण को उड़ा कर समर्थ शत्रुघ्न को निशाने की तरह बेधदूँगा। राम को स्त्री सहित वन को भगाकर कोप के भाड़ में भरत को भूनूंगा, और यदि राम धनुष उठा कर लड़ेगा तो आज दसरथ को अनाथ करदूंगा। अर्थात् वंशनाश करदूंगा।

अलंकार—स्वभावोक्ति (प्रतिज्ञाबद्ध)।

मूल—सोरठा—रामदेखि रघुनाथ, रथ ते उतरे बेगि दै।
गहे भरथ को हाथ, आवत राम विलोकियो॥१३॥

शब्दार्थ—राम=परशुराम। रघुनाथ=श्रीरामचन्द्र। बेगिदै=शीघ्रता से।

भावार्थ—सुगम।

मूल—(परशुराम —दंडक छंद—अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास, चन्द्रहूते चारु मुख, सुषमा को धाम है। कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि, सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है॥ बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुन, मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है। वैर जिय मानि वामदेव को धनुष तोरो, जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है॥१४॥

शब्दार्थ—अमल=निर्मल, सकान्ति। वपु=शरीर। चारु=सुन्दर। पूरण पुरुष गुण=विष्णु के गुणों से युक्त। मोहियत=मोहित करता है। बीस बिसे=(बीसो विस्वा) निश्चय।

भावार्थ—(राम का रूप देखकर परशुराम जी निज मन में विचार करते हैं) कैसा निर्मल जलपूर्ण काले बादल के समान सुन्दर शरीर है, और मुख चंद्रमा से भी अधिक शोभा तथा कान्ति का समूह है। कोमल कमल दल से (करुणा पूर्ण) बड़े बड़े नेत्र हैं, दोनों सहोदर भ्राता (राम और भरत) एक रूप हैं, पर नाम न्यारे न्यारे हैं। इस बालक में तो विष्णु के गुण दिखलाई पड़ते हैं, यह इतना रूपवान् है कि मेरा भी मन (सहज विरक्त) इसको देख कर मोहित होता है, अतः निश्चय जान पड़ता है कि यह राम के भेष में कामदेव है और इसी कारण पुराना बैर स्मरण करके इसने महादेव का धनुष तोड़ा है।

अलंकार—भ्रम और अनुमान संकर।

मूल—(भरत)—गीतिकावृत्त—

कुशमुद्रिका समिधें श्रुवा कुश औ कमंडल को लिये।

कर दिया (तोड़ डाला)। कौन जानता था

अलंकार—असंभव।

मूल—(परशुराम, प्रकट) किरीट सवैया—

बोरों सबै रघुवंश कुठारकी धार में बारन बा
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करों
रामहिं बाम समेत पठै बन, कोप के भार में
जो धनुहाथ धरै रघुनाथ तो आजु

शब्दार्थ—बारन=हाथी। लच्छन=लक्ष्मण।
निशाना। अरिहा=शत्रुघ्न। रघुनाथ=राम।

भावार्थ—(परशुरामजी क्रुद्ध होकर कहते
घोड़े और रथ समेत समस्त रघुवंशियों को
में डुबादूँगा (मारडालूँगा), बाणों की वायु से
समर्थ शत्रुघ्न को निशाने की तरह बेधदूँगा
सहित बन को भगाकर कोप के भाड़ में
और यदि राम धनुष उठा कर लड़ेगा तो
अनाथ करदूंगा। अर्थात् वंशनाश करदूंगा।

अलंकार—स्वभावोक्ति (प्रतिज्ञाबद्ध)।

मूल—सोरठा—रामदेखि रघुनाथ, रथ ते
गहे भरथ को हाथ, आवत

शब्दार्थ—राम=परशुराम। रघुनाथ=श्रीरा
शीघ्रता से।

भावार्थ—सुगम।

लेय=(लेयमान) लेनेवाले । देयमान*=देनेवाले । जेय=(जेयमान)जीतनेवाले । रक्षमान=रक्षणकर्ता। अमेय=अतुल। भार्ग=शंकर ।

भावार्थ—(श्री राम जी भरत के प्रश्न का उत्तर देते हैं) हे भरत ! इन्हें प्रबल पराक्रमी सहस्रार्जुन को दंडदेनेवाला जानो, और अखंड कीर्ति के लेने वाले तथा अखंड भूमि का दान करनेवाले मानो, असुरों और देवताओं को जीतनेवाले, भयभीत जनों की रक्षा करनेवाले समझिये, और अतुल तेजधारी शंकरभक्त भृगुवंश में श्रेष्ठ श्री परशुराम जी को तुम देख रहे हो (भृगुवंशावतंस परशुराम जी हैं)।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—तोमरछंद—

सह भरत लक्ष्मण राम । चहुँ किये आनि प्रणाम ॥
भृगुनंद आसिष दीन । रण होहु अजय प्रवीन ॥ १७ ॥

शब्दार्थ भावार्थ—सुगम ही है ।

मूल—(परशुराम) सुनि रामचन्द्र कुमार ।
मन वचन कीर्ति उदार ॥
(रामचन्द्र) भृगुवंस के अवतंस । मनवृत्ति है केहि अंस ॥१८॥

भावार्थ—(परशुराम ने श्री रामचंद्र को संबोधन करते हुए कहा)=हे मन और वचन से उदार और बड़ी कीर्ति वाले कुमार रामचन्द्र हमारी बात सुनो—(कुछ और कहना

* ये शब्द केशव के गढ़े हुए हैं।

चाहते थे कि रामजी बात काट कर बोल उठे) हे नृपति के भूषण ! तुम्हारी मनोवृत्ति किस अंश पर है अर्थात् क्या कहना चाहते हो, कहो ।

अलंकार—गूढोत्तर ।

मूल—(परशुराम)—मदिरा छंद—तोरि सरासन संकर सुभ सीय स्वयंवर माह वरी । ताते बढ्यो अभिमान अ मन मेरियो नेक न संक करी ॥ (राम)-सो अपराध प हमसों अब क्यों सुधरै तुमही तो कहौ । (परशुराम)-बाहु दोउ कुठारहि केशव आपने धामको पंथ गहौ ॥ १९ ॥

भावार्थ—(पहले नरमी से मामला तय करना चाहते थे, पर जब राम जी ने बात काट कर और चिढ़ा दिया तब परशुराम कहने लगे कि) शंकर का धनुष तोड़ कर स्वयंवर में सीता को विवाहा है, इस से तुम्हारे मन में अभिमान अधिक बढ़ गया है । भला यह तो बताओ कि धनुष तोड़ते समय तुमने मेरा भी तनक भय न किया सो क्यों ? (तब राम ने कहा कि) हाँ यह अपराध तो बेशक मुझसे होगया, अब आप ही बतलाइये कि किस दंड से इस अपराध का प्रायश्चित होगा । (तब परशुराम बोले) अपने दोनों हाथ कुठार को देकर अपने घर का रास्ता लो-अर्थात् हम तुम्हारे दोनों हाथ काट लेंगे तब घर जाने देंगे ।

अलंकार—गूढोत्तर ।

भावार्थ—(राम)—कुंडलिया छंद—टूटै टूटनहार तब बायुहि

दीजत दोष। त्यों अब हर के धनुष कों हम पर कीजत रोष॥ हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई। होनहार है रहै मिटै मेटी न मिटाई॥ होनहार है रहै मोह मद सब को छूटै। होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका है टूटै॥ २०॥

अलंकार—लोकोक्ति से पुष्ट गूढ़ोत्तर।

नोट—इस काव्य में व्यंगार्थ यह है कि राम जी परशुराम को सूचित करते है कि आप का समय गया, अब रामावतार का समय आया है, अतः आपका वज्रवत् बल मेरे सामने तिनका के समान टूट जायगा, आप चाहे हमें कुमार ही समझते रहिये। (देखो छंद नं० १८)

मूल—(परशुराम—कुठार प्रति) मत्तगयंद सवैया—

केशव हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाय लियो रे।
तालगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियोरे॥
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियोरे।
तौ लौ नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को श्रोण सुधान पियोरे२१

शब्दार्थ—मेद=चर्बी। सिरानो=ठंढा हुआ। श्रोण=रक्त,

भावार्थ—(परशुराम की शक्ति क्षीण होती जाती थी। परशु प्रति कहते हैं) हे कुठार! तू ने हैहयराज सहस्रार्जुन का माँस काटा है सो मानो तू ने हलाहल विषके कौर खा लिये हैं। उस विष की शान्ति के लिये मैंने तुझ को अनेक राजाओं की चर्बी घी की तरह घोल कर पिलाई, पर तब भी तेरा हृदय ठंढा न हुआ। अतः हे मित्र कुठार! जो

समझ में नहीं आता कि केशव से ऐसी भूल क्यों हुई।

मूल—(परशुराम) नराच छंद—

भली कही भरत्थ तें उठा उ आगि अंगतें।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बान लै निषंग तें।
प्रभाउ आपनो दिखाउ छोंड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै॥ २३॥

भावार्थ—(परशुधर कहते हैं) हे भरत तू ने अच्छी बात कही, अच्छा ले अब अपने अंग से आग उठा (भरत ने कहा है कि अति रगड़ से चंदन से भी आग निकल ती है, उसी पर यह कथन है) और तूणीर से बाण लेकर शौक से धनुष पर चढ़ा। अपना प्रभाव दिखला, बाल— दे। हे राजपुत्र युद्ध करके मुझे प्रसन्न छुड़ा ले (तब जानूँ कि तू बड़ा वीर है)।

मूल—सोरठा-लियो चाप जब ६।
बरज्यो श्रीरघुनाथ, तुम

शब्दार्थ—तीनिहु भैयन=भरत,

भावार्थ—सरल।

मूल—(राम)
जीतिय एकै बात तें,

भावार्थ—रामजी अपने भाइयों को से शक्ति द्वारा कोई नहीं जीतता।

से ही वे जीते जासकते हैं।

नोट—परशुराम की गणना 'भगवानों' में है। भगवान वह व्यक्ति कहलाता है जिसमें ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, विराग और विज्ञान ये छः शक्तियां हों।

मूल—हरिगीति छन्द—

जब हयो हैहयराज इन विन क्षत्र छिति मंडल कन्यो।
गिरिवेध षटमुखजीति तारक नन्द को जब ज्यो हन्यौ॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यौ पर्वतनन्दिनी
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जग बंदिनी॥ २६॥

शब्दार्थ—विनक्षत्र=विना राजा का। छिति-मंडल=समस्त पृथ्वी। गिरि वेध षटमुख=क्रौंच नामा पहाड़ को तोड़ने वाले स्वामिकार्तिक। तारकनंद=तारक नामा असुर का पुत्र। राम=परशुराम। पर्वत-नंदिनी=पारवती। रेणुका=परशुराम की माता। जगवंदिनी=समस्त संसार से वंदनीय, सर्वपूज्य।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) जब इन्हों ने हैहयराज को मारा था तब समस्त पृथ्वी को विना राजा की करदिया था, और क्रौंच पहाड़ को तोड़ने वाले कार्तिकेय को जीत कर जब तारक के पुत्र को मारा था, तब पार्वती ने कहा था कि मैं ने परशुराम सा पुत्र न पैदा किया, धन्य है वह रेणुका जो ऐसा वीर पुत्र पैदा करके इस पृथ्वी पर वंदनीया हुई-तात्पर्य

यह कि इनकी वीरता वीरमाता पार्वती द्वारा प्रशंसित है। अतः ये बड़े वीर हैं।

मूल—(परशुराम)—तोमर छंद।

सुनि राम शील समुद्र। तव बंधु हैं अति क्षुद्र।
मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप॥२७॥

भावार्थ—हे शील सागर राम सुनो! तुम्हारे ये तीनों भाई बड़े क्षुद्र हैं, अतः अब मेरा क्रोध बड़वानल इनको नष्ट करना चाहता है (तुम कुशल चाहो तो इन्हें हटक दो)।

अलंकार—रूपक

मूल—(शत्रुघ्न)—दोधकछंद—

हौ भृगुनंद बली जगमाहीं। राम बिदा करिये घर जाहीं।
हौं तुमसों फिर युद्धहि मांड़ौं। क्षत्रिय वंशको बैरलै छाड़ौं॥२८॥

भावार्थ—हे भृगुनंदन! सचमुच आप संसार में बड़े बली हैं (तात्पर्य यह कि तुम्हारा [illegible] जीवों पर चलेगा, हम [illegible] समारी जा[illegible] राम को तो बिदा[illegible] घर को [illegible] मैं तुमसे युद्ध [illegible] क्षत्री [illegible] तुमसे चुका [illegible]

अलंकार

मूल—तो[illegible]

भरत से कहा कि तुम राम को लेकर अभी घर जाओ। यदि इनसे जीता बच जाऊँगा तो तुम से फिर युद्ध करूंगा (व्यंग यह कि बड़े मियां तो बड़े मियां, छोटे मियां सुभानल्लाह हैं, बड़ा भाई तो अपनी नम्रता दिखाता है, सबसे छोटा भाई हमें ललकारता है)।

मूल—दोहा—निज अपराधी क्यों हतौं. गुरु अपराधी छाँड़ि।
साते कठिन कुठार अब रामहिं सों रण माँड़ि ॥ ३० ॥

भावार्थ—(पुनः परशुराम मन में विचार कर परशुप्रति कहते हैं) गुरुदोषी को छोड़ कर निजदोषी को क्या मारूँ, अतः हे कठिन कुठार ! अब तू रामही से युद्धकर।

मूल—(परशुधर) मत्तगयन्द सवैया।
भूतल के सब भूपन को मद भोजन तो बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारकनंद को मेद पछ्यावरि पान सिरायो हियोई॥
खीर पड़ानन को मद केशव सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को श्रोनित पान को चाहै कुठार पियोई॥३१॥

शब्दार्थ—पछ्यावरि=छाँछ से बना हुआ एक पेय पदार्थ जो भोजनान्त में परोसा जाता है। इसके प्रभाव से भोजन शीघ्र पचता है। खीर=(क्षीर) दूध। श्रोनित=(१)रक्त (२)श्रौ=श्रवितपदार्थ+नित=नित्य।

भावार्थ—(परशुरामजी श्री रामचन्द्र-प्रति कहते हैं) मेरे इस कुठार ने संसार के सब राजाओं के मद का भोजन तो करही लिया है, और बड़े आनन्द के साथ तारकपुत्र की

चरबी की पछयावर पकिर अपना हृदय ठंढा करचुका है। षड़ानन के मद को भी दूध की तरह एक पलमात्र में पी डालाही है, हे राम ! अब यह मेरा कुठार तुम्हारे ही गले का खून पीना चाहता है।

विशेष—महात्मा जानकीप्रसादजी ने इस छंद के अंतिम चरण का सरस्वती-उत्कार्थ यों किया है—हे राम ! तिहारेही कंठ से श्रावित (मधुर स्वरयुक्त परम हितकर उपदेशामृत) यह कुठार नित्य पान करना चाहता है। तात्पर्य यह कि अब इस कुठार से अपनी दुष्टदलनी शक्ति खींचलो जिस से यह हत्या करना छोड़ दे और मैं ब्राह्मणकी तरह शान्त हो कर तप में निरत रहूँ। देखो फुट नोट छंद न० २१।

मूल—(लक्ष्मण)—तोटकछंद—जिनको सु अनुग्रह वृद्धि करै। तिन को किमि निग्रह चित्त परै॥ जिनके जग मच्छत सीस धरै। तिन को तन सच्छत कौन करै॥ ३२॥

[illegible] सु अनु[illegible] । । निग्रह=दंड। चित्त परै=चित्त [illegible] आ सकता है [illegible] धरै=पूजन करता है। सच्छत=(सक्षत [illegible]

[illegible] —जिन ब्रा[illegible] मंगल की वृद्धि करती [illegible] दंड देने क[illegible] आसकती है। [illegible] उनके शरीर [illegible] क्षण हो

अतः अवध्य हो, नहीं तो समझ लेते, जाओ तुम्हारा दोष क्षमा करते हैं। (उत्तम व्यंग है)।

अलंकार—विरोधाभास।

मूल—(राम)—मदिरा छंद।

कंठ कुठार परै अब हार कि, फूलै असोक कि सोक समूरो।
कै चितसारि चढ़ै कि चिता, तन चँदन चर्चि कि पावक पूरो।
लोक में लोक बड़ो अपलोक सु केशवदास जु होउ सु होऊ।
विप्रन के कुल को भृगुनंदन! सूर न सूरज के कुल कोऊ॥३३॥

शब्दार्थ—असोक=(अशोक-शोकका विरोधी भाव) सुख। सोक=(शोक) दुःख। समूरो=समूल (पूरा)। चितसारि= चित्रसारी (रंगमहल)। लोक=यश। अपलोक=कुयश, बदनामी, निन्दा।

भावार्थ—(रामजी परशुराम प्रति कहते हैं)—चाहे अब मेरे कंठ पर कुठार पड़े अथवा हार; चाहे सुख हो अ- अत्यन्त दुःख भोगना पड़े;चाहे यह शरीर चित्रसारी में आनन्द करे अथवा चिता में जलाया जाय; चाहे यह चन्दन से चर्चित हो अथवा आग में झोंक दिया जाय, चाहे संसार में बड़ा यश मिले अथवा बड़ा अपयश हो, जो कुछ होना हो सो हो, पर हे भृगुनंदन ब्राह्मणों से लड़ने के लिये सूर्यवंश में कोई भी शूर तैयार नहीं—अर्थात आप ब्राह्मण हैं, अतः अवध्य हैं, हम आप पर हाथ न घालेंगे, आप की जो इच्छा

हो सो करें। व्यंग से रघुनाथजी यह जनाते हैं कि अब आप केवल ब्राह्मण मात्र रह गये हैं, विष्णु का वह अंश निकल गया जिसके द्वारा आपने बड़े २ दुष्ट क्षत्रियों का विनाश किया है।

अलंकार—विकल्प से पुष्ट स्वभावोक्ति-(कुल-स्वभाव-वर्णन है)

मूल—(परशुराम)—विशेषक छंद—हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ। मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हौ। छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैन न दीन रचौ। कोटि करो उपचार न कैसहु मीचु बचौ॥ ३४॥

शब्दार्थ—छोभत हौ=डरते हो। किमि बैन न दीन रचौ=दीन वचन क्यों न बोले (बोलनाही चाहिये—उत्तम क्षत्री ब्राह्मणों से सदा दीन ही वचन बोलते हैं)। उपचार=उपाय।

भावार्थ—तुम सब लोग हथियार लिये हो, फिर मारनेवाले को देख कर मन में डरते क्यों हो? तुम क्षत्री वंशजात हो, अतः ब्राह्मण के सामने दीन वचन बोलना तुम्हें उचित ही है, (क्यों कि उत्तम कुलीन क्षत्रियों का कुलाचार ही ऐसा होता है), परंतु इस प्रकार के कोटि उपाय करने से भी मृत्यु से नहीं बचोगे (हम तुम्हें मारेंगे अवश्य)।

मूल—(लक्ष्मण)—विशेषक छंद—क्षत्रिय है गुरु लोगन को प्रति पाल करै। मूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जौ न धरै।

तौ हमको गुरुदोष नहीं अब एक रती। जो अपनी जननी तुम ही सुख पाय हती ॥ ३५ ॥

भावार्थ—(लक्ष्मणजी परशुधर से कहते हैं) –क्षत्री होकर हम लोग गुरु लोगों का प्रतिपालन करते हैं और भूलकर भी कभी उनके गुणावगुण की ओर ध्यान नहीं देते। परंतु जब आपने अपनी माता को आनंदित होकर मार डाला, तो अब हमको भी तनिक भी गुरु-हत्या का पाप न लगेगा यदि हम आपको मार डालें।

सूचना—परशुराम ने श्रीरामचन्द्रजी को गुरु द्रोही ठहराया है; अतः लक्ष्मणजी भी स्त्रीबध और मातृबध दिखलाकर परशुधर को गुरुदोषी ठहराते हैं।

मूल—(परशुराम)—मदिरा छन्द।

लक्ष्मण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यौ परई।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्वौ हरई।
क्रूर कुठार निहारि तजो फल ताको यहै जु हियो जरई।
आजु ते तोकहँ बंधु महा धिक क्षत्रिन पै जु दया करई ३६

शब्दार्थ—लक्ष्मण के पुरिषान=(यहाँ ठीक लक्ष्मण के पुरिषाओं से ही तात्पर्य नहीं है, वरन् वर्ण मात्र से तात्पर्य है) क्षत्रियों के पुरषों ने। पुरुषारथ=पौरुष। बेष बनाय . . हरई= सुन्दर स्त्रियों का भेस बना लिया था—(जब परशुरामजी ढूँढ २ कर क्षत्रियों का वध करते थे उस समय अनेक वीर क्षत्रियों ने स्त्रीरूपधारण करके दया-प्रार्थना द्वारा प्राण बचाये

थे, अथवा इसी प्रकाश में परशुराम के आगमन-समय का देखो छंद नं० २। ह्यौ= हिय, हृदय। पंधु=कुठार का संबोधन है।

भावार्थ—(कुठार-प्रति परशुरामजी कहते हैं) लक्ष्मण के पुरषों ने जो पुरुषार्थ किया है वह कहा नहीं जा सकता, अपना रूप बदल कर स्त्रियों का सा रूप कर लिया जिसे देख कर मन मोहित होता है। हे क्रूरकर्मा कुठार! उन स्त्रीभेस-धारी क्षत्रियों को देख कर भी जो तूने छोड़ दिया उसी का यह फल है कि इस समय जी जलता है। हे बन्धु! आज से तुझ को महा धिक्कार है जो तू क्षत्रियों पर दया करे—अर्थात् जैसे उन को स्त्री भेस में देख कर छोड़ दिया वैसे ही इनको बाल भेस में देख कर इन्हें भी छोड़ दे तो तुझे धिक्कार है। यह बात आगे के छन्द में स्पष्ट कही है।

नोट—इस छंद का सरस्वती-उक्तार्थ यों समझिये:—लक्ष्मण के बड़ों ने अर्थात् श्री रामचन्द्र जी ने जो पुरुषार्थ किया है वह कहा नहीं जा सकता। वह कृत्य यह है कि उन्हों ने स्त्री का ऐसा सुन्दर रूप बना दिया जिसे देख मन मोहित होता है (गौतमपत्नी अहल्या का चरित्र)। हे क्रूरकर्मा कुठार! ऐसे अद्भुतकर्मा को देख (और उनकी शरण ले, तो तेरी भी जड़ता दूर होजायगी) और यदि उनकी शरण को त्यागेगा तो इसका फल यह होगा कि पापों के संताप

से तेरा हृदय सदा जला करेगा। और हे बंधु आज से मैं भी तुझे धिक्कारूंगा। (यदि तू यह सोचै कि मुझ पापी को ये अपनी शरण में लेंगे या नहीं, तो मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं कि अवश्य लेंगे, क्योंकि) क्षत्रियों की यह पैज (प्रतिज्ञा) होती है कि शरण आये हुए पर सच्चा क्षत्री दया करता ही है।

मूल—(परशुराम)—गीतिका छंद

तब एक विंशति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड शोनित सों भरे पितु-तर्पणादि क्रिया सची॥
उबरे जु छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं॥ ३७॥

शब्दार्थ—एकविंशति=इक्कीस। शोनित=रक्त। सची=की। सोधिसोधि=खोज खोजकर। पारिहौं=(पालिहौं) पालन करूंगा।

भावार्थ—तब तो मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को निछत्र (राजा हीन) कर दिया, राजाओं को मार मार कर उनके रक्त से बहुत से कुंड भरे और उसी से पितरों के हेत तर्पणादि क्रिया की (उस समय कभी कभी कुछ दया भी करता था, परन्तु अब) इस भूतल में बचे हुए क्षुद्र स्वभाव क्षत्रियों को खोज खोज कर मारूंगा और इस धर्म को इतनी निर्दयता से पालूंगा कि बालक, बूढ़ा अथवा युवा कोई हो, एक को भी न छोड़ूँगा। (यह परशुराम जी की बँदर घुड़की है)।

मूल—(राम)—दोहा—

भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ यश-भार ॥ ३८ ॥

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हे भृगुवंश रूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य (परशुराम जी) सुनिये ! सारे संसार को जीत कर जो विजय यश आपने पाया है, उस यश का भार इन बालकों पर क्यों लादते हैं, वह भार इनसे कैसे चलेगा (क्यों ऐसा करते हो कि ये बालक तुमसे लड़ बैठें और तुम्हें पराजित करके स्वयं विश्वविजयी-विजेता का यश पावें)।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा—(कारजनिबंधना) और प्रथम चरण में परम्परित रूपक।

मूल—(सोरठा) परशुराम—

राम सुबंधु सँभारि, छोड़त हौं सर प्राणहर।
देहु हथ्यारन डारि, हाथ समेतिन बेगिदै ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—सुबंधु=(स्वबंधु) अपने भाइयों को। हाथ समेतिन=हाथों सहित। बेगिदै=शीघ्रता से।

भावार्थ—हे राम अपने भाइयों को सँभालो (बचाना चाहते हो तो इनको हमारा अपमान न करें) शीघ्र ही हाथों समेत हथियार फेंकदो, नहीं तो मैं प्राणहर बाण छोड़ता हूं—अर्थात् हथियार रखदो तो केवल हाथ ही काटकर छोड़ दूंगा,

यदि ऐसा न करोगे तो जान से मारूंगा।

अलंकार—सहोक्ति।

नोट—इसका सरस्वती उक्तार्थ यों होगा:-(परशुराम जी अपने इष्टदेव जी को सहायतार्थ स्मरण करते हैं) हे हर! अपने सुबंधु राम को सँभालो—ये आप ही के मना करने से मानेगें—इनके बाण से अब मैं प्राण छोड़ता हूं अर्थात् अब ये मुझे मारना ही चाहते हैं। हे इष्टदेव शंकर। ऐसा करो कि शीघ्र ही इनके हथियार-सहित हाथों से हथियार गिरजायें, जब तक ये सशस्त्र रहेंगे तब तक मुझे भय बनाही रहेगा, अतः इनका कोप शांत कराके हथियार उतरवादो। (इस प्रार्थना के अनुसार महादेव का आना केशव ने छंद नम्बर ४३ में आगे वर्णन भी किया है)।

मूल—(राम)—पद्धटिकाछंद—सुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि। तपविशिष अनेकन की जु अग्नि। सब विशिष छाँड़ि सहिहौं अखंड। हर धनुष कन्यो जिन खंड खंड॥ ४०॥

शब्दार्थ—जामदग्नि=जमदग्नि के पुत्र (परशुराम)। तप विशिष=तपस्या के बाण (शाप)। सब विशिष=एक नहीं जितने बाण आपके पास हों।

भावार्थ—हे सर्वलोक गुरु परशुराम जी सुनिये, एक नहीं जितने बाण आपके पास होवें सब, और समस्त शापों के बाणों की अग्नि, सब एक ही बार हमारे ऊपर छोड़ो। मैं,

शंभु-धनु-भंजनकारी, आपके सब बाणों की अखंडधारा सहन करूंगा—अर्थात् जब मैंने शिवधनु भंग किया है तब मैं दोषी हूँ ही, आप मारिये अथवा शाप दीजिये सब सहना ही होगा, पर मैं आप पर हाथ न उठाऊंगा, क्योंकि आप सर्व पूज्य ब्राह्मण हैं। (सरस्वती उक्तार्थ) जिसने तुम्हारे गुरु हर का धनुष खंडन कर दिया, उसपर तुम्हारे समस्त बाणों और शापों का प्रभाव पड़ही नहीं सकता। इस कथन से राम ने यह जनाया कि तुम्हारे गुरु भी हमारा कुछ नहीं कर सकते तब तुम्हारे बाणों से हमें क्या भय है, तुम बाण चलाओ ये सब निष्फल होंगे।

मूल—(परशुराम)—मत्तगयंद सवैया।

बाण हमारेन के तनत्राण विचारि विचारि विरंचि करे हैं।
गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जगदीनस्वभाव भरे हैं।
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद ठिहारे गुरू जिनते ऋषि वेष किये उबरे हैं ॥४१॥

शब्दार्थ—तनत्राण=कवच, अभेद्य व्यक्ति (जिन पर बाण कुछ प्रभाव नहीं कर सकते)। विचारि=विशेष चार व्यक्ति। गोकुल=गउएँ। नपुंसक=अमरद। अदेव=असुर (राक्षस वा दैत्य)। गाधि के नंद=विश्वामित्र।

भावार्थ—(परशुधर सगर्व कहते हैं) हमारे बाणों से अभेद्य रहें ऐसे व्यक्ति तो ब्रह्माने विचार कर केवल चार ही बनाये

हैं अर्थात् गऊ, ब्राह्मण, स्त्री और नपुंसक जो इस संसार में अत्यन्त दीन स्वभाव वाले हैं। हे राम! तुम उनसे बचने का क्या उपाय कर सकते हो, मेरे बाणों से सब सुरासुर डरते हैं तुम तो अभी बालक हो (तुम उन्हें किसी प्रकार नहीं सह सकते) यहां तक कि तुम्हारे गुरु विश्वामित्र ऋषि होने के कारण बच गये हैं।

सूचना—जब गुरु-निंदा श्री रामजी से सहन न हो सकी, तब परशुराम को पुनः सचेत करने को बोले:—

मूल-(राम)-छप्पयछंद-भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं। नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं। सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते धर डारौं। सप्त सिंधुमिलि जाहिं होहि सबही तम भारो॥ अति अमल जोति नारायणी-कह केशव बुझि जाय बरु। भृगुनंद संभारु कुठारु मैं कियो सरासन युक्त सर॥ ४२॥

शब्दार्थ—भव-धनुष=महादेव का धनुष (पिनाक जिसकी गणना वज्रों में है)। ईश=महादेव। आसन ते चालौं=योगासन से डिगा दूं। धर (धरा)=पृथ्वी। सबही=सर्वत्र। तम=अंधकार। भारी=बड़ी। नारायणीजोति=नारायण का वह अंश जो परशुराम में था। वर=श्रेष्ठ।

विशेष—राम रूप देखकर परशुराम मोहित हो ही चुके थे (देखो छंद नं० १४)। जब व्यंग वचनों से परशुराम न

समझ सके कि रामावतार हो चुका और उनका समय बीत चुका तब रामजी ने स्पष्ट वचनों का सहारा लिया।

भावार्थ—(रामजी ने कहा कि हे परशुराम, जब बार बार हम तुमको 'केवल ब्राह्मण' कहते हैं और जताते हैं कि अब तुममें से नारायणी अंश चलागया, तब भी तुम नहीं समझते, तो लो स्पष्ट सुनो) जब मैंने शिवधनु भंग किया, तब भी तुम नहीं समझे, अब मैं तुमको दुःख देता हूं तब भी तुम नहीं समझ रहे हो (तुम्हें ये बालक चिढ़ा रहे हैं और तुम्हारा परशु नहीं चलता) तो लो सुनो, मैं वह व्यक्ति हूं कि ब्रह्मा की सृष्टि को चाहूं तो नष्ट कर दूं, महादेव को (तुम्हारे गुरुको) योगासन से डिगा दूं, चौदहो लोकों का संहार करदूं, शेष के सिर से पृथ्वी को गिरादूं, सातो समुद्र मेरी आज्ञासे मिलकर एक होजायें (प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दूं) सर्वत्र भारी अंधकार होजाय (यह भी प्रलय का एक दृश्य है)। श्रेष्ठ नारायणावतारी अंश तो तुम में से चला ही गया है, चाहूँ तो तुम में से उस अमल ज्योति का (जो केवल प्राणमात्र के रूप में मौजूद है) अत्यन्ताभाव करदूं (तुम्हारे प्राण भी खींचलूं)। हे भृगुनन्द ! अब आप अपना कुठार सँभालो (ब्राह्मण रूप से जंगलों से हवन के लिये केवल लकड़ी काट लिया करो, अब तुम्हारे कुठार में दुष्टदलनी शक्ति नहीं रह गई) अब मेरे अवतार का समय

है और दुष्ट दलन कार्य के लिये अब मैंने धनुष को शरयुक्त किया है अर्थात् अब दुष्ट दलन की जिम्मेदारी मेरे सिर है आप ब्राह्मण की तरह तप में निरत हूजिये।

नोट—स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रसंग में रामजी ने परशुराम को भृगुनंदन, भार्गव, जामदग्न्य इत्यादि शब्दों से ही संबोधित किया है जिसका व्यंग यही है कि अब तुम केवल ब्राह्मण हो, नारायणावतार नहीं रहे। अतः उन सब छंदों में साभिप्राय संज्ञा होने से परिकरांकुर अलंकार मानना अनुचित न होगा।

मूल—स्वागतछंद—

रामराम जब कोप कर्‍यो जू। लोकलोक भय भूरि भर्‍यो जू।
वामदेव तब आपुन आये। रामदेव दोउन समझाये॥ ४३॥

शब्दार्थ—भूरि=अत्यन्त। वामदेव=श्रीमहादेवजी। राम राम=श्रीरामचन्द्रजी और श्रीपरशुरामजी।

भावार्थ—जब श्रीरामचन्द्रजी और श्रीपरशुरामजी दोनों परस्पर क्रुद्ध हुए तो समस्त लोक अत्यन्त भय से परिपूर्ण होगये (कि अब क्या होगा, इन दोनों के क्रोधसे प्रलय तो न हो जायगी), यह दशा देख महादेवजी स्वयं आ उपस्थित हुए और दोनों राम देवों को समझा बुझाकर शांत किया।

मूल—दोहा—महादेव को देखि कै दोऊ राम विशेष।
कीन्हों परम प्रणाम उन आशिष दीन अशेष॥ ४४।

शब्दार्थ—परम प्रणाम=सांष्टांग प्रणाम' ऐसाप्रणाम जैसा शास्त्ररीति से उचितथा। अशेष आशिष=उचित आशिर्वाद जैसा आशिर्वाद परशुराम को चेले की हैसियत से उचित था वैसा उनको, और जैसा क्षत्रिय राजकुमारकी हैसियत से रामचन्द्र को उचित था वैसा उनको।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—सम (प्रथम)

मूल—(महादेव)—चतुष्पदीछन्द (चवपैया)

भृगुनंदन सुनिये, मन महँ गुनिये, रघुनंदन निरदोषी।
निजु ये अविकारी, सब सुखकारी, सबहीविधि संतोषी॥
एकै तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहाये।
आयुर्बल खूट्यो, धनुष छुट्यो में तन मन सुखपायो।४१।

शब्दार्थ—निजु=निश्चय। अविकारी=माया कृत विकार से रहित अर्थात ईश्वर। संतोषी=इच्छारहित (यहभी एक ईश्वरीय गुण है)। आयुर्बल खूट्यो=विष्णु के अंशावतार होने का समय (तुम्हारे लिये) व्यतीत होचुका (अब इस समय से तुम विष्णु के अंशावतार नहीं रहे, अबतुम केवल एक ब्राह्मण मात्र रहगये, ईश्वरांश की समस्त शक्तियां श्री रामचन्द्रजी में केन्द्रीभूत होगई)।

भावार्थ—हे भृगुनंदन! सुनो और मेरे कथन का तात्पर्य मन में अच्छी तरह समझो। इस विषय में श्रीरामजी नितान्त

दोषरहित हैं (उन्होंने तुह्मारा या मेरा अपमान करने के लिये धनुष नहीं तोड़ा)। ये निश्चय ईश्वर हैं, सबको सुखदेनेवाले हैं, सर्व प्रकार इच्छारहित हैं, तुम और ये दोनों एकही हो, कोई दूसरे नहीं, अतः नाम भी एकही है। अब तुह्मारा समय व्यतीत होगया (अबतुम अपने को ईश्वरावतार या ईश्वरांश-धारी मत समझो वरन् इनको ईश्वरावतार मानो), धनुष के टूटने से मैं अप्रसन्न नहीं वरन् तन मन से सुखी हुआ हूं (तन से इसलिये सुखी हुआ कि अब पिनाक का भार ढोने से छूटा और मन से इसलिये कि येही रामजी मेरे इष्टदेवहैं)।

मूल—(महादेव)—पद्धटिका छंद—तुम अमल अनंत अनादि देव। नहिं वेद बखानत सकल भेव। सबको समान नहिं बैर नेह। सब भक्तन कारन धरत देह। ४६।

शब्दार्थ—तुम=परशुराम और श्रीरामचन्द्र दोनों प्रति संबोधन है—छंद नं० ४५ में कहाहै "एकै तुम दोऊ"।

भावार्थ—सुगम है।

अलंकार—अतिशयोक्ति और उल्लेख।

मूल—अब आपनपौ पहिचानि विप्र। सब करहु आगिलो काज छिप्र॥ तब नारायण को धनुष जानि। भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि। ४७।

शब्दार्थ—आपनपौ=यह भाव कि "हम और ये एकही हैं"। आगिलो काज=रामावतार के कर्त्तव्य—वनगमन, सीता-

वियोग, सिंधुबंधन, रावणादिवध । छिप्र=शीघ्र ।

भावार्थ—हे विप्र ! अब यह जानकर कि तुम दोनों एकही हो और अब आगे दुष्टों का दमन रामचन्द्र द्वारा होगा (तुम्हारे शरीर द्वारा नहीं) शीघ्र ही आगेका कार्य आरंभ करो (झगड़ा छोड़ो आगे का काम होने दो) । ऐसा सुन कर परशुरामजी ने नारायण का धनुष (जो उनके पास था) श्री राम जी के हाथों में दे दिया (एकतो इस लिये कि दुष्ट दमन की जिम्मेदारी उनके सिपुर्द करदी, दूसरे यह कि निश्चय होजाय कि ये नारायणावतार हैं या नहीं) ।

मूल—मोटनकछंद—

नारायण को धनु बाण लियो । पेंच्यो हँसि देवन मोद कियो ॥
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनों । त्रयलोक कँप्यो भय मानि घनो
दिग्देव दहे बहु बात बहे । भूकंप भये गिरिराज ढहे ॥
आकाश विमान अमान छये । हा हा सबही यह शब्द रुये ॥४९॥

शब्दार्थ—घनो=बहुत अधिक । दिग्देव=दिग्पाल । बात बहे=(व्याकरण से अशुद्ध है) हवा चली । अमान=बेप्रमाण, बहुतसे । रुये=(रव किया) उच्चारित किया ।

भावार्थ—परशुराम के हाथ से श्रीरामचन्द्र ने नारायणी धनुषबाण ले लिये और परशुराम का (परीक्षा का) अभिप्राय समझ कर धनुष पर बाण चढ़ाकर मुसकाते हुए उसे खींचा ।

यह देख देवगण आनंदित हुए (विश्वास हो गया कि राम नारायणावतार हैं और अब ये रावण को अवश्य मारेंगे)। खींचने के बाद राम जी ने परशुराम से पूछा,—कहो किसे मारूं ? यह देख बड़े भय से त्रिलोक काँप उठा, दिग्दाह होने लगा जिससे दिग्पाल जलने लगे, हवा तेजी से बहने लगी (तूफान सा आगया) भूकंप हुआ, बड़े बड़े पर्वत भहराकर गिर गये, आकाश में असंख्य देवविमान आकर छागये और सब के मुखसे हाहाकार का शब्द निकलने लगा।

नोट—" मुसकाते हुए खींचा" इसके तीन भाव हैं। एक यह कि विना परिश्रम ही हँसते हँसते खींचा। दूसरे यह कि शंकर के वचनों का भी विश्वास न करके तुम हमारी परीक्षा लेते हो अतः तुम्हारी बुद्धि हास्यास्पद है। तीसरे यह कि जिसकी ओर देख श्रीरामजी मुसुका देते हैं वह माया में फँस जाता है और उसका सारा दिव्य ज्ञान मारा जाता है, ज्ञान मारे जाने से सारी शक्ति लुप्त होजाती है। रामजी की हँसी को 'तुलसीदास' ने माया रूप ही माना है—जैसे, "माया हास बाहु दिगपाला"—(रामायण-लंकाकांड)।

अलंकार—छंद ४८ में पीहित अलंकार।

मूल—(परशुराम)—शशिवदना छंद—जगगुरु जान्यो।
त्रिभुवन मान्यो। मम गति मारो। समय विचारो॥५०॥

शब्दार्थ—त्रिभुवनमान्यो=त्रिभुवन-पूज्य (यह शब्द 'जगगुरु'

का विशेषण है)। गति=शक्ति।

भावार्थ—(परशुराम कहते हैं) हे राम अब मैंने जाना कि तुम त्रिभुवनपूज्य जगद्गुरु हो अर्थात् ईश्वरावतार हो। अतः समय का विचारकरके (इस समय आपके हाथ से मारकाट का काम होना उचित नहीं क्योंकि आप दूल्हा बेषमें हैं और दूल्हा के हाथों मारकाट सा अमंगलिक कार्य होना उचित नहीं) इस बाण से मेरी ही शक्ति को मारो (मेरा जो यह अहंकार है कि मैं सर्व श्रेष्ठ वीर हूं इसे ही नष्ट करदो, जिससे अब मैं निरहंकारी ब्राह्मण होकर शांतियुक्त हो भवन करूं)।

—दोहा—विषयी को ज्यों पुष्पशर गति को हनत अनंग।
रामदेव त्योंही करी परशुराम गति भंग ६५१

शब्दार्थ—विषयी[illegible] बाण से।
अनंग=कामदेव

भावार्थ—जैसे [illegible] फूल
के बाण से [illegible] पर
[illegible] मनशक्ति [illegible]

पुष्पशर और अनंग शब्दों के प्रयोग से पुनरुक्तिवदाभास अलंकार भी स्पष्ट है।

मूल—चवपैया छंद—

सुरपति गति भानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारो।
आसिष रस भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहि मारो॥
अति अमल भये रवि, गगन बढ़ी छवि, देवन मंगल गाये।
सुरपुर सब हरषे, पुहपन बरषे, दुंदुभि दीह बजाये॥ ५२॥

शब्दार्थ—सुरपति=विष्णु। भानी=भंग करदी। सासन (शासन)=आज्ञा।

भावार्थ—जब श्री रामचन्द्रजीने परशुराम की आज्ञा मानकर उनकी वैष्णवीगति (विष्णुके अंशावतार की शक्ति) भंग कर दी, तब परशुराम को बड़ा सुख हुआ (इस विचार से कि अब हम दुष्टदलन की जिम्मेदारी से छूटे और अब इस कार्य का भार राम जी के सिर जा पड़ा)। तब राम को आशीर्वाद देकर कहने लगे कि तुमने हमें सब प्रकार से सुखी कर दिया (हमारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर)। अब रावण को आप मारिये (यह काम आपके ही हाथों होना है, हमारे हाथों नहीं)। इतनी वार्ता हो जाने पर, सूर्य निर्मल होकर निकल आये, आकाश शोभायुक्त होगया, देवताओं ने मंगलगान किये, सुरपुर निवासी हर्षित हो उठे, फूल बरसाने लगे और बड़े बड़े नगारे बजाने लगे (छंद न० ४८, ४९ में

वर्णित अवस्था दूर होगई)।

मूल—दोहा—सोवत सीतानाथ के भृगुमुनि दीन्ही लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥ १३॥

शब्दार्थ—सीतानाथ=रामजी; (यहाँ) नारायण, भगवान। लात दीन्ही=लात मारी थी। भृगुकुलपति=भृगुकुल में श्रेष्ठ परशुराम। सुमिरि=स्मरण करके।

भावार्थ—भृगुमुनि ने सोते में नारायण को लात मारी थी। उसी का स्मरण करके मानो नारायणावतार श्री रामजी ने भृगुकुल में श्रेष्ठ परशुराम जी की गति हरण करली (पंगु कर दिया)।

अलंकार—स्मरण, उत्प्रेक्षा, प्रत्यनीक की छटा देखने योग्य है।

नोट—जो पूज्यको लातमारे उसका पैर तोड़ देना चाहिये। यह शास्त्रोक्त दंड है। रामजी ने मर्यादा रक्षणार्थ भृगुमुनि के अपराध का दंड उनके वंशज परशुराम को दिया (गति हरी=पंगु कर दिया)।

मूल—मधुभार छंद—
दसरथ जगाइ। संभ्रम मगाइ॥ चले रामराइ। दुंदुभि बजाइ॥

शब्दार्थ—संभ्रम=संपूर्ण भ्रम।

भावार्थ—महाराज दशरथ को मूर्च्छा से जगाकर (परशुराम के आगमन और उनके क्रुद्ध होने से राजा दशरथ मूर्च्छित

होगये थे) और उनका संपूर्ण भ्रम भगाकर (यह कह कर कि परशुरामजी हमसे हार गये) नगाड़े बजवाकर श्री राम जी आगे चले ।

मूल—सवैया (मत्तगयन्द)—

ताड़का तारि सुबाहु सँहारि कै गौतमनारि के पातक टारे ।
चाँप हत्यो हर को हठि केशव देव अदेव हुते सब हारे ।
सीतहि ब्याहि अभीत चले गिरिगर्व चढ़े भृगुनंद उतारे ।
श्री गरुड़ध्वज को धनुलै रघुनंदन औधपुरी पगुधारे ॥५५॥

शब्दार्थ—गौतमनारि=अहल्या । हत्यो=तोड़ा । हठि=हठ करके (राजा जनक के मना करते रहने पर) । अदेव=असुर, राक्षसादि । अभीत=निडर होकर । गिरि गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे=परशुराम का दर्प दूर करके । गरुड़ध्वज=विष्णु ।

भावार्थ—सरल ही है ।

सातवाँ प्रकाश समाप्त ।

—:०:—

आठवाँ प्रकाश ।

दोहा—या प्रकाश अष्टम कथा अवध प्रवेश बखानि।
सीता वरन्यो दशरथहि और बंधुजन मानि ॥

मूल—सुमुखी छंद—

सब नगरी बहु सोभ रये। जहँ तहँ मंगलचार ठये।
बरनत हैं कविराज बने। तन मन बुद्धि विवेक सने ॥ १ ॥

शब्दार्थ—रये=रंजित, रँगे हुए। मंगलचार=हर्षसूचक आचार (देखो छंद नं० २, ६, ७)। ठये=ठाने, किये। विवेकसने=विचारयुक्त।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के सब स्थान अति शोभा से रंजित हैं (सजावट से सजाये हुए हैं)। जहां तहां हर्षसूचक चिह्न बनाये गये हैं (तोरण, बंदनवार, कदलीखंभ, चौक और कलशादि सजाये हैं)। सब लोग नगर की शोभा कविवत् वर्णन कर रहे हैं। सब नगर बासियों के तन, मन और बुद्धि विचार संयुक्त हैं (तन यथोचित वस्त्राभूषण से सुसज्जित हैं, उचित हर्ष से प्रफुल्ल हैं, और बुद्धि विवेक युक्त हैं)।

लसैं। मानो पुरदीपति सी दरसैं॥
लसैं। सोभैं तिनके मुख-अंचल सैं॥२॥

। दीपति=(दीप्ति) छविछटा।

भावार्थ—नगर के मकानों के ऊपर बहुत ऊँची और अनेक रंगो की पताकाएँ चढ़ाई गई हैं, वे ऐसी शोभा देती हैं मानो नगर की छविछटा ही दीख पड़ती है अथवा आकाश-विमानों में चढ़कर जो देवस्त्रियां आई हैं उनके घूँघटों के समान शोभा देती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—कलभन लीन्हे कोट पर खेलत सिसु चहुँओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

शब्दार्थ—कलभन=हाथियों के बच्चे। कोट=शहरपनाह की ऊँची दीवार। चंचरीक=भौंरे। चित्तचोर=मनोहर।

भावार्थ—कोट पर चारो ओर नगर के बालक हाथियों के बच्चों को लिये खेलते हैं। वे हाथी के बच्चे कोट पर ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनोहर भौंरे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कलहंसछंद—
पुर आठआठ दरवार विराजैं। युत्त आठ आठ सेनाबल साजैं॥
रह चार चार घटिका परिमानैं। घरजात और जब आवत जानैं४

विशेष—प्राचीन ग्रन्थों में आठ प्रकार के कोट कहे गये हैं। प्रत्येक राजधानी इन आठो कोटों से वेष्ठित रहती थी जिससे शत्रुके आक्रमण से रक्षा होतीथी। उनके नाम ये हैं:-(१) अतिदुर्ग (२)कालवर्म (३) चक्रावर्त (४)डिंबुर (५) तटावर्त.

आठवाँ प्रकाश ।

दोहा—या प्रकाश अष्टम कथा अवध प्रवेश बखानि ।
सीता बरन्यो दशरथहि और बंधुजन मानि ॥

मूल—सुमुखी छंद—

सब नगरी बहु सोभ रये । जहँ तहँ मंगलचार ठये ।
बरनत हैं कविराज बने । तन मन बुद्धि विवेक सने ॥ १ ॥

शब्दार्थ—रये=रंजित, रँगे हुए । मंगलचार=हर्षसूचक आचार (देखो छंद नं० २, ६, ७) । ठये=ठाने, किये । विवेकसने=विचारयुक्त ।

भावार्थ—अयोध्या नगरी के सब स्थान अति शोभा से रंजित हैं (सजावट से सजाये हुए हैं) । जहां तहां हर्षसूचक चिह्न बनाये गये हैं (तोरण, वंदनवार, कदलीखंभ, चौक और कलशादि सजाये हैं) । सब लोग नगर की शोभा कविवत् वर्णन कर रहे हैं । सब नगर वासियों के तन, मन और बुद्धि विचार संयुक्त हैं (तन यथोचित वस्त्राभूषण से सुसज्जित हैं, मन उचित हर्ष से प्रफुल्ल हैं, और बुद्धि विवेक युक्त हैं) ।

मूल—मोटनकछंद—

ऊंची बहुवर्ण पताक लसैं । मानो पुरदीपति सों दरसैं ॥
देवी गण व्योम विमान लसैं । सोभैं तिनके मुख-अंचल सैं ॥२॥

शब्दार्थ—पताक=पताकाएँ । दीपति=(दीप्ति) छविछटा । मुख-अंचल=घूँघट ।

भावार्थ—नगर के मकानों के ऊपर बहुत ऊँची और अनेक रंगो की पताकाएँ चढ़ाई गई हैं, वे ऐसी शोभा देती हैं मानो नगर की छविछटा ही दीख पड़ती है अथवा आकाश-विमानों में चढ़कर जो देवस्त्रियां आई हैं उनके घूँघटों के समान शोभा देती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—कलभन लीन्हे कोट पर खेलत सिसु चहुँओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

शब्दार्थ—कलभन=हाथियों के बच्चे। कोट=शहरपनाह की ऊँची दीवार। चंचरीक=भौंरे। चित्तचोर=मनोहर।

भावार्थ—कोट पर चारो ओर नगर के बालक हाथियों के बच्चों को लिये खेलते हैं। वे हाथी के बच्चे कोट पर ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनोहर भौंरे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कलहंसछंद—

पुर आठआठ दरवार विराजैं। युत्त आठ आठ सेनाबल साजैं॥
रह चार चार घटिका परिमानैं। घरजात और जब आवत जानैं४

विशेष—प्राचीन ग्रन्थों में आठ प्रकार के कोट कहे गये हैं। प्रत्येक राजधानी इन आठो कोटों से वेष्ठित रहती थी जिससे शत्रुके आक्रमण से रक्षा होतीथी। उनके नाम ये हैं:-(१) अतिदुर्ग (२)कालवर्म (३) चक्रावर्त (४)डिंबुर (५) तटावर्त

(७)पक्षभेद (८)सार्वर । कालिंजरके किले में इस प्रकारका कुछकुछ आभास मिलता है ।

दोहा—पुर आठ=नगर के आठो कोटों में। दरवार=द्वार, फाटक। सेवक=सिपाही, रक्षक ।

भावार्थ—नगर के आठो कोटों में आठो दिशाओं पर फाटक हैं, एक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी रहते हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते हैं तब वे आठ अपने घर जाते हैं । इस प्रकार हिसाब लगाने से अयोध्या नगर के फाटकों के रक्षक ८×८×८×१५=७६८० होते हैं ।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुन भाषा भेष विचार।
वाहन बसन विलोकिये केशव एकहिँ वार ॥५॥

शब्दार्थ—वार=दरवाजा, फाटक (कोट का द्वार) ।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा, भेष, विचार, वाहन और वस्त्र एक फाटक पर ही देखे जाते थे अर्थात् [illegible] , गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही एक [illegible] सब फाटकों पर—सबकी [illegible] थे ।

[illegible] पुहपन घरे ।

[illegible] पर इस में लघु है ।

दुहु दिसि दीसैं सुवरन मये । कलस विराजैं मनिमय नये ॥६॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रज परिहरे=धूलरहित, स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियां हैं, वे चंदन से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के दोनों ओर रत्नजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद—

घर घर घंटनके रव बाजैं । बिच बिच शंख जु झालरि साजैं ॥
पटह पखाउज आउझ सोहैं । मिलि सहनाइन सों मन मोहैं७॥

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा । पखाउज=मृदंग । आउझ=ताशा ।।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद-सुन्दरि सब सुन्दर प्रति मंदिर पुर यों बनी ।
मोहनगिरि शृंगन पर मानहु महि मोहनी ॥
भूषनगन भूषित नत भूरि चितन चोरहीं ।
देखत जनु रेखत तनु बान-नयन कोर हीं ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, खरोंचती हैं अर्थात् घावकरती हैं । नयन कोर=नेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई बरात का जलूसदेखने के लिये अटारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

(६)पद्माख्य (७)वक्षभेद (८)सार्वर । कालिंजरके किले में अभी भी इस प्रकारका कुछकुछ आभास मिलता है।

शब्दार्थ—पुर आठ=नगर के आठो कोटों में। दरवार=द्वार, फाटक। सेनावल=सिपाही, रक्षक।

भावार्थ—नगर के आठो कोटों में आठो दिशाओं पर फाटक हैं, प्रत्येक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी वहाँ रहते हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते हैं तब वे आठ अपने घर जाते हैं। इस प्रकार हिसाब लगाने से अयोध्या नगर के फाटकों के रक्षक ८×८×८×१५=७६८० होते हैं।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुन भाषा भेष विचार।
वाहन वसन विलोकिये केशव एकहिँ वार ॥५॥

शब्दार्थ—वार=दरवाजा, फाटक (कोट का द्वार)।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा, भेष, विचार, वाहन और वस्त्र एक फाटक पर ही देखे जाते थे अर्थात् जैसे सुभाव, गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही एक फाटक पर रहते थे वैसे ही सब फाटकों पर—सबकी वर्दी, सबके स्वभाव और गुण एक से थे।

मूल—कुसुमविचित्राछंद*—
अति सुभ वीथी रज परिहरे। मलयज लीपी पुहपन धरे।

* कुसुम विचित्रा छंद का १२ वां अक्षर दीर्घ होना चाहिये, पर इस में लघु है। कारण ज्ञात नहीं।

दुहु दिसि दीसैं सुवरन मये । कलस विराजैं मनिमय नये ॥६॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रज परिहरे=धूलरहित, स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियां हैं, वे चंदन से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के दोनों ओर रत्नजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद—

घर घर घंटनके रव बाजैं । विच विच शंख जु झालरि साजैं ।
पटह पखाउज आउझ सोहैं । मिलि सहनाइन सों मन मोहैं ७।

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा । पखाउज=मृदंग । आउझ=ताशा ।।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद-सुन्दरि सब सुन्दर प्रति मंदिर पुर यों बनी ।
मोहनगिरि शृंगन पर मानहु महि मोहनी ॥
भूषनगन भूषित नत भूरि चितन चोरहीं ।
देखत जनु रेखत तनु बान-नयन कोर हीं ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, खरोंचती हैं अर्थात् घावकरती हैं । नयन कोर=नेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई बरात का जलूसदेखने के लिये अटारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

(६)पद्माख्य (७)यक्षभेद (८)सार्वर । कालिंजरके किले में अभी भी इस प्रकारका कुछकुछ आभास मिलता है।

शब्दार्थ—पुर आठ=नगर के आठो कोटों में। दरवार=द्वार, फाटक। सेनावल=सिपाही, रक्षक।

भावार्थ—नगर के आठो कोटों में आठो दिशाओं पर फाटक हैं, प्रत्येक फाटक पर आठ आठ रक्षक हैं जो चार चार घड़ी वहाँ रहते हैं और जब अन्य रक्षकों को आया हुआ जान लेते हैं तब वे आठ अपने घर जाते हैं। इस प्रकार हिसाब लगाने से अयोध्या नगर के फाटकों के रक्षक ८×८×८×१५=७६८० होते हैं।

मूल—दोहा—आठो दिशि के शील गुन भाषा भेष विचार।
वाहन वसन विलोकिये केशव एकहिँ वार ॥५॥

शब्दार्थ—वार=दरवाजा, फाटक (कोट का द्वार)।

भावार्थ—आठो दिशाओं के रक्षकों के स्वभाव, गुण, भाषा, भेष, विचार, वाहन और वस्त्र एक फाटक पर ही देखे जाते थे अर्थात् जैसे सुभाव, गुण, भेष और विचारादि वाले सिपाही एक फाटक पर रहते थे वैसे ही सब फाटकों पर—सबकी वर्दी, सबके स्वभाव और गुण एक से थे।

मूल—कुसुमविचित्राछंद*—
अति सुभ बीथी रज परिहरे। मलयज लीपी पुहपन धरे।

* कुसुम विचित्रा छंद का ११ वां अक्षर दीर्घ होना चाहिये, पर इस में लघु है। कारण ज्ञात नहीं।

दुहु दिसि दीसैं सुबरन मये । कलस विराजैं मनिमय नये ॥६॥

शब्दार्थ—वीथी=गलियाँ, रास्ते । रज परिहरे=धूलरहित, स्वच्छ । मलयज=चंदन । पुहपन=(पुष्पन) फूल ।

भावार्थ—अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ धूलरहित गलियां हैं, वे चंदन से लीपी हैं और जहाँ तहाँ फूल छीटे हुए हैं । गलियों के दोनों ओर रत्नजटित नवीन सुवर्ण कलश शोभा देते हुए देख पड़ते हैं ।

मूल—तामरस छंद—

घर घर घंटनके रव बाजैं । विच विच शंख जु झालरि साजैं ॥
पटह पखाउज आउझ सोहैं । मिलि सहनाइन सों मन मोहैं७॥

शब्दार्थ—झालरि=विजयघंट । पटह=युद्ध का नगाड़ा । पखाउज=मृदंग । आउझ=ताशा ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—हीरछंद-सुन्दरि सब सुन्दर प्रति मंदिर पुर यों बनी ।
मोहनगिरि शृंगन पर मानहु महि मोहबी ॥
भूषनगन भूषित नत भूरि चितन चोरहीं ।
देखत जनु रेखत तनु बान-नयन कोर हीं ॥८॥

शब्दार्थ—रेखत=रेखा करती हैं, खरोंचती हैं अर्थात् घावकरती हैं । नयन कोर=नेत्र की अनी (कटाक्ष) ।

भावार्थ—(नगरकी स्त्रियाँ आती हुई बरात का जलूसदेखने के लिये अटारियों पर चढ़ी हैं) पुरमें प्रति मंदिर पर

सुन्दरी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी बनी ठनी हैं मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनी देवियाँ हैं (नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहनी' कहकर नगर और स्त्रियों की अति सुन्दरता सूचित की है)। अनेक आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जित हैं (इस से उनका धन-सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि अनेक जनों के चित्तों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं)। वे जिसकी ओर देख देती हैं मानो कटाक्ष से—बाणसम नेत्रों की अनी से—उसके शरीर पर रेखा सी करती हैं (घाव करती हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सुंदरीछंद—

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति।
पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपन ऊपर दीपति जानहु॥९॥
कीरतिश्री जयसंयुत सोहति। श्रीपति मंदिर को मन मोहति।
ऊपर मेरु मनो मन रोचन। स्वर्णलता जनु रोचति लोचन॥१०॥

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत। पद्मिनि=लक्ष्मी। श्रीपति-मंदिर=वैकुंठ। मनरोचन=मनोहर। रोचति=सुहावनी लगती है।

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी उत्प्रेक्षामाला लिखते हैं) वे स्त्रियाँ कैसी शोभती हैं मानो कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (शंकर का) मन मोहित कर रही हैं। (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियाँ हैं, वा

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है जो बैकुंठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर मानो नेत्रानंद दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

मूल—विशेषकछंद(इसे 'नील' और 'अश्वगति' भी कहते हैं)-
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे। मोहति है मन मानहु चाँदनि चंद धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी। मानहु रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ ११ ॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरै । मेघन की दुति मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय जरी। सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल माना गया है)। निचोल=वस्त्र । दुति=कान्ति । सूछम=बारीक, महीन। सारि=साड़ी । जराय जरी=जरदोज़ी काम की (जिसपर सल्मे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों का समूह । पद्मिनी=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ में दर्पण लिये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चन्द्रमा को अपने हाथ में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है (चांदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद वस्त्र धारण किये हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल वस्त्रों

की ज्योति से जगमगारही है, मानो अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी ही शोभित है ॥ ११ ॥ कोई स्त्री नीलाम्बर धारण किये हुए मन मोहती है, मानो बिजली ही ने मेघकान्ति को अपने शरीर पर धारण किया है। किसी स्त्री के तनपर जरी की बारीक साड़ी है, वह ऐसी शोभा देती है मानो कमलिनीने सूर्य-किरण-समूहको शरीरपर धारण किया हो ॥ १२ ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—तोटक छंद— ×

बरषै कुसुमावलि एक बनी। सुभ-सोभन कामलता सी बनी
बरषा फल फूलन लायक की। जनु है तरुनी रतिनायक की॥३

शब्दार्थ—एक=कोई स्त्री। सुभ-सोभन=अत्यन्त रूपवती। कामलता=अत्यन्त सुंदर लता। फल=पुंगी फलादि। लायक (लायक)=लावा (नसाने के अथवा धान के लावा)। रति-नायक=कामदेव।

भावार्थ—कोई स्त्री अत्यन्त सुंदर कामलता सी बनी पुष्प वर्षा कर रही है। कोई फल फूल और लावों की वर्षा कर रही है, वह ऐसी सुन्दर है मानो कामदेव की स्त्री (रति) ही हो। तात्पर्य यह कि अटारीपर चढ़ी हुई सुन्दर स्त्रियाँ फल फूल लावा इत्यादि मंगल सूचक वस्तुओंकी वर्षा कर रही हैं।

लंकार—उत्प्रेक्षा ।

ल—दोहा—भीर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि ।
तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि॥१४॥

ब्दार्थ—नागरी=चतुरा ।

ल—तोटक छन्द—

तमपुंज लियो गहि भानु मनो । गिरि अंजन ऊपर सोम मनो।
मनमत्थ विराजत सोभ तरे । जनु भासत दानहिं लोभ धरे१।

ावार्थ—गिरिअंजन=कज्जलगिरि । सोम=चंद्रमा । मनमत्थ=कामदेव । सोभ=शोभा । तरे=नीचे । धरे=धारण किये हुए, सिरपर लिये हुए ।

ावार्थ—(भीड़ अधिक होने से जब श्री रामजी हाथी पर चढ़ कर चले तब हाथी पर सवार श्रीरामजी का वर्णन वे स्त्रियाँ यों करने लगीं) मानो तमसमूह ने सूर्य को पकड़ लिया हो (रामजी सूर्य, तमपुंज हाथी), अथवा कज्जलगिरि पर चन्द्रमा है ऐसा कहिये (रामजी चंद्र, कज्जलगिरि हाथी) अथवा लोभ ही दान को मस्तक पर धारण किये हुए देख पड़ता है (हाथी काला होने से लोभसम, और रामजी सुन्दर होने से दान सम हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा माला ।

ल—मरहट्टा छंद—

प्रकासी सब पुरवासी करत ते दौरादौरी ।
उतारि सरबसु वारैं अपनी अपनी पौरी ॥

सुन्दरी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी ....
मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनी दौड़ी
(नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहनी' कह
नगर और स्त्रियों की अति सुन्दरता सूचित की है)। वे
आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जित हैं (इस से उनका
सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि वे
जनों के चित्तों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं)। वे जिस
ओर देख देती हैं मानो कटाक्ष से—वामसम नेत्रों की
से—उसके शरीर पर रेखा सी करती हैं (घाव करती हैं)
अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सुंदरीछंद-

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति
पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपन ऊपर दीपति आनहु।
कीरतिश्री जयसंयुत सोहति। श्रीपति मंदिर को मन मोहति
ऊपर मेरु मनो मन रोचन। स्वर्णलता जनु रोचति लोचन

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत। पद्मिनि=लक्ष्मी। श्रीपति
मंदिर=वैकुंठ। मनरोचन=मनोहर। रोचति=सुहावनी लगती है।

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी
उत्प्रेक्षामाला टिकते हैं) वे स्त्रियां कैसी शोभती हैं मानो
कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (शंकर का) मन मोहित
कर रही हैं। (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियाँ हैं, या

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है जो बैकुंठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर मानो नेत्रानंद दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

मूल—विशेषकछंद(इसे 'नील' और 'अश्वगति' भी कहते हैं)-
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे। मोहति है मन मानहु चाँदनि चंद धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी। मानहु रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ ११ ॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरै । मेघन की दुति मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय जरी। सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल माना गया है)। निचोल=वस्त्र । दुति=कान्ति । सूछम=बारीक, महीन। सारि=साड़ी । जराय जरी=जरदोज़ी काम की (जिसपर सलमे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों का समूह । पद्मिनी=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ में दर्पण लिये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चन्द्रमा को अपने हाथ में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है (चांदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद वस्त्र धारण किये हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल वस्त्रों

सुन्दरी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हैं वे ऐसी बनी ठनी हैं मानो मोहनगिरि पर्वत की चोटियों पर महिमोहनी देवियाँ हैं (नगर को 'मोहन गिरि' और स्त्रियों को 'महिमोहनी' कहकर नगर और स्त्रियों की अति सुन्दरता सूचित की है)। अनेक आभूषणों से उनके शरीर सुसज्जित हैं (इस से उनका धन-सम्पन्न होना सूचित किया) और इतनी सुन्दर हैं कि अनेक जनों के चित्तों को चुरा लेती हैं (मोहित करती हैं)। वे जिसकी ओर देख देती हैं मानो कटाक्ष से—बाणसम नेत्रों की अनी से—उसके शरीर पर रेखा सी करती हैं (घाव करती हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सुंदरीछंद-

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति॥
पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपन ऊपर दीपति जानहु॥९॥
कीरतिश्री जयसंयुत सोहति। श्रीपति मंदिर को मन मोहति॥
ऊरु मेरु मनो मन रोचन। स्वर्णलता जनु रोचति लोचन॥१०

शब्दार्थ—संकर-सैल=कैलाशपर्वत। पद्मिनि=लक्ष्मी। श्रीपति-मंदिर=वैकुंठ। मनरोचन=मनोहर। रोचति=सुहावनी लगती है।

भावार्थ—(अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के लिये केशवजी उत्प्रेक्षामाला लिखते हैं) वे स्त्रियां कैसी शोभती हैं मानो कैलाश पर चढ़ी हुई सिद्धकन्यायें (शंकर का) मन मोहित कर रही हैं। (अथवा) मानो कमलों पर लक्ष्मियाँ हैं, वा

रूप पर छटायें हैं ॥ ९ ॥ या कीर्तिश्री जयश्री के साथ है जो बैकुंठ का भी मन मोहती है, या मनोहर मेरु पर्वत पर मानो नेत्रानंद दायिनी सुवर्ण लताएँ हैं ॥ १० ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षामाला ।

मूल—विशेषकछंद (इसे 'नील' और 'अश्वगति' भी कहते हैं)-
एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे। मोहति है मन मानहु चाँदनि चंद धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी। मानहु रासिनि राजति है अनुराग रँगी ॥ ११ ॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरे । मेघन की दुति मानहु दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूछम सारि जराय जरी। सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—अंबर=वस्त्र । अनुराग=प्रेम (इसका रंग लाल माना गया है)। निचोल=वस्त्र । दुति=कान्ति । सूछम=बारीक, महीन। सारि=साड़ी । जराय जरी=जरदोज़ी काम की (जिसपर सल्मे, सितारे का काम हो) । सूर करावलि=सूर्य की किरणों का समूह । पद्मिनी=कमलिनी ।

भावार्थ—(अटारी पर चढ़ी हुई स्त्रियों में से) कोई हाथ में दर्पण लिये हुए और अपने शरीर में चंदन लगाए हुए है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो चाँदनी, चन्द्रमा को अपने हाथ में लिये हुए, देखनेवालों के मन को मोहित कर रही है (चांदनी सम स्त्री, चंद्रमा सा दर्पण । सफेद वस्त्र धारण किये हुए स्त्री का वर्णन है) । कोई स्त्री बड़े नेत्रों और लाल वस्त्रों

की ज्योति से जगमगारही है, मानो अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी ही शोभित है ॥ ११ ॥ कोई स्त्री नीलाम्बर धारण किये हुए मन मोहती है, मानो बिजली ही ने मेघकान्ति को अपने शरीर पर धारण किया है। किसी स्त्री के तनपर जरी की बारीक साड़ी है, वह ऐसी शोभा देती है मानो कमलिनीने सूर्य-किरण-समूहको शरीरपर धारण किया हो ॥ १२ ॥

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—तोटक छंद— ×

बरषै कुसुमावलि एक बनी। सुभ-सोभन कामलता सी बनी
बरषा फल फूलन लायक की। जनु है तरुनी रतिनायक की॥१३

शब्दार्थ—एक=कोई स्त्री। सुभ-सोभन=अत्यन्त रूपवती। कामलता=अत्यन्त सुंदर लता। फल=पुंगी फलादि। लायक (लाजक)=लावा (मखाने के अथवा धान के लावा)। रतिनायक=कामदेव।

भावार्थ—कोई स्त्री अत्यन्त सुंदर कामलता सी बनी पुष्प वर्षा कर रही है। कोई फल फूल और लावों की वर्षा कर रही है, वह ऐसी सुन्दर है मानो कामदेव की स्त्री (रति) ही हो। तात्पर्य यह कि अटारीपर चढ़ी हुई सुन्दर स्त्रियाँ फल फूल लावा इत्यादि मंगल सूचक वस्तुओंकी वर्षा कर रही हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—भीर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ बिचारि ।
तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि॥१४॥

शब्दार्थ—नागरी=चतुरा ।

मूल—तोटक छन्द—

तमपुंज लियो गहि भानु मनो । गिरि अंजन ऊपर सोम भनो॥
मनमथ विराजत सोभ तरे । जनु भासत दानहिं लोभ धरे१५

भावार्थ—गिरिअंजन=कज्जलगिरि । सोम=चंद्रमा । मनमथ=कामदेव । सोभ=शोभा । तरे=नीचे । धरे=धारण किये हुए, सिरपर लिये हुए ।

भावार्थ—(भीड़ अधिक होने से जब श्री रामजी हाथी पर चढ़ कर चले तब हाथी पर सवार श्रीरामजी का वर्णन वे स्त्रियाँ यों करने लगीं) मानो तमसमूह ने सूर्य को पकड़ लिया हो (रामजी सूर्य, तमपुंज हाथी), अथवा कज्जलगिरि पर चन्द्रमा है ऐसा कहिये (रामजी चंद्र, कज्जलगिरि हाथी) अथवा लोभ ही दान को मस्तक पर धारण किये हुए देख पड़ता है (हाथी काला होने से लोभसम, और रामजी सुन्दर होने से दान सम हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा माला ।

मूल—मरहट्टा छंद—

आनंद प्रकासी सब पुरबासी करत ते दौरादौरी ।
आरती उतारैं सरबद्ध वारैं अपनी अपनी पौरी ॥

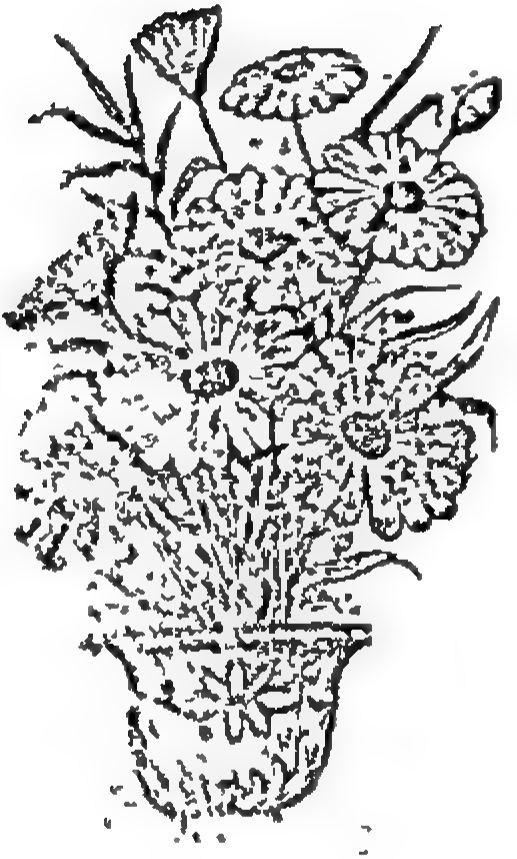

भावार्थ—सुगम ही है।

मूल—पद्मावतीछंद-बाजे बहु बाजैं, तारनि साजैं, सुनि सुर लाजैं, दुख भाजैं। नाचैं नव नारी, सुमन सिँगारी, गति मनुहारी, सुख साजैं॥ बीनानि बजावैं, गीतनि गावैं, मुनिन रिझावैं, मन भावैं। भूषण पट दीजै, सब रस भीजै, देखत जीजै, छवि छावैं॥ १९॥

शब्दार्थ—तार=उच्चस्वर। तारनि साजैं=उच्चस्वर से गाते हैं। भूषण पट दीजै=भूषण और वस्त्र देते हैं। सब रस भीजै=सब पुरवासी लोग प्रेमयुक्त होकर। देखतजीजै=जिनको देखदेख कर लोग जीते हैं (ऐसे सुन्दर हैं जिनको देखने के लिये लोग कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हैं)। भूषणपट. . . . . .छावैं=वे नाचने गाने वाली नटिनियां, बेड़िनियां ऐसी सुन्दर हैं कि लोग उनको देखदेख कर जीते हैं और प्रेमयुक्त होकर उन्हें भूषण और वस्त्र पुरस्कार में देते हैं।

भावार्थ—सुगम ही है।

मूल—सोरठा-रघुपति पूरण चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनन्द, तादिन ते तेहि पुर बढ़ैं॥२०॥

शब्दार्थ—दिन=प्रतिदिन।

विशेष—तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है:—जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये।

आठवाँ प्रकाश समाप्त।
बालकाण्ड की कथा सम्पूर्ण।

पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दै सविशेषै।
कुंकुम करपूरनि मृगमद चूरनि वर्षत वर्षा वेषै॥ १६॥

शब्दार्थ—आनंद प्रकासी=आनन्द प्रकाशित करनेवाले। पौरी=दरवाजा। अशेषनि (अशेष)=समस्त, सब प्रकारके। अभिषेकनि=मंत्रों द्वारा जल छिड़कना। आशिष=असीस, दुआ। सविशेषै=विशेष रीति से, बड़े प्रेमभाव से। कुंकुम=केसर। करपूर=कपूर। मृगमद=कस्तूरी। चूर=चूर्ण।

भावार्थ—आनंद प्रकाशित करने वाले समस्त पुरवासी जन इधर उधर दौड़ धूपकर रहे हैं। अपने अपने द्वार पर पहुँचने पर वे श्रीरामजी की आरती करते हैं और अपना सर्वस्व(तन, मन, धन) निछावर कर डालते हैं। समस्त मंत्र पढ़ पढ़ कर शुभकामना सूचक मंत्रजलसे अभिषेक करते हैं और बड़े प्रेम से आशीर्वाद देते हैं। केसर, कपूर और कस्तूरी का चूर्ण वर्षा की तरह बरसाते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

मूल—आभीर छंद—यहिविधि श्रीरघुनाथ। गहे भरत को हाथ
पूजित लोक अपार। गये राज-दरबार॥ १७॥
गये एकही बार। चारो राज कुमार॥
सहित बधून सनेह। कौशल्या के गेह॥ १८॥

शब्दार्थ—पूजित लोक अपार=अनेक लोगों से पूजित होते हुए। दरबार=द्वार। सहित बधून=दुलहिनों सहित। सनेह=(स+नेह) प्रेम पूर्वक।

ावार्थ—सुगम ही है ।

ल—पद्मावतीछंद-बाजे बहु बाजैं, तारनि साजैं, सुनि सुर
ाजैं, दुख भाजैं । नाचैं नव नारी, सुमन सिँगारी, गति
नुहारी, सुख साजैं ॥ बीनानि बजावैं, गीतनि गावैं, मुनिन
ोझावैं, मन भावैं । भूषण पट दीजै, सब रस भीजै, देखत
ीजै, छवि छावैं ॥ १९ ॥

ब्दार्थ—तार=उच्चस्वर । तारनि साजैं=उच्चस्वर से गाते
हैं । भूषण पट दीजै=भूषण और वस्त्र देते हैं । सब रस
भीजै=सब पुरवासी लोग प्रेमयुक्त होकर । देखतजीजै=
जिनको देखदेख कर लोग जीते हैं (ऐसे सुन्दर हैं जिनको
देखने के लिये लोग कुछ दिन और जीवित रहना चाहते हैं)।
भूषणपट. . . . . .छावैं=वे नाचने गाने वाली नटिनियां,
बेड़िनियां ऐसी सुन्दर हैं कि लोग उनको देखदेख कर जीते हैं
और प्रेमयुक्त होकर उन्हें भूषण और वस्त्र पुरस्कार में देते हैं।

ावार्थ—सुगम ही है ।

ल—सोरठा-रघुपति पूरण चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं ।
दिन दूने, आनन्द, तादिन ते तेहि पुर बढ़ैं॥२०॥

ब्दार्थ—दिन=प्रतिदिन ।

शेष—तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है;—जब तें राम
ब्याहि घर आये । नित नव मंगल मोद बधाये ।

आठवाँ प्रकाश समाप्त ।
बालकाण्ड की कथा सम्पूर्ण ।

नवा प्रकाश

—:०:—

(अयोध्या कांड)

दोहा—यह प्रकाश नवमें कथा रामगमन बन जानि।
जनकनंदिनी को सुकृत बरनन रूप बखानि ॥

मूल—दोहा—रामचन्द्र लछिमन सहित घर राखे दसरत्थ।
विदा कियो ननसार को सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ननसार= (नाना-शाला) ननिहाल, ननिओरा।

मूल—तोटक—

दसरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि बशिष्ठ सों मंत्र लये।
दिन एक कहो सुभ सोभरयो। हम चाहत रामहि राज दयो॥२॥

शब्दार्थ—मोद रये=मोदसे रंजित, मुदित। मंत्र लये=सलाह की। सोभरयो=सुंदर।

भावार्थ—सरलही है।

मूल—

यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊं बन रामहिं बुद्धि गुनी॥
तेहि मंदिर मों नृप सों बिनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो॥
(कैकेयी) नृपता लुविसेस भरत्थ लहैं। बरषैं बन चौदह राम रहैं॥

शब्दार्थ—हेरि हियो=गौर करके; अपने दिये हुए वचन को स्मरण करके।

नवा प्रकाश

—:०:—

(अयोध्या कांड)

दोहा—यह प्रकाश नवमें कथा रामगमन बन जानि।
जनकनंदिनी को सुकृत बरनन रूप बखानि ॥

मूल—दोहा—रामचन्द्र लछिमन सहित घर राखे दसरत्थ।
विदा कियो ननसार को सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ननसार= (नाना-शाला) ननिहाल, ननिओरा।

मूल—तोटक—

दसरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठ सों मंत्र लये।
दिन एक कहो सुभ सोभरयो। हम चाहत रामहि राज दयो॥२॥

शब्दार्थ—मोद रये=मोदसे रंजित, मुदित। मंत्र लये=सलाह की। सोभरयो=सुंदर।

भावार्थ—सरलही है।

मूल—

यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊं बन रामहि बुद्धि गुनी॥
तेहि मंदिर मों नृप सों बिनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो॥
(कैकेयी) नृपता सुविसेस भरत्थ लहैं। बरषैं बन चौदह राम रहैं॥

शब्दार्थ—हेरि हियो=गौर करके; अपने दिये हुए वचन को स्मरण करके।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—पद्धटिका—यह बात लगी उर वज्र तूल। हिय फा ज्यों जीरनदुकूल॥ उठि चले विपिन कहँ सुनत राम। तात मातु तिय बंधु धाम॥ ५॥

शब्दार्थ—तूल=तुल्य, समान। जीरनदुकूल=पुराना कपड़ा। विपिन=वन।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—मसंततिलका—छूटे सबै सबनि के सुख क्षुत्पिपास। विद्वद्विनोद गुण, गीत विधान, वास॥ ब्रह्मादि अंत्यजन अंत अनंत लोग। भूले अशेष सविशेषनि राग भोग॥ ६॥

शब्दार्थ—क्षुत्पिपास=भूखप्यास। विद्वद्विनोद=विद्याविनोद, शास्त्रार्थ इत्यादि। गुण=विद्या का अभ्यास। गीत विधान=गाना, बजाना, नृत्य इत्यादि। वास=घर। ब्रह्मादि अंत्यजन अंत=ब्राह्मणों से लेकर पतित शूद्रों तक। अशेष=सब। सविशेषनि=विशेषरूपसे, बिल्कुल, अत्यंत। राग=प्रेम। भोग=सुख भोग इत्यादि।

भावार्थ—(राम के वनगमन की खबर सुनकर) सब लोगों को सब प्रकार के सुख भोग भूल गये, भूख प्यास भी जाती रही, पण्डित लोगों को शास्त्रार्थ विनोद, विद्याभ्यास (पठन-पाठन) भूल गया, गायक लोग गान वाद्यादि का व्यसन भूल गये, यहांतक कि लोगों को अपने अपने घर द्वार की भी

या छंद-नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार।
ा बधिर अंध अनाथ अपार ॥ अंध अनाथ
बावन अति रोगी। बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन
॥ कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
गी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥ १६ ॥

—और भावार्थ—सरल ही है।

जवाटिका छंद (यह भी चौपाई ही है)—नारि
मेरे भरतारहिं ॥ ता सँग सहहिं धनंजय झाराहिं ॥
विधि करतार जियावहिं। तौ तेहि कहँ यह बात
॥ १७ ॥

र्थ—धनंजय=अग्नि। करतार=ईश्वर। बात=आचार-
।

—स्त्री को चाहिये कि वह मरजाने पर भी अपने
न छोड़े। उसीके साथ अग्नि की झार सहन
जाय) यदि किसी कारण वश ईश्वर ऐसा
पतिकी मृत्यु के बाद भी उसे जीवित
कृत्य के अनुरोध से—यथा पतिका
लन इत्यादि) तो उसके
है।

कवि पहले
कौशल है।

शब्दार्थ—सासना=(शासन) आज्ञा । नर्क=नरक ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—(कौशल्या)—सारवती छंद—

× मोहि चलौ बन संग लिये । पुत्र तुम्हें हम देखि जियें ॥
औधपुरी महँ गाज परै । के अब राज्य भरत्थ करै ॥ १० ॥

(नारि-धर्म वर्णन)

मूल-(राम) तोमर छंद—

तुम क्यों चलौ बन आजु । जिन सीस राजत राजु ॥
जिय जानिये पति देव । करि सर्व भांतिन सेव ॥ ११ ॥
पति देइ जो अति दुःख । मन मानि लीजै सुक्ख ॥
सब जगत जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ १२ ॥

मूल—अमृतगति छंद—

नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ॥
तन मन सेवहु पतिको । तब लहिये सुभ गति को ॥ १३ ॥

मूल—स्वागताछंद-(यह छंद एक प्रकार की 'चौपाई' है)-

जोग जाग मत आदि जु कीजै । न्हान, गानगुन, दान जु दीजै ॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहिं एक फल के पति सेवा ॥ १४ ॥

मूल-तात मातु जन सोदर जानो । देव जेठ सब संगिहु मानो ॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छविछाई । हैं विहीन भरता दुखदाई ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—(छंद १२) अमित्र=अहितू । मित्र=हितैषी ।
(छंद १४) गानगुन=गुणगान(ईश्वर भजन) । देवा=देवपूजन ।
(छंद १५) देव=देवर । पुत्रसुत=पौत्र । विहीन=बिना ।

भावार्थ—छंद ११ से १५ तक का अर्थ सरल ही है ।

मूल—कुंडलिया छंद-नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार ॥ अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी। बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी ॥ कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी। अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—और भावार्थ—सरल ही है।

मूल—पंकजवाटिका छंद (यह भी चौपाई ही है)—नारि न तजहि मरे भरतारहिं ॥ ता सँग सहहि धनंजय झारहिं ॥ जो केहु विधि करतार जियावहिं। तौ तेहि कहँ यह बात बतावहिं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—धनंजय=अग्नि। करतार=ईश्वर। बात=आचार-शिक्षा।

भावार्थ—स्त्री को चाहिये कि वह मरजाने पर भी अपने पति को न छोड़े। उसीके साथ अग्नि की झार सहन करे (सती होजाय) यदि किसी कारण वश ईश्वर ऐसा संयोग ला दे कि पतिकी मृत्यु के बाद भी उसे जीवित रहना पड़े (किसी धर्मकृत्य के अनुरोध से—यथा पतिका अंतिम संस्कार करना वा पुत्र पालन इत्यादि) तो उसके लिये यह आचार-शिक्षा बतलाई गई है।

अलंकार—मुद्रा।

नोट—आगे होने वाली बात का आभास सुचतुर कवि पहले से श्रीरामजी के मुख से दिलाता है। यह केशव का कौशल है।

शब्दार्थ—सासना=(शासन) आज्ञा । नर्क=नरक ।
भावार्थ—सरल ही है ।

मूल—(कौशल्या)—सारवती छंद—
× मोहि चलौ वन संग लिये । पुत्र तुम्हैं हम देखि जियैं ॥
औधपुरी महँ गाज परै । कै अब राज्य भरत्थ करै ॥ १०

(नारि-धर्म वर्णन)

मूल-(राम) तोमर छंद—
तुम क्यों चलौ वन आजु । जिन सीस राजत राजु ॥
जिय जानिये पति देव । करि सर्व भांतिन सेव ॥ ११ ॥
पति देइ जो अति दुःख । मन मानि लीजै सुक्ख ॥
सब जगत जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ १२ ॥

मूल—अमृतगति छंद—
नित पति पंथहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ॥
तन मन सेवहु पतिको । तब लहिये सुभ गति को ॥ १३ ॥

मूल—स्वागताछंद-(यह छंद एक प्रकार की 'चौपाई' है)-
जोग जाग ब्रत आदि जु कीजै । न्हान, गानगुन, दान जु दीजै ॥
धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहिं एक फल के पति सेवा ॥ १४ ॥

मूल-तात मातु जन सोदर जानौ । देव जेठ सब संगिहु मानौ ॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छबिछाई । हैं विहीन भरता दुखदाई ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—(छंद १२) अमित्र=अहितू । मित्र=हितैषी ।
(छंद१४) गानगुन=गुणगान(ईश्वर भजन)। देवा=देवपूजन ।
(छंद १५) देव=देवर । पुत्रसुत=पौत्र । विहीन=विना ।
भावार्थ—छंद ११ से १५ तक का अर्थ सरल ही है ।

मूल—कुंडलिया छंद-नारी तजै न [illegible]
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ [illegible]
अपार वृद्ध बावन अति रोगी [illegible]
जड़ जोगी ॥ कलही कोढ़ी [illegible]
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न [illegible]

शब्दार्थ—और भावार्थ—सरल ही है।

मूल—पंकजवाटिका छंद (यह भी चौपाई [illegible]
न तजहि मरे भरतारहिं ॥ ता सँग सहहि [illegible]
जो केहु विधि करतार जियावहिं। तो तेहि [illegible]
बतावहिं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—धनंजय=अग्नि। करतार=ईश्वर। [illegible]
शिक्षा।

भावार्थ—स्त्री को चाहिये कि वह मरजाने [illegible]
पति को न छोड़े। उसीके साथ अग्नि [illegible]
करे (सती होजाय) यदि किसी कारण [illegible]
संयोग ला दे कि पतिकी मृत्यु के बाद भी [illegible]
रहना पड़े (किसी धर्मकृत्य के अनुरोध से—[illegible]
अंतिम संस्कार करना वा पुत्र पालन इत्यादि) [illegible]
लिये यह आचार-शिक्षा बतलाई गई है।

अलंकार—मुद्रा।

नोट—आगे होने [illegible]
से श्रीरामजी के मुख

(विधवा-धर्म-वर्णन)

मूल—(राम)—निशिपालिकाछंद—गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं। तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं॥ तेल तजि खल तजि खाट तजि सोवहीं। सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल जोवहीं॥ १८॥

खाय मधुरान्न नहिं पाय पनहीं धरैं। काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं॥ कृच्छ उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं। पुत्र सिख लीन तन जौलगि अतीतहीं॥ १९॥

शब्दार्थ—मधुरान्न=मिठाई। पनही=पादत्राण। कृच्छ उपवास=चांद्रायण व्रत इत्यादि, शरीर को कृश करने वाले या कष्टदेने वाले उपवास। ऐसे व्रतों में एक दिन पहिले पंचगव्य का प्राशन किया जाता है दूसरे दिन व्रत किया जाता है। पुत्र सिख लीन=पुत्र की आज्ञा के अनुसार रहते हुए। अतीतहीं=छोड़े, त्याग करे।

भावार्थ—न स्वयं गावे न गान सुने, किसी से सम्मान पाने की इच्छा न करे, किसी से परिहास न करे, गर्म वस्तु न खाय, पानी को ठंडा कर न पिये (जैसा मिल जाय वैसाही पिये), तैल न लगावे, किसी क्रीड़ा में सम्मिलित न हो, खटिया पर न सोवे, ठंडे पानी से स्नान करे, गर्म जल की तलाश न करे॥ १८॥ मीठा भोजन न करे, पैर में पनही न पहिने, मन वचन कर्म से धर्म कार्य ही किया करे। शरीर को कष्ट देने वाले व्रत करके इन्द्रियों को जीते, पुत्र

की आज्ञा में रहे, जब तक शरीर न छूटे तब तक इस प्रकार जीवन व्यतीत करे ॥ १९ ॥

मूल—दोहा—पति हित पितु पर तनु तज्यो सती साखि दै देव।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥ २० ॥
मनसा वाचा कर्मणा हमसों छाँड़हु नेहु।
राजा को बिपदा परी तुम तिन की सुधि लेहु ॥ २१ ॥

नोट—सती (दक्षकन्या) और तुलसी (वृन्दा) की कथाएं प्रसिद्ध हैं।

शब्दार्थ—विपदा=आफत, कष्ट। सुधि लेहु=सार सँभार करो।

भावार्थ—सरल ही है।

(राम जानकी संवाद)

मूल—पद्धटिका छंद—
उठि रामचंद्र लक्ष्मण समेत। तब गये जनक-तनया निकेत ॥
सुनि राज पुत्रिके एक बात। हम वन पठये हैं नृपति तात॥२२॥
तुम जननि सेव कहँ रहहु वाम। कै जाहु आजु ही जनक धाम॥
सुनि चंद्रवदनि गजगमनि एनि। मन रुचै सो कीजै जलजनैनि२३

शब्दार्थ—एनि=(एणी) कस्तूरी-मृगी (यह मृगी बहुत सुन्दर होती है। कद छोटा, पर आँखें बहुत बड़ी बड़ी और सुन्दर होने से बहुत प्यारी सूरत की होती है, अतः यहां पर अर्थ होगा) सुन्दरी, प्यारी।

भावार्थ—सरल है।

मूल—(सीता)-नराचछंद-न हौं रहौं न जाहुँ जू विदेह-धाम

को बर्ष। कही जु बात मातु पै सु आजु मैं सुनी सबै ॥ छुधाहि माँ भली विपति मांझ नारिये। पियास-त्रास नीर बीर युद्ध में सँभारिये ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—विदेह-धाम=जनकपुर। छुधाहि=भूख में। माँ=माता। पियास-त्रास=पियास की त्रास। बीर=योद्धा या भाई।

भावार्थ—(सीता जी कहती हैं) न तो मैं अयोध्या में रहूँगी; न अभी मैं जनकपुर जाऊँगी। जो बात अभी आपने माता जी से कही है वह मैंने सब सुनी है। भूख के समय माता ही अच्छी लगती है, विपति में स्त्री ही अच्छी सेवा-शुश्रूषा करती है, पियास में पानी ही अच्छा काम देता है, और युद्ध के समय भाई ही (या योद्धा) काम आता है, अतः ऐसे समयों के लिये इन्हीं व्यक्तियों को सँभाल कर, साथ रखना चाहिये।

नोट—भावी राम-रावण-युद्ध का तथा लक्ष्मण द्वारा अच्छी सहायता प्राप्त होने का आभास यहीं से कुशल कवि ने सीता जी के मुख से दिला दिया:—

"विपति माँझ नारिये"="नारिये माँझ विपति" शब्द भी आगे की लीला का आभास देरहे हैं। केकई द्वारा वनगमन की विपत्ति पड़ी, आगे सूर्पणखा और सीता द्वारा विपत्तियां आवेंगी। विपत्ति से उद्धार पाने के उद्योग में नारियां ही (सुरसा, सिंहिका लंका इत्यादि) बाधा डालेंगी।

आगे स्त्री ही द्वारा विपत्ति हटैगी अर्थात् कपियों द्वारा मंदोदरी के केशकर्षण को देखकर रावण का यज्ञ भंग होगा जिससे रावण मारा जायगा और विपत्ति हटैगी। फिर सीतात्याग द्वारा पुनः विपत्ति आवैगी, इत्यादि कथाओं का आभास इन तीन शब्दों में भरा है।

'हैमलेट' और शकुंतला में इसी प्रकार के आभासों के लिये शेक्सपियर और कालिदास की कुशलता की प्रशंसा करते हुए अनेक अँगरेजी आलोचकों की जबान घिस गई। वे लोग देखें कि हिन्दी कवियों में भी वही योग्यता मौजूद है और बहुत अधिक मात्रा में है। हमारे चतुर साहित्यकारों ने इस कुशलता के प्रदर्शन के लिये अलंकार शास्त्र में 'मुद्रा' नामक अलंकार की रचना आदि काल से कर रखी है।

अलंकार—मुद्रा।

मूल—(लक्ष्मण)—सुप्रिया वा शशिकला छंद—वन महँ विकट विविधि दुख सुनिये। गिरि गहवर मग अगमहिं गुनिये॥ कहुँ अहि हरि कहुँ निशिचर चरहीं। कहुँ दव-दहन दुसह दुख शर हीं॥ २५॥

शब्दार्थ—गहवर=अंधकार मय गूढ़ स्थान। हरि=सिंह बाघ, बंदर। देव-दहन=दावाग्नि। शर=मूंज, सरकंडा, सरपत (मुंज वन)।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी सीता जी को वनदुःख बतलाते हैं) हे वैदेही! सुनिये, वन में विविधि प्रकार के कठिन दुःख

(राम-लक्ष्मण संवाद)

मूल—(राम)—विशेषकछंद—धाम रहौ तुम लक्ष्मन घर की सेव करौ। मातन के सुनि तात! सुदारुण दुख हरौ। आय भरत्थ कहां धौं करैं जिय भाव गुनौ। जो दुख देयँ तो लै उर गौं यह सीख सुनौ॥ २७॥

शब्दार्थ—सेव=सेवा। भाव=भाव। गुनौ=खूब ध्यान से समझो। लै उर गौं=गौं से उसे हृदय पर लेवो (सहन करो)।

भावार्थ—(राम जी लक्ष्मण प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण! (हम तो बनको जाते हैं) तुम घर पर रहो, और राजा (दशरथ) की सेवा करो (वे इस समय बीमार हैं और दोनों लघु भ्राता भी यहां मौजूद नहीं हैं। और हे तात! सुनो, माताओं के दीर्घ दुःख भी हरना (किसी माता को दुःख न होने पावे)। न जाने भरत आकर (और राज्य पाकर) क्या करें। पर जो कुछ वे करें उसका भाव खूब गौर से समझते जाना। जो माताओं को, राज्यको वा तुम को दुःख दें, तो भी तुम गौं से (चुप चाप) सह लेना; यही हमारी शिक्षा है—इसे ध्यान में रखना।

नोट—श्री राम जी लक्ष्मण के उग्र स्वभाव को खूब जानते [illegible] अतः यही [illegible] जिस से भाइयों में वैर न हो।

लक्ष्मण)—[illegible]

ऐसी

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर। तपनताप=सूर्यकी धूप। पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख। बीर=भाई।

नोट—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग दोष स्पष्ट है।

भावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी, यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ। वायु के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूँगी, यहां तक कि अगर बड़वानल की ज्वलाओं में रहना पड़े तो रह सकूंगी। अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह लूंगी। सुर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह लूंगी, पर हे वीर! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा जा सकता।

नोट—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द बड़ा मजा दे रहे हैं। भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर की भौजाई हूँ। मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो, अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा, अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा हैं। मैं इतने कष्ट सहन कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है?

अलंकार—अनुप्रास, परिकर।

होते हैं। कहीं पर्वत हैं, कहीं तमावृत्त गहरे गड्ढे हैं: वहां चलना अगम ही है, इस बातको आप भली भांति समझ लीजिये। कहीं सर्प, कहीं सिंह, कहीं निशिचर (चोर) विचरते हैं, कहीं दावाग्नि लगती है, कहीं मुंजवन में दुस्सह दुःख सहने पड़ते हैं (उसे पार करते समय शरपत्र से शरीर चिरजाता है)।

नोट—इस में भी हरि (बंदर) और निशिचर शब्दों से भावी घटनाओं का आभास मिलता है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

मूल—(सीता)-दंडकछंद—केशौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास, दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै। वायु को वहन दिन दावा को दहन, घड़ी बाड़वानल ज्वालजाल में रह्यो परै॥ जीरन जनमजात जोर जुर घोर परि-पूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै। सहिहौं तपन ताप पूर के प्रताप रघुवीर को विरह वीर। मो सों न सह्यो परै॥ २६॥

शब्दार्थ—उपहास=निन्दामय हँसी (अन्य जनों की)। वहन=झोंका। दिन=प्रतिदिन। दहन=जलन (ताप)। जीरन जोर जुर घोर=अत्यंत जोरदार और भयंकर ज्वर। जनम जात जोर जुर घोर=आजीवन रहने वाला कठिन और भयंकरज्वर। ('जोर और जुर' का अन्वय 'जीरन' और 'जनमजात' दोनों शब्दों के साथ करना चाहिये)। परि पूरन....परै=जिनका पूरा दुःख किसी तरह कहा नहीं जा-

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर। तपनताप=सूर्यकी धूप। पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख। वीर=भाई।

ोट—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग दोष स्पष्ट है।

ावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी, यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ। वायु के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूँगी, यहां तक कि अगर वड़वानल की ज्वलाओं में रहना पड़े तो रह सकूंगी। अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह लूंगी। सूर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह लूंगी, पर हे वीर! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा जा सकता।

ोट—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द वड़ा मजा दे रहे हैं। भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर की भौजाई हूँ। मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो, अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा, अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा हैं। मैं इतने कष्ट सहन कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है?

लंकार—अनुप्रास, परिकर।

होते हैं। कहीं पर्वत हैं, कहीं तमावृत गहरे गड्ढे हैं, वहाँ चलना अगम ही है, इस बातको आप भली भाँति समझ लीजिये। कहीं सर्प, कहीं सिंह, कहीं निशिचर (चोर) विचरते हैं, कहीं दावाग्नि लगती है, कहीं मुंजवन में दुष्ट दुःख सहने पड़ते हैं (उसे पार करते समय शरपत्र से शरीर चिरजाता है)।

नोट—इस में भी हरि (बंदर) और निशिचर शब्दों से भावी घटनाओं का आभास मिलता है।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

मूल—(सीता)-दंडकछंद—केशौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास, दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै। वायु को वहन दिन दावा को दहन, बड़ी बाड़वाअनल ज्वालजाल में रह्यो परै॥ जीरन जनमजात जोर जुर घोर परि-पूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै॥ सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुबीर को विरह बीर! मो सों न सह्यो परै॥ २६॥

शब्दार्थ—उपहास=निन्दामय हँसी (अन्य जनों की)। वहन=झोंका। दिन=प्रतिदिन। दहन=जलन (ताप)। जीरन जोर जुर घोर=अत्यंत जोरदार और भयंकर ज्वर। जनम जात जोर जुर घोर=आजीवन रहने वाला कठिन और भयंकरज्वर। ('जोर और जुर' का अन्वय 'जीरन' और 'जनमजात' दोनों शब्दों के साथ करना चाहिये)। परि पूरन....परै=जिनका पूरा दुःख किसी तरह कहा नहीं जा

सकता—अत्यंत कठिन और भयंकर। तपनताप=सूर्यकी धूप। पर के प्रताप=शत्रु द्वारा दिये गये कठिन दुःख। वीर=भाई।

नोट—इस छंद के तीसरे तथा चौथे चरणों में विरति भंग दोष स्पष्ट है।

भावार्थ—(सीता जी लक्ष्मण प्रति कहती हैं) मैं नींद, भूख प्यास, निंदासूचक (अन्य जनोंकी) हँसी, त्रास सह सकूंगी, यहां तक कि सर्व दुःखदायी विष भी खा सकती हूँ। वायु के कठिन झोंके, दावानल की लपटें सह लूँगी, यहां तक कि अगर वड़वानल की ज्वलाओं में रहना पड़े तो रह सकूंगी। अत्यन्त कठिन और भयंकर तथा आजीवन रहनेवाला जीर्ण ज्वर जिसका पूर्ण भयंकर प्रभाव कहा नहीं जा सकता, सह लूंगी। सूर्य की गर्म धूप और शत्रुकृत अपकार दुःख सह लूंगी, पर हे वीर! श्री रघुवीर का विरह मुझसे नहीं सहा जा सकता।

नोट—इसमें 'रघुवीर', और 'वीर, शब्द वड़ा मजा दे रहे हैं। भाव यह है कि मैं एक वीर की पत्नी और एक वीर की भौजाई हूँ। मुझे तुम वन दुःखों से डरवाना चाहते हो, अगर मैं डर जाऊं तो तुम्हारी वीरता में कलंक लग जायगा, अतः मेरा साथ चलना ही अच्छा है। मैं इतने कष्ट सहन कर सकती हूँ, मुझे तुमने समझ क्या रक्खा है?

अलंकार—अनुप्रास, परिकर।

(राम-लक्ष्मण संवाद)

मूल—(राम)—विशेषकछंद—धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ। मातन के सुनि तात। सुदीरघ दुःख हरौ॥ आय भरत्थ कहां धौं करैं जिय भाय गुनौ। जो दुख देयँ तो लै उर गौं यह सीख सुनौ॥ २७॥

शब्दार्थ—सेव=सेवा। भाय=भाव। गुनौ=खूब ध्यान से समझो। लै उर गौं=गौं से उसे हृदय पर लेलो (सहन करलो)।

भावार्थ—(राम जी लक्ष्मण प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण! (हम तो बनको जाते हैं) तुम घर पर रहो, और राजा (दशरथ) की सेवा करो (वे इस समय बीमार हैं और दोनों लघु भ्राता भी यहां मौजूद नहीं हैं। और हे तात! सुनो, माताओं के दीर्घ दुःख भी हरना (किसी माता को दुःख न होने पावे)। न जाने भरत आकर (और राज्य पाकर) क्या करें। पर जो कुछ वे करें उसका भाव खूब गौर से समझते जाना। जो माताओं को, राज्यको वा तुम को दुःख दें, तो भी तुम गौं से (चुप चाप) सह लेना; यही हमारी शिक्षाहै—इसे ध्यान में रखना।

नोट—श्री राम जी लक्ष्मण के उग्र स्वभाव को खूब जानते थे। अतः यही उचित शिक्षा दी, जिस से, भाइयों में वैर विरोध न हो।

मूल—(लक्ष्मण)—दोहा—शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ। ऐसी कैसे बूझिये, घर सेवक बन नाथ॥ २८॥

शब्दार्थ—शासन=आज्ञा। जीवन=जीवित रहना। बूझिये=उचित है।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि) बहुत अच्छा! आप की आज्ञा कैसे भंग की जासकती है (आपकी आज्ञा से घर पर रह जाता हूं)। पर जीना वा न जीना यह तो मेरे हाथ है, क्योंकि यह कैसे उचित समझा जा सकता है कि सेवक तो घर में रह कर आनन्द उड़ावे और मालिक वन वन भटकता फिरे। भाव यह कि यदि आप आज्ञा के बल मुझे घर पर ही रखेंगे तो मैं आत्महत्याकरूँगा। और अपने प्राणों को आप की सेवा में रखूँगा।

(वन-गमन वर्णन)

मूल—द्रुत विलंबितछंद—विपिन मारग राम विराजहीं। सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं॥ विविधि श्रीफल सिद्ध मनो फलो। सकल साधन सिद्धिहिं ले चलो॥ २९॥

शब्दार्थ—श्री=शोभा। फल=तपस्या के फल। साधन=संयम, नियम, ध्यानादि सिद्धजनों के कर्तव्य। सिद्धि=अष्ट सिद्धियां (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, और वशित्व)।

भावार्थ—राम जी वन मार्ग मे जाते हुए शोभा पा रहे हैं, साथ में सुखप्रद पत्नी (सीता) और भाई लक्ष्मण भी शोभा दे रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो कोई सिद्धपुरुष (महा-

त्मा योगी) अपनी तपस्या में सफल होकर शोभा पा रहा है और अपने सब साधनों और प्राप्त सिद्धियों को समेट कर अपने घर आ रहा है (राम जी सिद्ध हैं, लक्ष्मण साधन हैं, सीताजी एकत्रीभूत सिद्धियाँ हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—राम चलत सब पुर चल्यो जँह तँह सहित उछाह।
मनो भगीरथ पथ चल्यो, भागीरथी प्रवाह॥ ३०॥

भावार्थ—राम के चलते ही जहाँ तहाँ से समस्त पुरवासी जन भी बड़े उत्साह से नगर छोड़ कर उनके पीछे चले। मानो राजा भगीरथ के पीछे गंगा की धारा बह चली हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चंचला छंद—रामचंद्र धाम तें चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै सु ह्वै गये महा बिहाल॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो जुलोक जाय।
गेह तूरि ज्यों चकोर चंद्रमे मिलै उड़ाय॥३१॥

शब्दार्थ—नृपाल=राजा दशरथ। बिहाल=व्याकुल। ब्रह्मरंध्र=मस्तक पर का तालु, ब्रह्मांड, नवमद्वार। जुलोक (द्युलोक) =सुरलोक, वैकुंठ। गेह=पिंजरा।

भावार्थ—जब राजा ने सुना कि रामजी घर से बन को प्रस्थान कर गये, तब इतने व्याकुल हो गये कि उन्हें किसी से कुछ बात चीत करने की शक्ति न रही। तदनंतर ब्रह्मांड फोड़कर उनके प्राण [illegible] को इस प्रकार चले गये जैसे

पिंजरा तोड़कर चकोर उड़कर चद्रमा से जा मिलता है।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—चित्रपदाछंद—रूपहिं देखत मोहैं। ईश! कहौ नर को हैं।
संभ्रम चित्त अरूझैं। रामहिं यों सब बूझैं॥३२॥

भावार्थ—(पंथ में जाते हुए) राम लक्ष्मण सीता को देख कर लोग मोहित होते हैं। मन में विचार करते हैं कि हे भगवान्! ये कौन नर हैं (कहां के रहने वाले और किसके पुत्र हैं)। जब कुछ निश्चय नहीं कर सकते और चित्त भारी भ्रम में उलझ जाता है, तब सब लोग रामजी से यों पूछते हैं।

मूल—चचरीछंद—कौन हो कित तें चले कित जात हौ केहि काम जू। कौनकी दुहिता बहू कहि कौन की यह वाम जू॥ एक गाँउ रहो कि साजन मित्र बंधु बखानिये। देश के पर देश के किधौं पंथ की पहचानिये॥ ३३॥

शब्दार्थ—दुहिता=पुत्री। बहू=पुत्रवधू। वाम=स्त्री। साजन=आदरणीय सज्जन। किधौं पंथ-की पहिचानिये=या तुम में सिर्फ रास्ते ही भर की जान पहचान है, पंथ के साथीही हो। तात्पर्य यह कि तुम तीनो एक गांव के हो, एक कुल के हो, या केवल मार्ग ही के साथी संगी हो।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—सन्देह।

मूल—दंडकछंद—किधौं यह राज पुत्री वर ही वरी है किधौं, उपदि बन्यो है यहि सोभा अभिरत हो। किधौं रति रति-

नाथ जस साथ केसोदास, जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हौ ॥ किधौं मुनि साप हत किधौं ब्रह्मदोषरत, किधौं सिद्धि युत सिद्ध परम विरत हौ । किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हे किधौं तुम, हरि हर श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—बरही=बलही से, बलपूर्वक, जबरदस्ती। बरी है=विवाही है । उपदि=अपनी इच्छा से । उपदि बर्यो है यहि=इस राजकुमारीने अपनी इच्छा से चुनकर तुम्हें वरण किया है। सोभा अभिरत हो=ऐसी सुन्दरता से युक्तहो, तुम ऐसे सुन्दर हो । जस=सुयश । विरत=वैराग्य युक्त । श्री=लक्ष्मी । सिवा=(शिवा) पार्वती । चाहत फिरत हौ=खोजते फिरते हो।

भावार्थ—(लोग पूछते हैं) यातो तुमने इस राज पुत्री को जबरदस्ती विवाहा है, या इसने ही मातापिता की इच्छाके विरुद्ध केवल अपनी इच्छा से तुमको वरा है (इसीसे डर कर बन बन छिपे फिरते हो), तुम ऐसे सुन्दर हो (कि क्या कहें) । केशवदास कहते हैं कि या तो तुम तीनों रति, काम और (संसार विजयी होनेका) सुयश हो—(लक्ष्मण जी सुयश रूप हैं) और शिव का वैर स्मरण करके बन में एकान्त वास करने जा रहे हो । या किसी मुनि द्वारा शापित व्यक्ति हो, या किसी ब्राह्मण का कुछ दोष करने में मन लगाये हो (अतः रूप बदले बन में फिर रहे हो, घात पाकर हत्या करोगे) या सिद्धि प्राप्त कोई परम विरागी सिद्ध पुरुष हो, या तुम दोनों पुरुष (राम और लक्ष्मण) विष्णु और शिव

हो जिनके साथ लक्ष्मी तो हैं पर (खोई हुई) पार्वती को खोजते फिरते हो (बतलाओ तुम हो कौन ?)।

अलंकार—संदेह ।

मूल—मत्तमातंगलीलाकरण दंडक छंद—

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देहधारी मनो ।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंश के हैं मनो, भाग भारे, मनो ।
देवराजा लिये देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये ।
पक्ष दू संधि संध्या सँधी हैं मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्षही मोहिये ।

शब्दार्थ—मंदाकिनी=आकाश गंगा । सौदामिनी=बिजली । रूरे=सुंदर । भागीरथी=गंगा । भारती=सरस्वती (नदी) । हंसजा=सूर्यकन्या जमुना । पक्षदू=दोनों पक्ष (कृष्ण और शुक्ल) । सँधी है=परस्पर संधित हैं (एकदूसरे से जुड़ी हुई एकत्र हैं) । लक्षिये=लखते हैं, देखते हैं । स्वच्छ=अति निर्मल । प्रत्यक्षही=इन्हीं चर्म चक्षुओं से (देखते हैं) ।

नोट—राम, सीता, लक्ष्मण तीनों आगे पीछे मार्ग में चल रहे हैं । वन के कारण तीनों की स्थिति अति संन्निकट की है, अर्थात् सटे हुए से चलते हैं—इसी स्थिति पर केशव जी उत्प्रेक्षा द्वारा अपनी प्रतिभा प्रगट करते हैं—कहते हैं कि:—

भावार्थ—(राम, सीता लक्ष्मण मार्गमें चलते हुए कैसे मालूम होते हैं) मानो मेघ, अकाशगंगा और बिजली ही देहधारी होकर सुंदर रूप से शोभा दे रहे हैं (राम मेघ हैं,

जानकी आकाशगंगा हैं और लक्ष्मण बिजली हैं) या यों कहो कि अनेक गंगा, सरस्वती और यमुना के अंशों के देहधारी-रूप हैं। जो इनके दर्शन कर रहे हैं उनका बड़ा सौभाग्य है (इनके दर्शन अनेक तीर्थराज प्रयाग के समान पुण्य-प्रद हैं) अथवा मानो इन्द्र महाराज इन्द्राणी और अपने पुत्र जयंत को लिये हुए भूलोक की शोभा बढ़ा रहे हैं। या मानो दोनों पक्षों की संधि (पूर्णमासी या अमावस) की तीनों संध्यायें सन्निकट होकर एकत्र हो गई हैं जिन्हें प्रत्यक्षही अत्यन्त निर्मल देखकर मन मोहित होता है।

सूचना—सामवेदी संध्या में यह प्रमाण है कि—प्रातः संध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत तथा सायं-संध्या का रंग श्याम है। इस उक्ति से यह भी लक्षित होता है कि केशवदास जी सामवेदी संध्या ही किया करते थे (अर्थात् सामवेदी सनौढिया ब्राह्मण थे)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—अनंगशेखर दंडक—तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत केशोदास पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहीं। तमाल वल्लरी समेत सूखि सूखि के रहे, ते बाग फूलि फूलि फैं समूल सूल खंडहीं॥ चित चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं। जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं अनेक भांतिके अनेक भोग भाग सों बढ़ैं॥ ३६॥

शब्दार्थ—पुंडरीक=कमल । वल्लरी=लता । सूल=दुःख । विराम लेत=ठहर कर सुस्ताते हैं, ठहरते हैं ।

भावार्थ—सरल है ।

मूल—मोदक छंद—घाम को राम समीप महा बल । सीतहिं लागत हैं अति सीतल ॥ ज्यों घन संयुत दामिनि के तन । होत हैं पूषन के कर भूषन ॥ ३७ ॥

मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहिं सीतल लागति ॥ प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि । देखु चलै तेहि ते सुख दायनि३८

शब्दार्थ—पूषन के कर=सूर्य की किरणें । प्यौ=पति ।

भावार्थ—सरल ही है ।

मूल-दोहा-प्रतिपुर औ प्रति ग्राम की प्रति नगरन की नारि सीता जू को देखि कै बरनत हैं सुखकारि ॥

शब्दार्थ—भावार्थ—सरल है ।

(सीता-मुख वर्णन)

मूल—दंडक—वासों मृग अंक कहैं तोसों मृगनैनी सब, वा सुधाधर तुहूं सुधाधर मानिये । वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै वह, कलानिधि तुहूं कलाकलित बखानिये ॥ रत्नाकरवं हैं दोऊ केशव प्रकाशकर, अंबर विलास कुवलय मानिये । वाके अति सीत कर तुहूँ सीता सीतकर, चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—सुधाधर=सुधा है अधर में जिसके । दाँतों की पंक्ति । कलाकलित=चौंसठ कलाओं को

वाला। रत्नाकर=(१) समुद्र (२) रत्नसमूह, रत्न जटित आभूषण। अंबर विलास=(१) आकाश में है विलास जिसका (२) जो सुन्दर वस्त्रों से शोभित है। कुवलय हितु=(१) कुमोदिनी का हितैषी (२) पृथ्वीमण्डल (कु=पृथ्वी+वलय=मंडल) की हितैषिणी। सीतकर=(१) ठंढी किरणें (२) संताप हारिणी (दर्शकों को आनंददायिनी)।

भावार्थ—(ग्रामवासिनी स्त्रियों में से एक सीता प्रति कहती हैं) हे चंद्रमुखी सीता सब जग निवासी तुझे चंद्रमा समान जानते हैं (जो गुण चंद्रमा में हैं, वे सब तुझ में भी हैं अर्थात्) उस चंद्रमा को लोग मृगांक कहते हैं तो तुझे भी सब लोग मृगनैनी कहते हैं; वह सुधाधर (अमृतधारी) है तो तू भी ओठों में सुधा रखती है; वह द्विजराज है तो तेरे भी दंतपंक्ति (द्विज+राजी) शोभित है; वह कलानिधि (कला कला करके बढ़नेवाला) है तो तू भी चौंसठ कलाओं की जानकारी से युक्त है; तुम दोनों रत्नाकर के प्रकाशक हो—अर्थात् चंद्रमा समुद्र को हुलसाता है और तुझ से रत्नजटित आभूषण प्रकाशित होते हैं—चंद्रमा आकाश में विलास करता है और तेरे शरीर पर वस्त्र विलास करते हैं; चंद्रमा कुमोदिनी का हितु है तो तू भूमंडल (कु+वलय) की हितैषिणी है (पृथ्वी की कन्या होने से); उस चंद्रमा की किरणें शीतल है तो तूभी दर्शकों के संताप (त्रिताप)

हर कर उनके चित्त को शांति रूपी शीतलता देनेवाली है—अतः तू चंद्रमा से किसी गुण में कम नहीं है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

मूल—दंडक—कलित कलंक केतु, केतु अरि, सेत गात, भोग योग को अयोग रोग ही को थल सो। पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो छन छन छीन होत छीलर के जल सो॥ चंद्र सो जो बरनत रामचंद्र की दोहाई सोई मति मंद कवि केसव मुसल सो। सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो॥ ४१॥

शब्दार्थ—कलित कलंक केतु=कलंक केतु से युक्त (भारी कलंकी)। केतु अरि=केतु है शत्रु जिसका-(राहु और केतु को एक ही मान कर केशव ने ऐसा लिखा)। ऊनो=अपूर्ण। छीलर=उथला जलाशय (थोड़ा जल और अधिक कीचड़ वाला जलाशय)। मुसल=मूसल (मूर्ख)।

भावार्थ—(दूसरी स्त्री उसके मतको खंडन करती हुई अपनी उक्ति लड़ाती है) हे सखी! सीता जी का मुख केवल कमल सा है चंद्रमा के समान नहीं, क्योंकि चंद्रमा तो भारी और प्रसिद्ध कलंकी है, केतु उसका शत्रु है, वह श्वेतांग भी है (कुष्ट रोगी है) भोग योग के अयोग्य है, रोगी है (क्षय रोग युक्त है) शुक्ल पक्ष में भी केवल पूर्णिमा को ही पूर्ण होता है, अन्य दिनों तो अपूर्ण ही रहता है, कृष्ण पक्ष में

तो उथले जलाशय के जल की भांति प्रति दिन क्षीण ही होता जाता है। सीता जू के मुख को जो कवि चंद्रमा सा कहता है वह मतिमंद पक्का मूसरचंद है (महा मूर्ख है) सीता जू का मुख तो इन दोषों से रहित तथा सौन्दर्य, सुगंध, सुकोमलता और स्वच्छता से युक्त है, अतः केवल कमल के समान है चंद्रसम नहीं।

अलंकार—प्रतीप और उपमा।

मूल—दंडक—एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जूको, एकै कहैं चन्द्र सम आनँद को कंद री। होय जो कमल तो रयनि में न सकुचै री, चंद जो तो वासर न होत दुति मंद री॥ वासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र, मुख वासर हू रजनि विराजै जगवंद री। देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद, याते मुख मुखै सखी कमलै न चंद री॥ ४२॥

शब्दार्थ—आनँद को कंद=आनन्द बरसानेवाला बादल। रयनि=(रजनी) रात्रि। जगवंद=जगत भर से वंदनीय। अनदेखेई कमल चंद=बात यह है कि कमल और चंद्रमा अपने गुणों और प्रभाव की बदौलत ही अच्छे समझे जाते हैं। इनका वास्तविक रूप देखने में सुन्दर नहीं।

भावार्थ—(तीसरी सखी दोनों का मत खंडन करके कहती है) कोई कहता है सीता जी का मुख अमल कमल सा है, कोई कहता है चंद्र सा आनन्ददायक है। पर मैं कहती हूँ कि

यदि कमल सा होता तो रात्रि को संकुचित न होता ? यदि चंद्र सा होता तो दिन में उसकी आभा मंद न पड़ती ? कमल तो दिनमेंही प्रफुल्लित रहता है, चंद्रमा रात्रि ही में प्रकाशित रहताहै, पर यह मुख तो रातिदिन समस्त जगत से सम्मान पाने योग्य है। कमल और चंद्रमा देखने में तो सुन्दर नहीं हैं (केवल उनके गुण सुनने में भले जँचते हैं) पर यह मुख टकटकी बांधकर देखने में ही भाता है (सौन्दर्य से तृप्ति नहीं होती)। इस कारण मेरी सम्मति तो यह है कि इस मुख के समान यही मुख है, न तो कमल ही इसके समान है न चंद्रमा ही इसके तुल्य है।

अलंकार—प्रतीप और अनन्वयोपमा।

मूल—दोहा—सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—भलो=अत्यन्त अद्भुत, बड़ा ही विलक्षण।

भावार्थ—हे सखी सीता के नेत्र चकोर हैं, रघुनाथजी रविवंशी हैं (चकोर और रवि से विरोध होने पर भी सीता के नेत्र चकोर उनपर आसक्त हैं यह आश्चर्य है) और राम जी चंद्र हैं (पर उसे देख कर) सीता का मुख-कमल प्रसन्न रहता है (चंद्र और कमल का विरोध होने पर भी) यह बड़ा ही अद्भुत संयोग है।

अलंकार—विरोधाभास।

सूचना—इस दोहे में अद्भुत रस छलक रहा है। केशव के पांडित्य और प्रतिभावान होने का अच्छा नमूना है।

छंद—

बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका यक बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहाँ कुस काँस थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को, शुभ बाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों॥४४॥

शब्दार्थ—तरंगिनी=नदी। श्रीपति=श्रीराम जी (पति की हैसियत से)। बाकल अंचल सों=वल्कलवस्त्र से हवा कर के। तेऊ=श्री सीता जी। तिनको=श्री राम जी का। दृगंचल=कटाक्ष, बांकी चितवन।

भावार्थ—(रास्ते में चलते हुए) कहीं किसी बाग में वा तड़ाग अथवा नदी के किनारे तमाल की अच्छी घनी छाया देख कर कुशासन बिछाकर एक घड़ी आनन्दपूर्वक बैठते हैं। सीता जी की थकावट वल्कलवस्त्र की हवा करके श्री राम जी दूर करते हैं, और श्री सीता जी बांकी चितवन से हेर कर श्री रामजी की थकावट दूर करती हैं।

अलंकार—अन्योन्य।

मूल—सोरठा—श्री रघुवर के इष्ट, अश्रुबलित सीता-नयन।
सांची करी अदृष्ट, झूठी उपमा मीन की॥४५॥

शब्दार्थ—इष्ट=अति प्रिय। अश्रुबलित=आनंदाश्रु युक्त।

अदृष्ट=होनहार।

भावार्थ—श्री रामजी का इतना प्रेम देख जानकी के नेत्रों में आनन्द के आँसू आजाते हैं। वे अश्रुयुक्त नेत्र श्री राम जी को अतिप्यारे मालूम होते हैं। कवि कहता है कि संयोग वश इस होनहारने (सीता सहित राम का वनगमन) नेत्रों की मीन की उपमा जो झूठी ही दी जाती है (क्योंकि मीन तो पानी में रहती है, नेत्र सदैव पानी में नहीं रहते, अतः उपमा झूठ थी सो) वह इस समय सत्य हो गई अर्थात् अश्रुयुक्त सीता के नेत्र ठीक मीन से जान पड़ते हैं।

मूल—दोहा—मारग यों रघुनाथ जू, दुख सुख सब ही देत।
चित्रकूट परवत गये, सोदर सिया समेत ॥४६॥

भावार्थ—दर्शनों से सब लोगों को सुख तथा पुनः निज वियोग से दुख देते हुए श्री रघुनाथ जी लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे।

नवम प्रकाश समाप्त।

दसवाँ प्रकाश

—:*:—

दो०—यहि प्रकाश दशमें कथा आवन भरत स्वधाम।
राज मरन अरु तासु को बसिबो नंदीग्राम ॥

मूल—दोधक—

आनि भरत्थ पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव ससोकी॥
आद नहीं विरदावलि साजैं। कुंजर गाजैं न दुंदुभि बाजैं॥१॥
राज सभा न विलोकिय कोऊ। सोक गहे तब सोदर दोऊ॥
मंदिर मातु विलोकि अकेली। ज्यों विन वृक्ष विराजति बेली॥२॥

भावार्थ—दोनों छंदों का सरल ही है। विन वृक्षकी बेलि= विना आश्रय की बेलि अर्थात् भूमि पर पतित, जमीन पर पड़ी हुई।

मूल—तोटक—

तब दीरघ देखि प्रनाम कियो। उठि कै उन कंठ लगाय लियो॥
न पियो जल संभ्रम भूलि रहे। पुनि मातु सों बैन भरत्थ कहे॥

शब्दार्थ—दीरघदेखि=जमीन पर लंबायमान पड़ी हुई (शोक से भू-पतिता)। न पियो जल=केकयी का दिया हुआ जलपान न किया। संभ्रम=भारी भ्रम।

मूल—दुर्मिल—

मातु कहाँ नृप? तात, गये सुरलोकहिं; क्यों? सुत शोक लये।
सुत कौनसु? राम, कहां हैं अबै? बन लच्छन सीय समेत गये॥

यन काज कहाँ कहि? केवल मो सुख, तोको कहा सुख यामें भये?
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध बिना सिगरेई हये॥४॥

शब्दार्थ—प्रभुता=राज्याधिकार । सिगरे=(सकल) सब ।
हये=(हने) मारे ।

अलंकार—प्रश्नोत्तर ।

मूल—दोहा—भर्ता सुत विद्वेषिनी सबही को दुखदाइ ।
यह कहि देखे भरत तब कौसल्या के पाइ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—विद्वेषिनी=बहुत अधिक द्वेष रखने वाली । देखे, ...पाइ=तब भरतजी कौशल्याजी के निकट जा उनके पैर छुए, प्रणाम किया ।

मूल—तोटकछंद—
तब पायन जाय भरत्थ परे । उन भेंटि उठाय के अंक भरे ।
सिरसूंघि विलोकि बलाइ लई । सुत तो बिन या विपरीति भई६

शब्दार्थ—सिरसूंघि=प्राचीन काल में वात्सल्य प्रेम प्रकाशन की यह रीति थी—(अब भी छोटे बालकों के सिर पर लोग हाथ फेरते हैं) । बलाइ लई=बलिहारी गई (बच्चों को चुंबन करते हुये स्त्रियां ऐसा कहती हैं) ।

मूल—(भरत)—तारकछंद—
सुनुमातु भई यहबात अनैसी । जुकरी सुत भर्तृ विनाशिनि जैसी
यहबात भई अब जानत जाके । द्विज दोष परैं सिगरे सिर ताके॥

शब्दार्थ—अनैसी=(अनइष्ट) बहुत बुरी । भर्तृ=(भर्ता) पति ।
द्विजदोष=ब्राह्मणहत्यादि पाप । सिगरे=सब ।

भावार्थ—(भरत जी कौशल्याजी का इतमीनान कराने को शपथ खाते हैं) हे माता ! सुनो, यह घटना जैसी पुत्र और पति-घातिनी कैकेयी ने की है, बहुत ही बुरी हुई। जिसके जानते हुए यह बात हुई हो उसके सिर ब्रह्महत्यादि पाप पड़े (अर्थात् यदि मेरे जानते यह बात हुई हो तो मुझे ब्रह्म-हत्या का पाप लगे)।

मूल—(भरत)—

× जिनके रघुनाथ विरोध बसै जू। मठधारिन के तिन पाप ग्रसै॥
रसराम रस्यो मन नाहिन जाको। रणमें नित होय पराजय ताको

शब्दार्थ-रसराम=रामप्रेम। रस्यो=रस से भीगा। पराजय=हार

भावार्थ—हे माता ! जिनके हृदय में रघुनाथ जी का विरोध बसता हो, उनको मठधारियों का पाप लगे। जिनका मन रामप्रेम से आर्द्र न हो, ईश्वर करे रण में नित्य उनकी हार हो।

सूचना—गो०तुलसीदासजी ने भी निजकृत रामचरितमानस में ऐसी शपथें खिलाई हैं, (देखिये रामचरितमानस अयोध्या-काण्ड दोहा ६६ से दोहा ६८ तक का प्रसंग)।

मूल—(कौशल्या)—

× जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयानो। अति साधुचरित्र तुम्हें हम जानो॥
सबको सबकाल सदा सुखदाई। जिय जानति हौं सुतज्यों रघुराई॥

शब्दार्थ—सौंह=शपथ। साधुचरित्र=अति शुभ चरित्रवाले। रघुराई=श्री रामजी।

मूल—चंचरीछंद—हाय हाय जहाँ तहा सब है रही सिगरी पुरी।
धाम धामनि सुन्दरी प्रगटीं सबै जे रहीं दुरी॥
लै गये नृपनाथ को सब लोग श्री सरजू तटी।
राजपत्नि समेत पुत्रनि विप्रलाप गटी रटी॥१०॥

शब्दार्थ—विप्रलाप=प्रलाप, अनर्थ वचन। गटी=समूह। रटी=कह कह कर।

भावार्थ—समस्त अयोध्यापुरी में जहाँ देखो वहीं हाय हाय शब्द हो रहा है, जो स्त्रियाँ कभी अंतःपुर के बाहर न निकली थीं वे भी इस समय राजा दशरथ की अर्थी के दर्शनों के निमित्त बाहर निकल आईं। महाराजा दशरथ के मृत शरीर को सरयू नदी के तटपर सब लोग ले गये, राजपत्नियों और राजपुत्रों ने बहुत कुछ प्रलाप किया।

मूल—सोमराजीछंद—करी अग्नि अर्चा। मिटी प्रेत चर्चा॥
सबै राजधानी। भई दीन बानी॥११॥

भावार्थ—(भरतजी ने) राजा दशरथ की दाह-क्रिया की, प्रेत कृत्य समाप्त हुए, और समस्त राजधानी के लोग अत्यन्त करुण स्वर से रोये।

मूल—कुमारललिताछंद—किया भरत कीनी। वियोग रसभीनी॥
सजी गति नवीनी। मुकुंदपद लीनी॥१२॥

भावार्थ—भरत जी ने पिता की मृतकक्रिया की। यद्यपि वियोग से अति दुखी हुए, तथापि ऐसी विधि से प्रेत क्रिया की कि राजा दशरथ की नवीन गति होगई अर्थात् वे मुकुंद

पद में लीन होगये (मुक्ति को प्राप्त हुए)।

मूल—तोटकछंद—

पहिरे बकला सुजटा धरिकै। निज पायन पंथ चले अरिकै।
तरि गंग गये गुह संग लिये। चित्रकूट विलोकत छांड़ि दिये१३

भावार्थ—तदनंतर भरत जी ने वल्कल वस्त्र पहन, जटा धारण कर, हठ पूर्वक पैदल ही रामजी के पास को चले। गंगा उतर कर गुह (केवट) को साथ लिये आगे बढ़े। जब चित्रकूट पर्वत को देखा तब उसे भी छोड़ कर अति आतुरता वश आगे बढ़े।

मूल—सुन्दरीछंद—

सब सारस हंस भये खग खेचर वारिद ज्यों बहु वारन गाजे।
बनके नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे॥
तजि सिद्ध समाधिन केशव दीरघ दौरि दरीन में आसन साजे।
सब भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुंदुभि बाजे१४

शब्दार्थ—खेचर भये=आकाश गामी हुए (उड़ चले)। वारन=हाथी। मृगनायक=सिंह। दरीन=कंदरायें। भूधर=पहाड़।

भावार्थ—जब भरत जी चित्रकूट के निकटवाले जंगल में अपनी सेना तथा समाज सहित पहुंचे, तब सेना के नगाड़ों के बजने तथा हाथियों के गरजने के शब्द से भयभीत होकर वन के नर, बानर, किन्नर, अपने अपने बालकों को लेकर ऐसे भागे जैसे कोई सिंह मृगों को उठाकर ले भागता है। उस वनके तपस्वी लोगों ने भी तपस्या में विघ्न आया हुआ जान शीघ्रतापूर्वक

दौड़ कर गिरि कंदराओं के भीतर जाकर आसन लगाये और एकाएक पृथ्वी और पहाड़ हिलगये।

मूल—दोहा-रामचंद्र लक्ष्मण सहित, सोभित सीता संग।
केशव दास सहास उठि, चढ़े धरनिधर सृंग ॥१५॥

शब्दार्थ—सहास=हँसते हुए। धरनिधरसृंग=पहाड़ की चोटी।

भावार्थ—सरल है।

मूल—(लक्ष्मण)—मोहनछंद—
देखहु भरत चमू सजि आये। जानि अबल हमको उठि धाये॥
हींसत हय बहु बारन गाजे। दीरघ जहँ तहँ दुंदुभि बाजे॥१६॥

शब्दार्थ— चमू=सेना। अबल=निबल, सहाय वा सेना रहित। हींसत=हिनहिनाते हैं।

भावार्थ—सरल है।

मूल—तारकछंद—गजराजन ऊपर पाखर सोहैं। अति सुंदर सीस-सिरी मन मोहैं॥ मनि घूँघुर घंटन के रव बाजैं। तड़ितायुत मानहुँ बारिद गाजैं॥ १७॥

शब्दार्थ—पाखर=झूलें। सीस-सिरी=(शीश-श्री) मस्तक की शोभा। तड़िता=बिजली।

भावार्थ—बड़े बड़े हाथियों पर झूलें सोहती हैं, उनके मस्तक की शोभा (आभूषणों अथवा चित्र विचित्र रंगों से) अति सुंदर है जिसे देखकर मन मोहता है। मणि जटित घुँघुरू सहित घंटों का शोर होरहा है, मानो बिजली समेत बादल गरज रहेहों।

सूचना—मेरी सम्मति में हाथियों का ऐसा वर्णन इस स्थल

पर अनुचित जँचता है।

मूल—मत्तगयंदछंद—

युद्ध को आजु भरत्थ चढ़े धुनि दुंदुभिकी दसहूँ दिसध
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सु न केसव कैसहु जाई॥
यों सबके तनत्राननि में झलकी अरुनोदय की अरुनाई
अंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज बाहर आई॥

शब्दार्थ—तनत्रान=कवच, जिरहबखतर। अरुनोदय=सूर्य
अरुनाइ=ललाई। अंतर=अंतस्तल (मन)। रजपूत=क्ष
रज=रजपूती, रजोगुणमयक्षत्रीपन।

भावार्थ—(लक्ष्मणजी विचारते हैं कि भरत ने आज
के हेतु चढ़ाई की है, नगारों की ध्वनि दशो दिशाओं में
गई है। प्रातःकाल (सूर्योदय के समय)भरत की चतुरं
सेना चली आ रही है, (केशव कहते हैं कि) उसका व
किसी प्रकार नहीं करते बनता। समस्त सैनिकों के (लोहे
कवचों पर सूर्योदय समय की लालिमा इस प्रकार झलकती
मानो क्षात्रधर्म से (वीरता से) वरजित करने के हेतु क्षा
का क्षत्रियत्व अंतःकरण से निकलकर ऊपर ही आगया

सूचना—केशव कृत भरतसेना का यह वर्णन कुछ अनु
सा जँचता है, पर आगे चलकर लक्ष्मण जी के चित्त में
रस का आविर्भाव प्रदर्शित करना कविका लक्ष्य है, अतः
उद्दीपनों का वर्णन रसकी परिपूर्णता हेतु जरूरी है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—तोटकछंद-

उड़ि कै धर धूरि अकाश चली। बहुचंचल बाजि खुरीन दली।
भुव हालति जानि अकालहिं ये। जनु थंभित ठौरनि ठौर किये॥

शब्दार्थ—धर=(धरा से) पृथ्वी से। बाजि=घोड़े। खुरीन=सुमों से। अकालहिं=बेवक्त, असमय (प्रलय से पहले ही)। थंभित किये=स्तंभ लगा दिये हैं।

भावार्थ—(कवि वर्णन करता है) बहुत से चंचल घोड़ों के सुमों से पिसकर पृथ्वी से धूल उड़कर आकाश को जारही है। वे धूल के धौरहर ऐसे जान पड़ते हैं मानों पृथ्वी को असमय ही डोलते डगमगाते देख ब्रह्मा ने खंभे गाड़ दिये हैं (जिससे पृथ्वी के हिलने डुलने से सृष्टि का विनाश न हो)।

नोट—पृथ्वी का हिलना पीछे छंद १४ में कह आये हैं।

मूल—तारकछंद-रण राजकुमार अरूझहिंगे जू। अति सन्मुख घायन जूझहिंगे जू॥ जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने। तिनके चढ़िवे कहँ मारग कीने॥ २०॥

शब्दार्थ—अरूझहिंगे=(अवरुद्धहिंगे) एक दूसरे को रोकेंगे, भिड़ेंगे। जूझहिंगे=जख्मी होंगे, जूझ जायँगे, मरेंगे।

भावार्थ—(अथवा) भूमि ने यह समझ कर कि यहाँ क्षत्री गण भिड़कर युद्ध करेंगे और वीरता पूर्वक रणमें सन्मुख मार करते हुए प्राण त्यागेंगे, अतः ठौर ठौर पर उनके स्वर्गारोहण के लिये नवीन सड़कें तैयार कर दी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा

मूल—तोटकछंद—

रहि पूरि विमानन व्योमथली। तिनको जनु टारन भूमि छाँवी॥
परिपूरि अकासहिं धूरि रही। सु गयो मिटि सूरप्रकास सही॥

मूल—दोहा—अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रवि भगवंत।
यहै जानि अन्तर कियो मानो महीं अनंत॥ २२॥

भावार्थ—अपने वंशधरों का पारस्परिक कलह सूर्य भगवान कैसे देख सकेंगे, इसी विचार से मानो पृथ्वी ने सूर्य के मुख पर धूल का पर्दा डाल दिया है (बड़ी अनोखी उक्ति है)।

मूल—तोटकछंद—

बहु तामहँ दीह पताक लसैं। जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसैं।
रसना किधौं काल कराल घनी। किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी॥

भावार्थ—उस उड़ती हुई धूल में अनेक पताकाएँ फहराती हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो धूम में अग्नि की ज्वालाएँ हैं। अथवा कराल काल की अनेक जीभें हैं, या अनेक रूप धारण किये हुए मृत्यु ही जहाँ तहाँ घूम रही है।

सूचना—ऐसे समय में इस वर्णन में ये उत्प्रेक्षाएं हमें समुचित नहीं जँचतीं। न जाने केशव ने इन्हें क्यो यहाँ स्थान दिया है? इसमें केवल सूखा पांडित्य प्रदर्शन ही प्रधान है। कैसा समय और कैसा प्रसङ्ग है, इसका ध्यान कुछ भी नहीं। वास्तविक युद्धस्थल में ऐसा वर्णन उपयुक्त हो सकता था।

मूल—दोहा—देखि भरत की चल ध्वजा धूरिन में सुख देति।
युद्ध जुगल को मनहुँ प्रति-योधन बोले लेति॥ २४॥

शब्दार्थ— प्रतियोधा=प्रतिभट, शत्रु, विरोधी दल का योद्धा।

भावार्थ—उड़तीहुई धूल में भरत के दल की चंचल ध्वजाएँ ऐसी शोभा दे रही हैं मानो युद्ध करने के लिये शत्रुपक्ष के योद्धाओं को इशारा दे दे कर बुला रही हैं

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

नोट—इस दोहे के तीसरे चरण में यतिभंग दूषण है।

मूल—(लक्ष्मण)—दंडक छंद—मारिडारौं अनुज समेत यहि खेत आजु मेटि पारौं दीरघ बचन निज गुर को। सीता-नाथ सीता साथ बैठे देखि छत्र तर, यहि सुख सोखौं सोक सब ही के उर को॥ केसोदास सविलास बीसविसे बास होय कैकेयी के अंग अंग सोक पुत्रजुर को। रघुनाथ जू को साज-सकल छिड़ाइ लेउं भरतहिं आजु राजु देउं प्रेतपुर को॥२५॥

शब्दार्थ—अनुज=शत्रुघ्न। मेटि पारौं=मेटदूंगा। सविलास=विलासपूर्वक अर्थात भलीभांति। बीस विसे=निश्चय। पुत्र जुर=पुत्रमरण का संताप। प्रेतपुर=यमपुर। रघुनाथ जू को साज=सारा राज साज (हाथी, घोड़े, झंडे, निशान, सेना, कोश इत्यादि राजवैभव जो इस समय भरत के पास है)।

अलंकार—प्रतिज्ञा बद्ध स्वभावोक्ति (देखो अलंकार मंजूषा पृष्ठ २१८)।

मूल—दोहा—एक राज महँ प्रगट जहँ द्वै प्रभु केशवदास।
तहां बसत है रैनि दिन मूरतिवंत विनास॥ २६॥

मूल—कुसुम विचित्रा छंद—,

तब सब सेना वहि थल राखी। मुनि जन लीन्हे सँग अभिलाषी॥

रघुपति के चरनन सिर नाये। उन हँसि कै गहि कंठ लगाये॥

शब्दार्थ—अभिलाषी=अभिलषित, अपने पसंद के, चुने हुए (यह शब्द 'मुनि जन' का विशेषण है)।

मूल—(भरत) दोधक छंद—

मातु सबै मिलिबे कहँ आई। ज्यों सुत को सुरभी सु-लवाई॥
लछमण स्यों उठिकै रघुराई। पायन जाय परे दोउ भाई॥ २८॥

शब्दार्थ—सुरभी=गाय। लवाई=सद्य प्रसूता, जो अभी बच्चा जनी हो। स्यों=सहित।

मूल—दोधक—

मातनि कंठ उठाय लगाये। प्रान मनो मृत देहनि पाये।
आय मिली तब सीय सभागी। देवर सासुनके पगलागी॥२९॥

मूल—तोमर-तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम ते उठी सब रोइ॥ ३०॥

मूल—दोधकछंद—

आँसुन सों सब पर्वत धोये। जंगम को जड़ जीवहु रोये।
सिद्ध वधू सिगरी सुनि आई। राजवधू सबई समुझाई॥३१॥

शब्दार्थ—जंगम=चर जीव। जड़=अचर जीव (वृक्ष, पाषाण आदि) सिद्ध वधू=सिद्धि प्राप्त तपस्वियों की स्त्रियां। राजवधू=दशरथ की रानियां।

मूल—मोहन छंद—धरि चित्त धीर। गये गंग तीर।
शुचि ह्वै शरीर। पितु तर्पि नीर॥ ३२॥

शब्दार्थ—गंग=मंदाकिनी गंगा जो चित्रकूट में हैं। तर्पि नीर=जल देकर, तर्पण करके, तिलांजलि देकर।

मूल—(भरत) तारक छंद—

घर को चलिये अब श्री रघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई
यह बात कही जल सों गल भीनो। उठि सोदर पाँय परे तब तीनो

शब्दार्थ—हौं=मैं। राज=राजा। जलसों गल भीनो= कंठ-गद्गद् हो आया, आगे बात न कर सके (यथा—गदगद कंठ न कछु कहि जाई—तुलसी)।

मूल—(श्रीराम)—दोधकछंद—

राज दियो हमको वन रूरो। राज दियो तुम को परिपूरो॥
सो हम हूं तुम हूं मिलि कीजै। बाप को बोल न नेकहु छीजै॥३४॥

भावार्थ—राजा ने हमको वन का वास दिया है, और तुम को पूरा राज्य दिया है। अतः तुम को और हमको मिल कर वही बात करनी चाहिये जिससे पिता जी के वचन भंग न हों।

मूल—दोहा—राजा को अरु बाप को वचन न मेटै कोइ।
जो न मानिये भरत तो मारे को फल होइ॥ ३५॥

शब्दार्थ—फल=पाप।

मूल—(भरत)—स्वागता छंद—

मद्यपान रत तिय जित होई। सन्निपातयुत बातुल जोई।
देखि देखि जिन को सब भागै। तासु बैन हनि पाप न लागै॥३४॥

शब्दार्थ—तियजित=स्त्रीके वशीभूत। बातुल=बहुत व्यर्थ बकवादी। देखि देखि.....भागै=महापापी, घृणित। तासु बैन हनि=उसका वचन मेटने में।

भावार्थ—(भरतजी नीतिवचन कहते हैं) जो शराबी हो

स्त्री के वशीभूत हो (स्त्री की सम्मति पर चलता हो), सन्निपात में प्रलाप करता हो, व्यर्थ बकवादी हो और जो महापापी हो, उसका वचन मेटने में पाप नहीं लगता—(चाहे वह राजा हो चाहे बाप हो)।

मूल—

ईश ईश जगदीश बखान्यो। वेदवाक्यबल तें पहिचान्यो।
ताहि मेटि हठ के रजिहौं जौ। गंग तीर तन को तजिहौं तौ ३७

शब्दार्थ—ईश=महादेव। ईश=विष्णु। जगदीश=ब्रह्मा। रजिहौं=मुझसे राज काज कराओगे। गंग=मंदाकिनी नदी जो चित्रकूट में है जिसे सब लोग मंदाकिनी गंगा कहते हैं।

भावार्थ—(भरत जी कहते हैं) जो नीति मैंने ऊपर कही है, वह मेरी गढ़ी नीति नहीं है, वह ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के वचन हैं। विद्या बलसे मैंने उन वाक्यों को पहचाना है (वेद में ऐसाही लिखा है और मैंने पढ़ा है)—महादेव, ब्रह्मा तथा विष्णु के वचनों से बढ़कर तो राजा और बाप के वचन माने नहीं जा सकते अतः यदि आप उन त्रिदेवों के वचन मेट कर हठपूर्वक मुझसे राज्य करावेंगे, तो मैं यहीं चित्रकूट में मंदाकिनी गंगा के किनारे शरीर त्याग कर दूंगा।

मूल—दोहा—मौन गही यह बात कहि छोड़ो सबै विकल्प।
भरत जाय भागीरथी तीर कर्यो संकल्प॥ ३८॥

शब्दार्थ—विकल्प=विचार। भागीरथी=(गंगा) यहाँ—मंदाकिनी गंगा।

भावार्थ—यह बात कह कर भरत जी चुप हो रहे, अन्य सब विचार (अर्थात और अधिक तर्क वितर्क करने का विचार) छोड़ दिया और मंदाकिनी गंगा के तीर जाकर शरीर त्यागने का संकल्प किया।

मूल—इन्द्रवज्रा— ⊗

भागीरथी रूप अनूप कारी। चंद्राननी लोचन कंज धारी।
वाणी बखानी सुख तत्व सोध्यो। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो॥

शब्दार्थ—सुखतत्व=सुखका मूल सिद्धान्त (राम रजाय मानना) जिससे सब को सुख होगा।

भावार्थ—अनुपम रूप धारण करनेवाली मंदाकिनी गंगा जीने चंद्रवदनी और कमल लोचनी स्त्री का रूप धारण कर सुख-तत्व की बात शोधकर (संक्षेप में) रामानुज भरत को समझा कर प्रबोध कर दिया, जिससे सब को सुखहो।

मूल—(गंगा) उपेन्द्रवज्रा छंद— ⊗

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो। अनेकधा वेदन गीत गायो॥
तिन्हें न रामानुज बंधु जानो। सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानो४०

भावार्थ—जिनका अंत (सच्चा भेद) अनेक ब्रह्माओं ने नहीं पाया, जिनकी प्रशंसा वेद ने अनेक प्रकार से की है, उन को (रामको) हे रामानुज भरत ! तुम अपना भाई न समझो (बड़ा भाई ही समझ कर ही जो तुम्हें ऐसा मोहजनित संकोच हो रहा है उसे छोड़ो) हे बुद्धिमान भरत ! सुनो, इस समय तुम उन्हें (भाई न मानकर) केवल ब्रह्म ही मानो।

मूल—निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्म संहारक धर्म चारी।
चले दशग्रीवहि मारिबे को। तपी व्रती केवल पारिबे को॥४१॥

शब्दार्थ—निजेच्छया=अपनी इच्छासे। पारिबेको=पालन करने को।

भावार्थ—उन्होंने अपनी इच्छासे पृथ्वीमें नर शरीर धारण किया है। वे अधर्मके संहारक और धर्मका प्रचार करनेवाले हैं। वे रावण को मारने के लिये और रावणको मारकर तपस्वियों तथा व्रतधारियों का पालन करने के लिये वन को जा रहे हैं (उनके इस कार्य में तुम अपनी हठद्वारा विघ्न न डालो)।

मूल—
उठो हठी होहु न,काज कीजै। कहैं कछू राम सो मानि लीजै।
अदोष तेरी सुत मातु सोहै। सो कौन,माया इनकी न मोहै॥४२

भावार्थ—उठो, हठ मत करो बल्कि उनका काम करो। (उनके काम में सहायक हो) जो कुछ राम जी कहें उसे मान लो। हे पुत्र! तेरी माता बिल्कुल निर्दोष है (इसका संकोच न करो)। ऐसा कौन है जो इनकी माया के फेर में न पड़ा हो, अर्थात् इन्हीं की माया से तुम्हारी माता ने यह दोष (वनवास दिलवाने का) अपने सिर लिया है, नहीं तो वह तो नितान्त निर्दोष है।

मूल—दोहा—यह कहि के भागीरथी, केशव भई अदृष्ट।
भरत कह्यो तब राम सों, देहु पादुका इष्ट॥४३॥

शब्दार्थ—अदृष्ट भई=अन्तर्धान हो गई। इष्ट=पूज्यदेव

उन सब पुण्य कर्मों के फल हमने राम दर्शन के रूपमें आज पा लिया (धन्य है हमारा भाग्य) ।

मूल—वंशस्थविलम् छंद—अनेक धा पूजन अत्रि जू कर्‍यो ।
कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथ जू धर्‍यो ।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

भावार्थ—अत्रि जी ने श्री राम जी का अनेक प्रकार से सत्कार किया (आदरपूर्वक फल मूलादि दिये) और श्रीराम जी ने कृपापूर्वक सब वस्तुएँ ग्रहण कीं (स्वीकार कीं) । तब (भोजनादि से निवृत्त होकर) सुन्दर बुद्धिवाली और सर्व सुखों की देनेवाली (लक्ष्मी स्वरूपा) सीता महर्षि अत्रि जी की पतिव्रता स्त्री अनुसूया के पास गईं ।

मूल—दोहा—पतिव्रतन की देवता अनुसूया शुभगाथ ।
सीता जू अवलोकियो जरा सखी के साथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—देवता=देवी (पूजनीया) । शुभगाथ=प्रशंसनीय आचरणवाली ।

सूचना—केशव ने 'देवता' शब्द इसी पुस्तकमें कई जगह स्त्रीलिंग में लिखा है ।

भावार्थ—(निकट जाने पर) पतिव्रता स्त्रियों से समादरणीया, देवीस्वरूपा, प्रशंसनीय आचरणवाली श्री अनुसूया जी को सीता जी ने जरावस्थारूपी सखी के साथ देखा अर्थात

ग्यारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—एकादशें प्रकाश में पंचबटी को वास।
सूर्पणखा के रूप को रघुपति करिहैं नास॥

मूल—रथोद्धता छंद—

चित्रकूट तब राम जू तज्यो। जाय यज्ञथल अत्रि को भज्यो।
राम लक्ष्मण समेत देखियो। आपनो सफल जन्म लेखियो॥१॥

शब्दार्थ—भज्यो=प्राप्त हुए, पहुँचे।

भावार्थ—(भरत के चले जाने पर) तब रामजीने चित्रकूट पर्वत का निवास छोड़ आगे को बढ़े और जाकर अत्रि के आश्रम में पहुँचे। जब अत्रिऋषि ने श्री रामलक्ष्मण को अपने आश्रम में आया हुआ देखा तब अपना जन्म जीवन सफल माना।

अलंकार—हेतु (प्रथम)।

मूल—(अत्रि) चन्द्रवर्त्म छंद—ज्ञान दान तप जाप जो करियो। सोधि सोधि उर मांझ जु धरियो। जोग जाग हम जा लगि गहियो। रामचन्द्र सब को फल लहियो॥ २॥

भावार्थ—(अत्रि जी अपने भाग्य की सराहना करते हैं) स्नान दान, जप तप जो कुछ हमने किया, बड़े परिश्रम और शुद्धता से जिसे हमने हृदय में धारण किया है (ईश्वर का ध्यान किया है), जोग और यज्ञादि जिसके लिये किये हैं,

उन सब पुण्य कर्मों के फल हमने राम दर्शन के रूपमें आज पा लिया (धन्य है हमारा भाग्य) ।

मूल—वंशस्थविलम् छंद—अनेक धा पूजन अत्रि जू कन्यो । ⊗
कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथ जू धन्यो ।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

भावार्थ—अत्रि जी ने श्री राम जी का अनेक प्रकार से सत्कार किया (आदरपूर्वक फल मूलादि दिये) और श्रीराम जी ने कृपापूर्वक सब वस्तुएँ ग्रहण कीं (स्वीकार कीं) । तब (भोजनादि से निवृत्त होकर) सुन्दर बुद्धिवाली और सर्व सुखों की देनेवाली (लक्ष्मी स्वरूपा) सीता महर्षि अत्रि जी की पतिव्रता स्त्री अनुसूया के पास गईं ।

मूल—दोहा—पतिव्रतन की देवता अनुसूया शुभगाथ । ⊗
सीता जू अवलोकियो जरा सखी के साथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—देवता=देवी (पूजनीया) । शुभगाथ=प्रशंसनीय आचरणवाली ।

सूचना—केशव ने 'देवता' शब्द इसी पुस्तकमें कई जगह स्त्रीलिंग में लिखा है ।

भावार्थ—(निकट जाने पर) पतिव्रता स्त्रियों से समादरणीया, देवीस्वरूपा, प्रशंसनीय आचरणवाली श्री अनुसूया जी को सीता जी ने जरावस्थारूपी सखी के साथ देखा अर्थात अत्यंत जरावस्था में देखा ।

मूल—चवपैया छंद (३० मात्रा का १०, ८, १२ पर विराम)
सिर सेत विराजै, कीरति राजै, जनु केशव तपबल की।
तनु वलित पलित जनु, सकल वासना, निकरि गई थल थल की।
कांपति सुभ ग्रीवाँ, सब अँग सीवाँ, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति, यह उपदेशति, या जग में कछु नाहीं ॥९॥

शब्दार्थ—वलित पलित=झुर्रियां पड़ी हुई। ग्रीवाँ=गर्दन। सीवाँ=सीमा, हद (सौन्दर्य की सीमा)।

भावार्थ—सिर के सब बाल सफेद हो गये हैं, मानो तपस्या की कीर्ति सिर पर विराज रही है, सारे शरीर में झुर्रियां पड़ी हुई हैं (जरावस्था के कारण त्वचा सिकुड़ गई है) मानो प्रति अंग की वासनाएं निकल गई हैं (और उनका स्थान खाली पड़ा है)। उनकी सुन्दर गर्दन कंपायमान है (जो गर्दन पहले युवावस्था में सुन्दरता के सब अंगों की सीमा थी अर्थात अत्यन्त सुन्दर थी)—उस कंप को देख कर देखने वाले का चित्त भूल में पड़जाता है (कि यह क्या ?)—यह गर्दन का हिलना ऐसा जान पड़ता है मानो अनुसूया जी अपने मन को यह उपदेश देती हैं कि इस जग में कुछ सार नहीं है—(जरावस्था में सिर इस तरह हिलने लगता है जैसे 'नाहीं' करने में हिलाया जाता है—इसी से ऐसी उत्प्रेक्षा की गई)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—प्रमिताक्षरा छंद—

हरुवाइ जाय सिय पाँय परी। ऋषिनारि सूंघिसिर गोद धरी।
बहु अंगराग अँग अंग रये। बहु भांति ताहि उपदेश दये ॥६॥

शब्दार्थ—हरुवाइ=जल्दी से, शीघ्रता युक्त। सूंघि सिर=सिर सूंघकर (आशीर्वाद देने की प्राचीन चाल थी)। अंगराग= महावर, मेंहदी, सिंदूर, अर्गजा, केशर, कस्तूरी चंदनादि के लेप जो भिन्न २ अंगो में लगाये जाते हैं। प्रचीन काल में सौभाग्यवती स्त्री का सन्मान सिंगार करके ही किया जाता था अब भी कोंछ डाल कर सौभाग्यवती स्त्री का सम्मान किया जाता है। बहु अंगराग अँग अंग रये=अनेक प्रकार के अंग-रागों को लगा कर अनुसूया जी ने जानकी जी का सिंगार रचकर उनका सम्मान किया।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—स्रग्विनी छंद—राम आगे चले मध्य सीता चली। बंधु पाछे भये सोभ सोभै भली। देखि देही सबै कोटिधा के भनो। जीव जीवेश के बीच माया मनो ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—देही=देहधारी जन। कोटिधाकै=अनेकप्रकार से। भनो=वर्णन किया। जीवेश=ईश्वर, ब्रह्म।

भावार्थ—अत्रि के आश्रम को छोड़ जब आगे चले तब श्री-राम जी आगे हुए, बीचमें जानकी जी हुई और पीछे लक्ष्मण जी हुए। इन तीनो पथिकों की बड़ी ही सुन्दर शोभा हुई, जिसे देख कर सब मनुष्यों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया।

केशव कहते हैं कि मुझे तो ऐसा जान पड़ा मानो ईश और जीव (दोनों) बीच में माया को किये हुए सफर कर रहे हों।

सूचना—यहां पर केशव को अनेक उपमायें देना चाहिये था सो चूक गये हैं।

गो० तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है।

आगे राम लखनपुनि पाछे। मुनिवर वेष बने अति आछे।
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मालतीछंद—

विपिन विराध बलिष्ट देखियो। नृप तनया भयभीत लेखियो।
तब रघुनाथ बाण के हयो। निज निरवाण पंथ को ठयो॥८॥

शब्दार्थ—नृप तनया=सीता। हयो=हन्यो, मारा। निज.....ठयो=उसके लिये अपने निर्वाण पद का मार्ग तैयार कर दिया अर्थात् उसे मुक्ति दी। बाण के हयो=बाण करके मारा, बाण से मारा।

भावार्थ—सरल ही है।

मूल—दोहा—रघुनायक सायक धरे सकल लोक सिर मौर।
गये छपा करि भक्ति बस ऋषि अगस्त के ठौर॥९॥

शब्दार्थ—सिरमौर=शिरोमणि। ठौर=स्थान, आश्रम।

मूल—वसंत तिलका—श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य समीप देख्यो।
स्वाहा समेत शुभ पावक रूप लेख्यो॥
साष्टांग क्षिप्र अभिवंदन जाय कीन्हो।
सानन्द आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो॥१०॥

शब्दार्थ—सनारि=स्त्रीसहित (अगस्त्यकी स्त्री का नाम 'लोपामुद्रा' था)। स्वाहा=अग्नि की स्त्री का नाम। साष्टांग= आठो अंगों को पृथ्वी से छुवाते हुए (दोनों हाथ, ललाट और नाक, पैर की दोनों गांठें और पैर के दोनो अँगूठे)।

भावार्थ—श्री राम लक्ष्मण ने आश्रम में जाकर सस्त्रीक अगस्त जी के दर्शन किये और उस युगल जोड़ी को स्वाहा और अग्नि देव के समान समझा। शीघ्रतापूर्वक निकट जाकर साष्टांग दंडवत की और ऋषिवर ने आनंदित होकर सब प्रकार के आशीर्वाद दिये।

मूल—बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे। सीता समेत रघुनाथ सबंधु पूजे। जाके निमित्त हम यज्ञ यज्यो सु पायो। ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जु बेद गायो॥ ११॥

शब्दार्थ—यज्ञ यज्यो=यज्ञ किये।

भावार्थ—अगस्त्य जी ने सीता लक्ष्मण समेत श्री रघुनाथ जी को सुन्दर आसनों पर बैठाल कर सादर उनका पूजन किया और अपनी समस्त अभिलाषा पूर्ण कर ली (अपने सब अर्मान पूरे कर लिये, तब कहने लगे कि) समस्त ब्रह्मांड को विभूषित करने वाला रूप जिसका वर्णन वेद करता है और जिससे मिलने के लिये हमने अनेक यज्ञ किये हैं उसे आज हमने पालिया।

मूल—(अगस्त्य)पद्धटिका छंद—

ब्रह्मादि देव जब बिनय कीन। तट छीर सिंधु के परम दीन॥

तुम कह्यौ देव अवतरहु जाय। सुत हौं दसरथ को होय आय।

भावार्थ—जब ब्रह्मादि देवों ने अति दीन हो क्षीर सिंधु के तट पर विनय की थी तब आपने कहा था कि हे देवगण तुम सब जाकर पृथ्वी पर अवतार लो, मैं भी आकर राजा दशरथका पुत्र हूँगा।

मूल—हम तबते मन आनन्द मानि। मग चितवत बन आगमन जानि। ह्यां रहिये करिये देव काजु। मम फूलि फल्यौ तपवृक्ष आजु॥ १३॥

शब्दार्थ—मग चितवत=बाट जोह रहे हैं।

भावार्थ—हम तभी से आनंदित मन हो कर आपके वनागमन की बाट जोह रहे हैं। भले आये, अब यहाँ रहिये और देवताओं का काम कीजिये, आज तो मेरा तपवृक्ष फूल कर सफल होगया (तपस्या सफल हुई)।

अलंकार—रूपक।

मूल—(राम)—पृथ्वी छंद-

अगस्त ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनो।

[illegible]

शब्दार्थ—प्रशस्त=अच्छा। सुदेश=समतल, बराबर। जीमें गुनो=सोच कर हमको बतलाओ। सनीर=जलयुक्त। तरु-खंड मंडित=वृक्ष समूह से सुशोभित। समृद्ध शोभा धरें=खूब बड़ी शोभा को धारण किये हों, खूब सुहावने हों।

ावार्थ—हे अगस्त जी, मेरी एक विनती सुनिये। सोच कर हमें एक ऐसा अच्छा सुन्दर स्थान बतलाइये जहाँ जल का सुपास हो और सुहावने वृक्ष कुंज हों, तो वहीं हम अपने हने के लिये पत्तों की कुटी बना लें।

ल—(अगस्त) पद्मावतीछंद—

ाद्यपि जग करता, पालक हरता, परिपूरण वेदन गाये।
ति तदपि कृपाकरि, मानुष वपुधरि, थल पूछन हमसों आये।
ुनि सुरवर नायक, राक्षस घायक, रक्षहु मुनि जन जस लीजै।
ुभ गोदावरि तट, विशद पञ्चवट, पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै।

ब्दार्थ—वपु=शरीर। विशद=खूब लम्बा चौड़ा। पञ्चवट= पञ्चवट नामक वन जहाँ पर कि पञ्चवट संज्ञक वृक्ष बहुतायत से थे।

चना—पञ्चवट=वट, पीपल, आमला, अशोक, और बेल।

ावार्थ—(अगस्तजी कहते हैं) यद्यपि आप जगत के कर्ता, पालक और संहारक हैं, और वेदों ने तुम्हें परिपूर्ण (सर्वज्ञ) बतलाया है, तथापि बड़ी कृपा करके आप मनुष्य शरीर धारण करके (मानवभावसे) हमसे स्थान पूछने आये हैं। अतः हे सुरों के श्रेष्ट नायक! हे राक्षसों के संहारक! मुनियों की रक्षा करके सुयश लीजिये, सुंदर गोदावरी नदी के तट पर खूब लंबा चौड़ा पंचवट नामक वन है, उसी वन में आप अपनी पर्णशाला बनाइये।

मूल—दोहा—केशव कहै अगस्त के, पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचन्द्र रणधीर॥ १६॥

शब्दार्थ—पंचवटी के तीर=उस वन के एक तट पर (उस वन के मध्य में नहीं)।

(पंचवटी वन-वर्णन)

मूल—त्रिभंगीछंद—
फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल कुल कल रव, बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पिय रस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित, गुन गन मंडित, भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं॥१७॥

शब्दार्थ—कल रव=धीमी आवाज जो कानों को कर्कश न जान पड़े जैसे पंडुक की होती है। सारी=शारिका, मैना। भावनि मय=प्रेमभावमय। सहायक=लक्ष्मण जी। मधु=वसंत।

भावार्थ—(उस उजाड़ दंडकारण्य के पंचवट भाग को राम जी के जाते ही यह अवस्था प्राप्त हुई) वहाँ के सुन्दर सुन्दर वृक्ष फल फूलों से परिपूर्ण होगये, कोकिल समूह मन्द मधुर शब्द से गाने लगा, मोरनियाँ दाम्पत्यरस से पूर्ण हो कर वनों में नाचते फिरने लगीं, शारिका और सुग्गे बड़े गुणी पंडित की भाँति (कोकिलके गान और मयूरिनियों के नाच का) भावमय अर्थ बताने लगे—उनकी प्रशंसा करने लगे। उस वन के वनवासी जीवों ने श्रीराम जी को, सीता और लक्ष्मण समेत देखकर,

ते और बसंत के साथ काम देव समझा ।

ंकार—उत्प्रेक्षा ।

ग—(लक्ष्मण)—सवैया—

व जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी ।
घटी रुचि मीचु घटी हू घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी ।
घ ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।
हुँओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी वन पंचवटी ॥१८॥

ब्दार्थ—दुपटी=चादर । घटी=घड़ी । निघटी=निश्चय
ट गई । रुचि=इच्छा । घटी हू घटी=प्रति घड़ी । तटी=
यानस्थिति, समाधिस्थिति । निकटी=इसके निकट आते ही ।
रु ज्ञान गटी=भारी ज्ञान की गठरी । गुन=(गुण) समान
गुणवाला । धूरजटी=महादेव ।

ावार्थ=(लक्ष्मण जी कहते है कि) यह पंचवटी नामक
न तो शिव के से गुणवाला है, (जैसे शिव के दर्शनों से
दुःख नहीं रहता वैसे ही) यहाँ दुःख की चादर फट जा-
ती है, और कपटी पुरुष यहाँ एक घड़ी भी नहीं रह सकता—
यहाँ एक घड़ी मात्र रहने से कपटी पापी मनुष्य का भाव
बदलकर धर्म की ओर झुकेगा । यहाँ के निवासी जीवों की
तो प्रतिघड़ी मृत्यु की इच्छा घटती है (यहाँ का शान्तिमय
सुख भोगने की इच्छा से, यहाँ के निवासी मरकर मुक्ति भी
नहीं लेना चाहते, अर्थात मुक्ति के आनन्द से यहां का
आनन्द बढ़कर है) । यहां के यती लोगों (तपस्वीगण) की

समाधि-अवस्था छूट जाती है (समाधि-अवस्था में जो ब्रह्मानंद प्राप्त होता है, उससे भी बढ़कर यहां का आनन्द है)। पाप की विकट बेड़ी यहां कट जाती है और तुरंत ही भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है (इसके निकट आतेही पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है) और यहाँ तो मुक्ति चारों ओर नटी के समान नाच रही है, अतः यह पंचवटी वन शिव के से गुणों से युक्त है (शिव के दर्शन वा समागम से जैसी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं वैसी ही इस वन के समागम से भी होती हैं)।

अलंकार—अनुप्रास, यमक, और ललितोपमा।

सूचना—'हृदयराम' कवि ने भी हनुमन्नाटक में, पंचवटी के वर्णन में ऐसे ही दो तीन सवैया लिखे हैं।

(दंडकवन-वर्णन)

मूल—हाकलिका छंद*—

शोभत दंडक की रुचि बनी। भांतिन भांतिन सुन्दर घनी॥
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भयो जहँ बसै॥१७

शब्दार्थ—दंडक=एक वनका नाम (दंडक नाम का एक राजा था। शुक्राचार्य उसके गुरु थे। गुरुपुत्री पर कुदृष्टि डालने के अपराध में शुक्र के शाप से उसके देशपर सात रात-दिन तक

* इस छंद का लक्षण-भगन तीन धरिये सुभग, पुनि लघु गुरु हि मिलाइ।
हाकलिका शुभ छंद रचि केशव हरि गुण गाइ।

बराबर गर्म बालू बरसी। देश उजड़ गया। वही देश दंडक वन कहलाता था। पंचवटी नामक वन उसी दंडक वन का एक भाग था। श्रीराम जी के चरणों के प्रताप से वह वन पुनः हरा भरा हो उठा था)। रुचि=शोभा। सेव=सेवा। श्रीफल= (१)बेलकावृक्ष(२)भोग विलासप्रद वैभव।

भावार्थ—दंडक वन की शोभा पुनः वन ठन कर शोभित हुई, अनेक प्रकार की घनी सुन्दरता आगई। वह शोभा ऐसी मालूम होती थी मानो किसी बड़े राजा की सेवा (चाकरी) हो, क्यों कि जैसे राजा की सेवा में श्रीफल (लक्ष्मीका-वैभव) भूरिभाव से बसता है वैसेही उस वन में भी श्री फल (बेल फलों) की अधिकता थी।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—बेर भयानक सी अति लगै। अर्क समूह जहाँ जग मगै। नैनन को बहु रूपन ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै॥२०॥

शब्दार्थ—अति भयानक बेर=प्रलयकाल (अत्यन्त भयानक वेला)। अर्क=(१)सूर्य(२)मंदार का वृक्ष।

भावार्थ—वह दंडक की शोभा प्रलयकालकी सी वेला जान पड़ती है, क्योंकि (जैसे प्रलयकाल में अनेक सूर्य प्रचंड तेज से जगमगायेंगे, त्योंही यहाँ भी) मंदारवृक्ष समूह जगमगा रहे हैं (मंदार वृक्ष खूब फूले हुए हैं)। दंडक वन की शोभा अनेक रूप से नेत्रों को पकड़ लेती है (नेत्रों की

टकटकी लग जाती है) मानो श्री हरि की मूर्ति ही है—अर्थात् जैसे श्रीहरि की मूर्ति का सौन्दर्य देखते आँख तृप्त नहीं होती वैसे ही इस वन की शोभा देख देख नेत्रों को संतोष नहीं होता, जी चाहता है कि देखा ही करें।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—(राम) दोधक छंद—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर औ तिलकावलि रूरी ॥२१॥

शब्दार्थ—पांडव=पंडु राजा के पुत्र (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) प्रतिमा=मूर्ति। अर्जुन=(१)तृतीय पांडव (२)अर्जुन नामक वृक्ष जिसे ककुभ भी कहते हैं। भीम=(१) द्वितीय पांडव(२)अम्लवेत नामक वृक्ष। महामति=बुद्धिमान (लक्ष्मण प्रति संबोधन है)। सुभगा=सौभाग्यवती स्त्री। दीपति=(दीप्ति) काति, शोभा। सिंदुर=(१)सिंदूर(२)सिंदुर नामक एक वृक्ष। तिलक=(१)मकरीपत्र रचना (प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपने मुखपर चमकी वा सितारों तथा सेंदुर से अनेक चित्रवत रचनाएँ करती थीं। अब केवल रामलीला में वा रामलीला में मूर्तियों का वैसा सिंगार होता है। साधारण स्त्रियाँ केवल सेंदुर से मांग भरती हैं) (२)तिलक नामक वृक्ष। रूरी=अच्छी, शोभाप्रद।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी की उत्प्रेक्षाएँ सुनकर श्रीराम जी

कहते हैं) हे बुद्धिमान लक्ष्मण ! देखो यह वन पांडवों की मूर्ति सा है, क्योंकि यहां भी अर्जुन (ककुभ) और भीम (अम्लवेतस) मौजूद हैं। और इस वन की शोभा किसी सौभाग्यवती स्त्री की सी भी है, क्योंकि (जैसे सौभाग्यवती स्त्री सिंदूर और चित्रित तिलकों से सजी रहती हैं वैसेही) यहाँ भी सिंदूर और तिलक वृक्षों की अवली शोभा दे रही है।

लंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

चना—इस छन्द में राम जी के मुख से पांडवो का वर्णन कराना उचित न था। रामके समय तक तो पांडव पैदा ही न हुए थे। इसे काव्य के दोषों में से अर्थ-दोषान्तर्गत काल-विरुद्ध दोष कहना होगा।

ूल—(सीता) दोधक छंद—

राजति है यह ज्यों कुलकन्या। धाइ विराजति है सँग धन्या।
केलिथली जनु श्री गिरिजा की। शोभ धरे सितकंठ प्रभा की २२॥

ाब्दार्थ—कुलकन्या=किसी अच्छे कुलीन घर की कन्या। धाइ=(१) बच्चों का पालनपोषण करने वाली स्त्री, दाई, (२)धवई नामक झाड़। धन्या=पूज्या, समादरणीया। केलि-थली=केलिका स्थान। गिरिजा=पार्वती। सितकंठ=(१)मयूर(२) महादेव।

ावार्थ—(सीताजी कहती हैं) इस वन की शोभा एक कुलकन्या के समान है। जैसे कुलकन्याओं के संग सदैव

उपमातास्तना (दूध पिलानेवाली) पाई रहती है, वैसे ही यहाँ भी समादरणीय धायवृक्ष (धवा) विराजते हैं। और इस वन की शोभा मानो पार्वती जी की केलिस्थली है क्योंकि जैसे उनकी केलिस्थली में महादेवजी (शितकंठ) रहते हैं वैसे ही यहाँ भी (शितकंठ) मयूर रहते हैं।

अलंकार—लेष से पुष्ट उपमा और उत्प्रेक्षा।

सूचना—केशव की प्रतिभा की उचित योजना यहाँ उचित मात्रा में दिखलाई पड़ती है। इस दंडकवन वर्णन में लक्ष्मण जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे लक्ष्मण का वीरत्व और धैर्य प्रकट होता है और राम जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे शृंगार की आभा झलकती है। सीता से त्रियोचित उत्प्रेक्षा कराई हैं। कारण यह है कि लक्ष्मणजी यहाँ पर अपत्नीक तथा राम जी सपत्नीक हैं। लक्ष्मण के चित में निर्भयता, धैर्य और वीरत्व होना चाहिये और राम जी के हृदय में जानकी जी के मनोरंजनार्थ शृंगार की कुछ न कुछ आभा होनी ही चाहिये नहीं तो आगे विरह वर्णन शोभा न देगा। सीता की उक्ति भी पवित्रता तथा सिंगार सूचक है क्योंकि पति का मनोरंजन करना है।

(गोदावरीवर्णन)

मूल—(राम) मनहरन

* यह केशव का निकाला पाप-

संहारिणी। चल तरँग तुंगावली चारु संचारिणी॥ अलि कमल सौगन्ध लीला मनोहारिणी। बहु नयन देवेश-शोभा मनोधारिणी॥ २३॥

शब्दार्थ—चल=चंचल। तुंग=ऊँची। सौगंध=सुगंध। देवेश=इन्द्र।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हमारी पर्ण कुटी के अति निकट ही पाप-नाशिनी गोदावरी नदी भी है, जो चंचल और ऊँची तरंगों की सुन्दर पंक्तियों सहित सदा बहती रहती है तथा भौंरों सहित सुगंधित कमलों की लीला से मन को हरती है। ऐसा जान पड़ता है मानो यह गोदावरी बहुलोचन इन्द्र की शोभा धारण किये हुए है (जैसे इन्द्र के शरीर में बहुत से नेत्र हैं वैसे ही इस गोदावरी में भ्रमरयुक्त असंख्य कमल हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोधकछंद—

रीति मनो अविवेक की थापी। साधुन की गति पावत पापी।
कंजज की मति सी बड़भागी। थी हरिमंदिर सों अनुरागी॥२४॥

शब्दार्थ—कंजज=ब्रह्मा। हरि-मंदिर=(१) बैकुंठ (२) समुद्र (क्षीर समुद्र)।

भावार्थ—इस गोदावरी ने अविवेक की सी रीति चलाई है कि पापी भी साधुओं की गति पाता है (जो पापी स्नान करता है वह बैकुंठ को जाता है)। यह गोदावरी बड़भागी ब्रह्माकी मति के समान श्रीहरि-मंदिर (बैकुंठ वा समुद्र)

उपमातास्तना (दूध पिलानेवाली) दाई रहती है, वैसे ही यहाँ भी समादरणीय धायवृक्ष (धवा) विराजते हैं। और इस वन की शोभा मानो पार्वती जी की केलिस्थली है क्योंकि जैसे उनकी केलिस्थली में महादेवजी (शितकंठ) रहते हैं वैसे ही यहाँ भी (शितकंठ) मयूर रहते हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा और उत्प्रेक्षा।

सूचना—केशव की प्रतिभा की उचित योजना यहाँ उचित मात्रा में दिखलाई पड़ती है। इस दंडकवन वर्णन में लक्ष्मण जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे लक्ष्मण का वीरत्व और धैर्य प्रकट होता है और राम जी से ऐसी उत्प्रेक्षाएँ कराई हैं जिनसे शृंगार की आभा झलकती है। सीता से जो उचित उत्प्रेक्षा कराई हैं। कारण यह है कि लक्ष्मणजी यहाँ पर अपत्नीक तथा राम जी सपत्नीक हैं। लक्ष्मण के चित्त में निर्भयता, धैर्य और वीरत्व होना चाहिये और राम जी के हृदय में जानकी जी के मनोरंजनार्थ शृंगार की कुछ न कुछ आभा होनी ही चाहिये नहीं तो आगे विरह वर्णन शोभा न देगा। सीता की उक्ति भी पवित्रता तथा सिंगार सूचक है क्योंकि पति का मनोरंजन करना है।

(गोदावरीवर्णन)

⊗ **मूल**—(राम) मनहरन छंद*—अति निकट गोदावरी पाप

* यह केशव का निकाला हुआ छंद है।

संहारिणी। चल तरँग तुंगावली चारु संचारिणी॥ अलि कमल सौगन्ध लीला मनोहारिणी। बहु नयन देवेश-शोभा मनोधारिणी॥ २३॥

शब्दार्थ—चल=चंचल। तुंग=ऊँची। सौगंध=सुगंध। देवेश=इन्द्र।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) हमारी पर्ण कुटी के अति निकट ही पाप-नाशिनी गोदावरी नदी भी है, जो चंचल और ऊँची तरंगों की सुन्दर पंक्तियों सहित सदा बहती रहती है तथा भौरों सहित सुगंधित कमलों की लीला से मन को हरती है। ऐसा जान पड़ता है मानो यह गोदावरी बहुलोचन इन्द्र की शोभा धारण किये हुए है (जैसे इन्द्र के शरीर में बहुत से नेत्र हैं वैसे ही इस गोदावरी में भ्रमरयुक्त असंख्य कमल हैं)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोधकछंद—

रीति मनो अविवेक की थापी। साधुन की गति पावत पापी।
कंजज की मति सी बड़भागी। श्री हरिमंदिर सों अनुरागी॥२४॥

शब्दार्थ—कंजज=ब्रह्मा। हरि-मंदिर=(१) बैकुंठ (२) समुद्र (क्षीर समुद्र)।

भावार्थ—इस गोदावरी ने अविवेक की सी रीति चलाई है कि पापी भी साधुओं की गति पाता है (जो पापी स्नान करता है वह बैकुंठ को जाता है)। यह गोदावरी बड़भागी ब्रह्माकी मति के समान श्रीहरि-मंदिर (बैकुंठ वा समुद्र)

से अनुराग रखती है-अर्थात् जैसे ब्रह्मा की मति सदैव परम धाम वैकुंठ की ओर लगी रहती है वैसे ही यह गोदावरी भी सदैव समुद्रकी ओर बहा करती है वा सब को वैकुंठ भेजा करती है।

अलंकार—व्याजस्तुति, उत्प्रेक्षा, उपमा का संकर।

मूल—अमृतगति छंद—

निपट पतिव्रत घरणी। मग जन को सुख करणी॥
निगति सदा गति सुनिये। अगति महा पति गुनिये॥२५॥

शब्दार्थ—मगजन=पंथी (जो रास्ता चलते कहीं भी गोदावरी में स्नान करते हैं वा उसका जल पीते हैं)। निगति= जिसकी गति नहीं हो सकती अर्थात् पापी। अगति=गतिरहित अर्थात् अचल जो नदी की तरह बहता नहीं।

भावार्थ—यह गोदावरी अत्यन्त पतिव्रता है (क्योंकि सदैव निजपति समुद्र की सेवा में निरत रहती है-सदैव समुद्राभिमुख रहती है) तो भी रास्ता चलते लोगों को सुखदेवी है (पतिव्रता स्त्री यदि राहगीरों को सुखदे तो वह पतिव्रता कैसे रहेगी-यह विरोध है)। पापियों को सदा गति (सुगति, वैकुंठ) देती है, पर निजपति समुद्रको महा अगति में ही रखती है—(समुद्र सदैव समभाव से स्थिर ही रहताहै, गतिवान नहीं होता)।

अलंकार—विरोधाभास।

जब जब धरि वीणा प्रकट प्रवीना बहु गुणलीना सुख गीता।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै विविध बजावै गुन गीता॥
तजि मति संसारी विदित-बिसारी सुख-दुखकारी घिरि आवै।
तब तब जग-भूषण रिपु-कुल-दूषण सबको भूषण पहिरावै॥२७॥

[पृष्ठ सं० १५१]

मूल—दोहा—विषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति। ⊗
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—विष=जल। अमृत=अमर, देवता। जीवनहार=पानी-हरन करनेवाला, पानी पीनेवाला। अशेष=समस्त, सब।

भावार्थ—यह सजला गोदावरी (स्नान, पान करने से) देवताओं के पाने योग्य फल (सुगति, मुक्ति) देती है। केशव कहते हैं कि यह गोदावरी अपने जीवन को हरणकरने वाले का (पानी पीनेवाले का) सब दुःख हर लेती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट विरोधाभास।

(सीताजी के गान-वाद्य का प्रभाव वर्णन)

मूल—त्रिभंगी छंद—
जब जब धरि बीना प्रकट प्रवीना बहु गुनलीना सुख सीता।
जियहि रिझावै दुखनि भजावै विविधि बजावै गुन गीता॥
मति संसारी विपिनविहारी सुख दुख कारी घिरि आवैं।
तब जगभूषण रिपुकुलदूषण सब को भूषण पहिरावैं॥२७॥

शब्दार्थ—बहुगुन लीना=बहुत गुणयुक्त। सुख=सुखपूर्वक, सहज भाव से। बजावै गुनगीता=राम के गुणवर्णन के गीत वीणा के साथ गाती हैं। मति संसारी=संसारी मति (भेद वा ...)। विपिनविहारी=वन जंतु। दुखकारी=सिंह, व्याघ्रादि। ...कारी=मोर, कोकिलादि। जगभूषण=श्रीरामजी। रिपु-...षण=शत्रुहंता। भूषण=गहने।

...र्थ—जब जब वीणा लेकर प्रत्यक्ष प्रवीणा और बहुगु-

णवती सीता सुखपूर्वक बैठकर, रामजी को प्रसन्न करती हैं दुख को भगाती हैं और नाना प्रकार के राग बजाकर रामगुण-गान करती हैं, और जब भले बुरे सभी वनजंतु आकर उनको घेर लेते हैं, तब शत्रु संहारक श्रीरामजी उन सब जंतुओं को आभूषण पहिनाते हैं (फूलोंके अथवा जानकी जी ही के)।

अलंकार—अनुप्रास।

मूल—तोटक छंद—

कबरी कुसुमालि सिखीन दई। गज कुंभनि हारनि शोभ भई।
मुकुता सुक सारिक नाक रचे। कटि केहरि किंकिणि शोभ सचे॥
दुलरी कल कोकिल कंठ बनी। मृग खंजन अंजन शोभ घनी।
नृपहंसनि नूपुर शोभ भिरी। कलहंसनि कंठनि कंठसिरी॥२९॥

शब्दार्थ—(२८) कबरी=चोटी। सिखी=मोर। केहरि=सिंह। सचे=संचित की। (२९) नृपहंस=राजहंस (यह हंस बहुत बड़ा होता है)। कलहंस=मधुर स्वरसे बोलने वाले हंस (यह मँझोले डील के होते हैं और बालहंस बहुत छोटे कद के होते हैं)। कंठसिरी=(कंठश्री) कंठी।

शब्दार्थ—फूलों की चोटी मोरों को दी, गज-कुंभों पर हारकी शोभा हुई, शुक और शारिकाकी नाकमें मोती पहनाये, सिंह की कमर पर किंकिणी की शोभा संचित हुई (सिंह को किंकिणी पहिनाई) ॥ २८ ॥ सुंदर दुलरी कोकिल के कंठ में पहनादी, मृग और खंजन की आँखों में अंजन की अति

सुंदर शोभा हुई, राजहंसों के पैरों से नूपुर की शोभा भिड़ गई (उनको नूपुर पहिनाये) और कलहंसों को कंठी पहना दी।

मूल—तोटक छंद—

मुख-वासनि वासित कीन तबै। तृण गुल्म लता तरु सैल सबै॥
जलहू थल हू यहि रीति रमैं। बन जीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं॥३०॥

शब्दार्थ—तृण=कुश, काशादि। गुल्म=छोटे पौदे।

भावार्थ—सीता और रामजी ने अपने मुखोंकी सुगंध से तृण, पौदे, लता, वृक्ष और सब पर्वतों को सुगंध से भर दिया है। जल के निकट वा स्थल में जहाँ जहाँ वे घूमते हैं तहाँ तहाँ उनके रूप पर मोहित वनजंतु साथ साथ फिरा करते हैं (यह उनके रूप की प्रशंसा है)।

अलंकार—अत्युक्ति।

(सूर्पणखा-राम संवाद)

मूल—दोहा—सहज सुगंध शरीर की दिसि बिदिसनि अवगाहि।
दूती ज्यों आई लिये केशव सूर्पनखाहि॥ ३१॥

शब्दार्थ—अवगाहि=ढूँढ़कर।

भावार्थ—रामजीके शरीरकी सहज सुगन्ध दूती की तरह सब ओर ढूँढ़ कर सूर्पनखाको लिये हुए रामके निकट आई (रामकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर सूर्पनखा रामके पास आई)।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—मरहटा छंद—

यक दिन रघुनायक, सीय सहायक, रतिनायक अनुहारि।
सुभ गोदावरि तट, विमल पंचवट, बैठे हुते मुरारि॥
छवि देखत ही मन, मदन मथ्यो तन, सूर्पनखा तेहि काल।
अति सुन्दर तनु करि, कछु धीरज धरि, बोली वचन रसाल३२

शब्दार्थ—सीय सहायक=सीता सहित। रति नायक=काम। अनुहारि=समान रूपवाले। हुते=थे। रसाल=रसीले।

भावार्थ—एक दिन काम समान सुन्दर शरीरवाले मुरारि रामचंद्र सीता सहित गोदावरी तट पर पञ्चवट नामक स्थान बैठे हुए थे। उन की छवि देख उस समय सूर्पनखा के तन मन में काम की पीड़ा उत्पन्न हुई। तब वह सुन्दर रूप बना कर, कुछ धैर्यपूर्वक उनके निकट आकर रसीले वचन बोली।

नोट—यहां पर 'मुरारि' कहने का तात्पर्य केवल वैष्णवी बल-वैभव सूचित करने का है। 'कछु धीरजधरि' का तात्पर्य यह है कि स्त्रियाँ काम पीड़ित होने पर भी कुछ धैर्य रखकर पुरुष से बात करके उसके मन में काम वासना उत्पन्न करके तब अपना दुष्ट अभिप्राय प्रकट करती हैं। स्त्री—प्रकृति को कितनी सूक्ष्मता से केशव ने निरीक्षण किया था, यह बात यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

मूल—(सूर्पणखा) सवैया—

किधर हो नर रूप विचच्छन, जच्छ कि स्वच्छ सरीरन सोहौ।

चित्त चकोर के चंद किधौं मृगलोचन चारु विमानन रोहौ ॥
अंग धरे कि अनंग हौ केशव अंगी अनेकन के मन मोहो ।
वीर जटान धरे धनु बान लिये वनिता वन में तुम को हौ॥३३॥

शब्दार्थ—विचच्छन=प्रवीण । जच्छ=यक्ष । मृगलोचनचारु विमानन रोहौ=लोगों के सुन्दर नेत्ररूपी विमानों पर सवार हो (जो तुम्हें देखता है उसके नेत्रों में बस जाते हो)। रोहौ=आरोहण करते हो, सवार हो जाते हो । अनङ्ग=काम। अंगी=शरीरधारी ।

भावार्थ—सरल ही है ।

नोट—प्रशंसा करके ही किसी का मनोभाव आकर्षित किया जा सकता है । जैसा अभिप्राय हो प्रशंसा भी उसी के अनुकूल होनी चाहिये । यहाँ सूर्पणखा का कामभाव है, अतः रूप की प्रशंसा ही उचित थी । स्त्रियाँ सुन्दर और वीर पुरुष को अधिक पसंद करती हैं । केशव ने नारी-हृदय के भावों को कितनी गहराई तक देखा है, यही बात द्रष्टव्य है ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—(राम) मनोरमा छंद*—हम हैं दसरथ महीपति के ⊗ सुत। सुभ राम सु लच्छन नामन संजुत ॥ यह सासन दै पठये नृप कानन। मुनि पालहु घालहु राछस के गन ॥ ३४ ॥

*यह छंद स्वयं केशवका निकाला हुआ जान पड़ता है। अन्य पिंगलों के मनोरमा छंद से इसका रूप नहीं मिलता। इसका लक्षण है ४ सगण और २ लघु गर्भित (स, स, स, स, ल, ल,)।

शब्दार्थ—लच्छन=लक्षण । नामन संजुत=नामधारी । सासन=शासन, आज्ञा ।

नोट—शास्त्राज्ञा है कि अपनी जबान से अपना नाम न लेना चाहिये । यदि आवश्यकता ही आपड़े तो वंश परिचय तथा किसी विशेषण के साथ अपना नाम बतलावे । इसी से 'शुभ' शब्द का प्रयोग रामजी ने किया है ।

मूल—(सूर्पणखा)—नृपरावण की भगिनी गनि मोकहँ । जिहकी ठकुराइत तीनहु लोकहँ ॥ सुनिजै दुखमोचन पंकज लोचन । अब मोहि करौ पतिनी मनरोचन ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—ठकुराइत=राज्य, आतंक । सुनिजै=सुनिये । पतिनी=स्त्री । मनरोचन=मनको रुचनेवाले ।

नोट—रामजी ने अपने को राजपुत्र बतलाया, तो सूर्पणखा अपने को राज-भगिनी बतलाकर विवाह को उपयुक्त ठहराती है । पंकजलोचन, मनरोचन तथा दुखमोचन इन तीन विशेषणों द्वारा वह प्रकट करती है कि तुम मुझे अति सुंदर जँचते हो, इसलिए मेरा मन तुमपर आसक्त हो गया है और तुम्हीं को अपनी काम-पीड़ा निवारण करने के योग्य समझती हूँ, अतः पत्नीवत् स्वीकार करके मेरा दुःख निवारण करो ।

मूल—तोमरछंद—

तब यों कह्यो हँसि राम । अब मोहि जानि सबाम ॥
तिय जाय लक्ष्मण देखि । सम रूप यौवन लेखि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—सवाम=विवाहित (सस्त्रीक, स्त्रीसहित)।

भावार्थ—तब राम जी ने हँसकर कहा कि हे सुन्दरी मेरा तो विवाह हो चुका है—मैं सस्त्रीक हूँ, अतः तुम जाकर हमारे लघु भ्राता लक्ष्मण से मिलो, वह तुम्हारे ही समान रूप तथा यौवनवाला है (शायद वह तुम्हे विवाह ले)।

मूल—(सूर्पणखा) दोधकछंद—

राम सहोदर मोतन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो॥ ⊗
राज कुमार रमौ सँग मेरे। होहिं सबै सुख संपति तेरे॥३७॥

मूल—(लक्ष्मण) दोधकछंद—

वै प्रभु हौं, जन जानि सदाई। दासि भये महँ कौनि बड़ाई। ⊗
जो भजिये प्रभु तौ प्रभुताई। दासि भये उपहास सदाई॥३८॥

शब्दार्थ—वै=श्रीराम जी। हौं=मैं। जन=सेवक। भजिये=सेइये। प्रभुताई=बड़प्पन, रानीपन। उपहास=हँसी, निन्दा (राजा की भगिनी के लिये दासी होना निंदा की बात है)।

मूल—मल्लिकाछंद—हास के विलास जानि। दीह मान खंड मानि॥ ⊗
भक्षिबे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि॥ ३९॥

शब्दार्थ—विलास=खेल। मान=सम्मान, इज्जत। खंड=खंडित। सामुहें=सम्मुख।

भावार्थ—जब सूर्पणखा ने देखा कि ये दोनों भाई मेरे साथ हँसी का खेल कर रहे हैं (मज़ाक़ कर रहे हैं) तो उसने अपने सम्मान को खंडित हुआ समझकर—अपना अपमान

हुआ जान कर—भक्षण कर डालने की इच्छा से, सीता के सम्मुख हुई (सीता की ओर दौड़ी) ।

मूल-तोमरछंद—तब रामचंद्र प्रवीन। हँसि बंधु त्यों दृगदीन। गुनि दुष्टता सहलीन। श्रुति नासिका बिनु कीन ॥४० ॥

शब्दार्थ—त्यों=तरफ,ओर । दृग दीन=आँखों से कुछ संकेत किया । सहलीन=उद्यत,निमग्न । श्रुति=कान ।

भावार्थ—तब चतुर रामचन्द्र ने हँस कर लक्ष्मण की ओर देख कुछ संकेत किया । लक्ष्मण ने उसे दुष्टता पर उद्यत जान कर उसके नाक-कान काट लिये ।

मूल—दोहा—शोन छिछि छूटत बदन भीम भई तेहि काल। मानो कृत्या कुटिल युत पावक ज्वाल कराल ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—शोन=शोनित,रक्त । छिछि=छाँछ । भीम=भयंकर। कृत्या=तंत्र के अनुसार पैदा की हुई भयंकर राक्षसी जो तांत्रिक के शत्रु को विनष्ट करती है ।

भावार्थ—नाक-कान काटे जाने पर उसके चेहरे पर से रक्त की छाँछें सी छूटीं । इन रक्त-छाँछोंयुक्त सूर्पणखा उस समय ऐसी भयंकरी दिखलाई दी मानो कुटिल कृत्या (राक्षसी) कठिन अग्नि ज्वालाओं युक्त होकर आई हो (सूर्पणखा कृत्या सम और खून की छाँछें अग्निज्वाला सम) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

ग्यारहवाँ प्रकाश समाप्त ।

बारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या द्वादशे प्रकाश खर दूषण त्रिशिरा नाश।
सीता हरण बिलाप सु, ग्रीव मिलन हारि त्रास॥

नोट—इस दोहे में यतिभंग दोष बहुत खटकता है।

मूल—तोटक छंद—

गइ सूपनखा खरदूपन पै। सजि ल्याई तिन्हैं जगभूपण पै।
सर एक अनेक ते दूर किये। रवि के कर ज्यों तमपुंज पिये॥१॥

शब्दार्थ—जगभूषण=श्रीराम जी। कर=किरणें।

भावार्थ—(तदनन्तर) सूपनखा खरदूषण के पास गई और उन्हें रणहेतु सजाकर श्रीराम के पास लिवा लाई। राम जी ने उन सबों को उसी प्रकार एक ही बाण से मार डाला जैसे सूर्य की किरणें अंधकार समूह को पीजाती हैं।

अलंकार—उपमा।

मूल—मनोरमा छंद—वृप के खरदूपण ज्यों खर दूपण। सब दूरि किये रविके कुल भूपण॥ गदशत्रु त्रिदोप ज्यों दूरि करै घर। त्रिशिरा सिर त्यों रघुनंदन के सर॥ २॥

शब्दार्थ—वृपके=वृपराशि के। खरदूपण=तृणों को नष्ट करने-वाले (सूर्य)। रविके कुल भूषण=सूर्यकुल के मंडन (श्रीराम जी)। गदशत्रु=वैद्य। त्रिदोप=सन्निपात।

अन्वय—ज्यों वृप के खरदूपण खर दूर किये त्यों रविकुल

भूषण खरदूषण दूर किये।

भावार्थ—जैसे वृषराशि के (जेठ मास के प्रखर किरण सूर्य) सूर्य तृण समूह को जला डालते हैं वैसे ही राम जी ने खर और दूषण को नाश कर दिया। जैसे वैद्यवर त्रिदोषज सन्निपात रोग को निज विद्याबल से दूर करता है, वैसेही राम जी के बाणों ने त्रिशिरा के सिरों को दूर कर दिया।

अलंकार—देहरी दीपक से पुष्ट उपमा ('दूर किये' शब्द देहरी दीपक है)।

मूल—दोहा—खर दूषन सों युद्ध बढ़ भयो अनंत अपार।
सहस चतुर्दस राछसन मारत लगी न बार॥ ३॥

मूल—दोहा—गई अंध दसकंध पै खर दूषनहिं जुझाय।
सूपनखा लखि मन सिया वेष सुनायो आय॥ ४॥

भावार्थ—खर दूषण को जुझाकर सूपनखा अज्ञानी रावण के पास गई और उसे कामी समझ कर सीता का सौन्दर्य सुनाया—(इस विचार से कि यह सौन्दर्य सुनकर उसको हर लावेगा जिससे मुझे संतोष होगा)।

मूल—दंडक—मय की सुता धौं को है, मोहनी है मोहै मन, आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये। देह दुति दामिनी है, नेह काम कामिनी है, एक लोम ऊपर पुलोमजा विचारिये। भाग पर कमला सुहाग पर विमला है, बानी पर बानी केसौदास सुखकारिये। सात दीप साठ लोक साठहु दसक की, तीयन के गोत सबै सीता पर वारिये॥ ५॥

शब्दार्थ—मय की सुता=मन्दोदरी। पुलोमजा=शची,इन्द्राणी। विमला=ब्रह्माणी (ब्रह्मा की स्त्री)। बानी=मधुर भाषण। बानी= (वाणी) सरस्वती।

भावार्थ—(सीता के रूप की प्रशंसा)-उसके रूप के सामने मयनन्दिनी मन्दोदरी क्या वस्तु है—अर्थात् तुच्छ हैं। वह मोहनी होकर मन को मोह लेती है,। आजतक ऐसी रूपवती स्त्री सुनी भी न होगी, उसे प्रत्यक्ष जाकर देखो। उसकी देह-द्युति के सामने बिजली और प्रेम करने में रति कुछ भी नहीं हैं। उसके एक रोम पर शची निछावर है। भागपर लक्ष्मी, सौभाग्य पर ब्रह्माणी और मधुर भाषण पर सुखप्रद सरस्वती भी निछावर हैं। कहाँ तक कहूँ सातो द्वीप, सातो लोक और सातो रसातलों की स्त्रियों के समूह उस सीता पर निछावर करने योग्य हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

नोट—छंद नं० ४ और ५ हमें बुँदेलखंडसे प्राप्त हस्त-लिखित प्रति में मिले हैं। अन्य प्रतियो में नहीं हैं।

मूल—मनोरमा छंद—भाजि सूपनखा गई रावन पै जब। त्रि-शिरा खर दूषन नाश कहे सब॥ तब सूपनखा मुख बात स-बै सुनि। उठि रावन गो जहँ मारिच हो मुनि॥ ६॥

शब्दार्थ—हो=था। जहँ मारिच हो मुनि=जहाँ मारिच मुनि रूप से रहता था।

मूल—दोधक छंद—

रावण बात कही सिगरी त्यों। सूपनखाहिं विरूप करी ज्यों॥
एकहि राम अनेक सँहारे। दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे॥७॥

शब्दार्थ—विरूप=बदसूरत (नाक कान काट कर)। स्यों=सहित।

अलंकार—विभावना (दूसरी)।

मूल—दोधक छंद—

तू अब होहि सहायक मेरो। हौं बहुतै गुण मानिहौं तेरो॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहैं। वे भ्रमि सोकन ही मरि जैहैं।

शब्दार्थ-गुण मानिहौं=कृतज्ञ हूँगा, एहसान मानूंगा। वे=राम। भ्रमि=घूमते घूमते।

मूल—(मारीच) दोधक छंद—

रामहि मानुष कै जनि जानौ। पूरन चौदह लोक बखानौ॥
जाहु जहाँ सिय लै सु न देखौं। हौं हरि को जलजू थल लेखौं।

शब्दार्थ-मानुषकै=मनुष्यकरके,मनुष्यही। सु=सो। हौं=मैं।

भावार्थ-(मारीच रावण को समझाता है) हे रावण! राम को मनुष्य मत समझो, वरन उनको समस्त चौदहो भुवनों में व्यापक समझो, मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता जहाँ तुम सीता को ले जाकर छिपा रक्खोगे, मैं तो राम को जल थल में व्यापक मानता हूँ।

मूल—(रावण)सुन्दरी छंद—

तू अब मोहिं सिखावत है सठ। मैं बस लोक

येगि चलै अब देहि न ऊतरु। देव सबै जन एक नहीं हरु॥

शब्दार्थ–ऊतरु=उत्तर, जवाब। जन=दास, सेवक। हरु=(हर) महादेव।

भावार्थ–(रावण मारीच को डाँटता है) हे शठ! तू मुझे सिखाता है (चलने में बहाना करता है)? मैंने अपनी हठसे सब लोगों को वश में कर लिया है। बस उत्तर मत दे, जल्दी चल। एक शिव को छोड़ कर और सब देवता तो मेरे दास हैं (वे मेरा क्या कर सकते हैं)।

मूल—दोहा–जानि चल्यो मारीच मन, मरन दुहूँ विधि आसु।
रावन के कर नरक है, हरि कर हरिपुर बासु॥११॥

भावार्थ–मारीच, यह जानकर कि अब शीघ्र ही मुझे दोनों तरह से मरना ही है (वहाँ जाने से राम मारेंगे, न चलने से रावण मारेगा) अतः राम के हाथ से मरना ही अच्छा है, क्योंकि रावण के हाथ से मरने में नरकगामी हूँगा और राम के हाथ से मारे जाने से वैकुंठ प्राप्त होगा। इस प्रकार विचार कर रावण के साथ चल दिया।

मूल—(राम) सुन्दरी छंद—

राजसुता इक मंत्र सुनो अब। चाहत हौं भुव भार हन्यो सब॥
पावक में निज देहहि राखहु। छाय शरीर मृगैं अभिलाषहु॥

शब्दार्थ–छायशरीर=छाया शरीर से। मृगैं अभिलाषहु=मृग मारने के लिये मन से अपनी इच्छा प्रकट करो।

मूल—चामर छंद—आयो कुरंग एक चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर को॥ राजपुत्रिका समीप
साधु बंधु राखिकै। हाथ चाप बाण लै गये गिरीश नाखिकै॥

शब्दार्थ—कुरंग=मृग। हेम=सोना। हीर=हीरा। साधु=इन्द्रीजित, ब्रह्मचारी। गिरीश=बड़ा पर्वत। नाखि कै=लाँघकर, उस ओर।

मूल—दोहा—रघुनायक जबही हन्यो, सायक सठ मारीच।
'हा लछिमन' यह कहि गिरो, श्रीपति के स्वर नीच॥

भावार्थ—रघुनाथ जीके बाण मारते ही दुष्ट मारीच श्रीपति (श्रीरामजी) के स्वर से 'हा लक्ष्मण' शब्द उच्चारणकर गिर कर शरीर त्याग दिया।

मूल—निशिपालिकाछंद—राज तनया! तबहिं बोल सुनि यों कह्यो। जाहु चलि देवर न जात हम पै रह्यो॥ हेम मृग होहि नहिं रैनिचर जानियो। दीन स्वर राम कहि भांति मुख आनियो॥ १५॥

शब्दार्थ—राजतनया=सीता (का छायाशरीर)। बोल=राम के स्वर में उच्चारित 'हा लक्ष्मण' शब्द। रैनिचर=निश्चर। मुख आनियो=उच्चारण किया।

भावार्थ—तब वह 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर सीता ने कहा, हे देवर! तुम जल्दी जाओ। श्री राम तुम्हे सहायतार्थ टेरते हैं—उनका दीन वचन सुनकर मुझसे रहा नहीं जाता। जान पड़ता है कि वह मृग नहीं है, कोई राक्षस है—ऐसा

न होता तो रामजी ऐसे दीन स्वर से न टेरते। जान पड़ता है कि राम पर कोई संकट आ पड़ा है।

मूल—(लक्ष्मण)-निशिपालिकाछंद-शोच अति पोच, उर मोच दुखदानिये। मातु यह बात अवदात मम मानिये॥ रैनिचर छद्म बहु भांति अभिलाषहीं। दीन स्वर राम कबहूं न मुख भाषहीं॥ १६॥

शब्दार्थ—अवदात=शुद्ध, सत्य। छद्म=कपट।

भावार्थ—हे माता जानकी! यह अति तुच्छ और दुखदायी दुःख मन से निकाल दो और मेरी इस बात को सत्य जानो कि निश्चर चाहे लाख कपट करें पर श्री राम जी मुख से कभी दीन वचन उच्चारण न करेंगे।

मूल—चंचलाछंद—पच्छिराज जच्छराज प्रेतराज जातुधान। देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान॥ पर्वतारि अर्ब खर्ब सर्व सर्वथा प्रखानि। कोटि कोटि सूर चन्द्र रामचन्द्र दास मानि॥ १७॥

शब्दार्थ—पच्छिराज=गरुड़। जच्छराज=कुबेर। प्रेतराज=यम। अदेवता=दैत्य। नृदेवता=राजा। पर्वतारि=इन्द्र। अर्ब=एक अरब (संख्या)। खर्ब=एक खरब (संख्या)। सर्व=शिव।

भावार्थ—गरुड़, कुबेर, यम, राक्षस, देवता, दैत्य और राजा इस संसार में जितने हैं; और अरबों इन्द्र वा खरबों शिव तथा करोड़ों सूर्य और चन्द्र, इन सब को श्री राम जी का सदा

ही समझो (कोई भी राम जी को कष्ट नहीं पहुँचा सकता)।

अलंकार—उदात्त।

मूल—चामरछंद—राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूंदि बार बार सीस बीसधा धुनै॥
चापकीय रेख खांचि देव साखि दै चले।
नाखि हैं ते भस्म होंहि जीव जे भले बुरे॥१८॥

शब्दार्थ—और को कहै सुनै=अकथ्य और अश्रवणीय हैं, कहने सुनने लायक नहीं (अर्थात अत्यन्त कटु और कठोर हैं)। बीसधा=अनेक प्रकार से। चापकीय=धनुष से, धनुष द्वारा। देव साखि दै=अपनी निर्दोषताका साक्षी बनाकर।

भावार्थ—तब सीता जी ने लक्ष्मण को अत्यन्त कटु और कठोर वचन कहे जो कहने सुनने योग्य नहीं। और लक्ष्मण की बातें न सुनाई पड़ें इसलिये कान मूंद कर बार बार अनेक प्रकार से अपना सिर पीटने लगीं (अबला स्त्रियों का ऐसा ही स्वभाव होता है। हठी होती हैं, सिर फोड़ लेती हैं)। जब लक्ष्मण जी ने देखा कि ये मानेंगी नहीं, तब धनुष से पर्णकुटी के चारो ओर रेखा खींच कर और अपनी निर्दोषता के हेतु देवताओं को साक्षी बनाकर-देवताओं की कसम दिलाकर-और यह कह कर कि जो कोई इस रेखा को लाँघेगा, चाहे वह भला हो चाहे बुरा हो, वह भस्म हो जायगा, राम की ओर चल दिये।

अलंकार—तुल्ययोगिता (चौथी)।

नोट—सीता ने उस धनुरेखा को लांघा था। उसके फल स्वरूप लङ्का विजय होनेपर सीता को यह रूप जलाना पड़ा। लक्ष्मण का वचन सत्य हुआ।

मूल—चामर छंद—छिद्र ताकि छुद्रबुद्धि लंकनाथ आइयो। ⊗ भिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो॥ सोच पोच मोचि के सकोच भीम भेषको। अंतरिच्छ ही हरी, ज्यों राहु चंद्ररेख को॥ १९॥

शब्दार्थ—छिद्र=मौका (जानकी को अकेली जानकर)। मोचिकै सकोच भीम भेषको=अपने बड़े भयंकर भेषको जो छोटा बनाकर आयाथा, उस संकोचन को—छोड़ कर अर्थात् पुनः बड़ा और भयंकर रूप (अपना असली रूप) धर कर। अंतरिच्छ=आकाश। चंद्ररेख=(चंद्रलेखा) द्वितीया का चंद्रमा। ज्यों=मानो।

भावार्थ-मौका ताक कर छुद्रबुद्धि रावण जानकी की पर्ण कुटी के निकट आया। (चूंकि वह सन्यासी का भेष धारण किये था अतः) उसे भिक्षुक समझ कर जानकी जी ने भीख देने के लिये निकट बुलाया। ऐसा मौका पाकर उस पोच ने सब विचार छोड़ कर पुनः अपना असली भयंकर रूप धरकर सीता को पकड़ इस प्रकार आकाश मार्ग से उड़ा जैसे राहु ने द्वितीया के चंद्रमा को पकड़ा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (यहाँ 'ज्यों' शब्द 'मानो' के अर्थ में है अतः इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार मानना मुझे अधिक उचित जँचता है)।

मूल—दंडक-धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की शिखा, के धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की। चित्र की सी पुत्रिका के रूरे बगरूरे माहिं, शंबर छड़ाइ लई कामिनी के काम की॥ पाखंडी की सिद्धि, के मठेस बस एकादसी, लीनी के स्वपचराज साखा सुद्ध साम की। केशव अदृष्ट साथ जीव जाति जैसी तैसी, लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की॥२०॥

शब्दार्थ—धूमकेतु=अग्नि। धूमियोनि=बादल। सुधाधाम=चन्द्रमा। रूरे=बड़े। बगरूरा=बवंडर। शंबर=शंबर और प्रद्युम्न की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के ५५ वें अध्याय में देखो। मठेश=मठपति, किसी मठका पुजारी (केशवकृत विज्ञानगीता में इस की कथा देखो)। स्वपचराज=चाण्डाल। अदृष्ट=भाग्य, प्रारब्ध। जाया=पत्नी। छाया जाया राम की=राम की छायामय (मायामय, असली नहीं) पत्नी सीता।

भावार्थ—(सीता रावण के वश पड़ी हैं— कैसे) धूम समूह में अग्निशिखा है, या बादल में चन्द्रकला है, या बड़े बवंडर में कोई सुन्दर चित्र है, या शंबरासुर ने रति को हरण किया है, या पाखंडी की सिद्धि है (पाखंडी में असली सिद्धि होती ही नहीं—वैसेही, ये असली सीता नहीं) या

मठाधीश के वशमें जबरदस्ती एकादशी पड़गई है, या चांडाल ने अनाधिकार ही शुद्ध सामवेद की शाखा ग्रहण की है। केशव कहते हैं कि जैसे प्रारब्ध के फंद में जीव की ज्योति (अविनाशी सच्चिदानन्द ईश्वरका अंश) पड़ी हुई है, वैसे ही रावण के हाथ में रामपत्नी का केवल मायामय रूप पड़ा है—तात्पर्य यह कि जैसे उपर्युक्त वस्तुएँ विवश होकर अवास्तविकरूप से इन जनों के वश में केवल देखने मात्र को होती हैं, वैसे ही, मायामय रूप से सीता भी रावण के हाथ पड़ी है।

अलंकार—संदेह से पुष्ट उपमा।

मूल—(सीता) वसन्ततिलका छंद—हा राम! हा रमन! हा रघुनाथ धीर। लंकाधिनाथ वश जानहु मोहि बीर॥ हा पुत्र लक्ष्मण! छुड़ावहु वेगि मोहीं। मार्तंडवंश यश की सब लाज तोहीं॥ २१॥

मूल—वसन्ततिलका छंद—पक्षी जटायु यह बात सुनंत धाय। रोक्यो तुरंत बल रावण दुष्ट जाय। कीन्हो प्रचंड रण छत्र-ध्वजा विहीन। छोड्यो विपक्ष तब भो जब पक्षहीन॥ २२॥

शब्दार्थ—सुनंत=सुनकर। बल=बलपूर्वक। विपक्ष=शत्रु। पक्ष=पंख।

मूल—संयुक्ता छंद—

दशकंठ सीतहि लै चल्यो। अति वृद्ध गीध हियो दल्यो।
चित्र जानकी जब को कियो। हरि तीनहै अवलोकियो॥२३॥

शब्दार्थ—गीध हियो दल्यो=गृद्ध (जटायु) के हृदय में बड़ा दुःखहुआ (शरीर के कष्ट का कुछ भी ध्यान नहीं)। हृदय इस हेतु दुखी है कि इतना शारीरिक कष्ट सहने पर भी सीता का उपकार न कर सका। अघ को=नीचे को। हरि=बंदर। तीनद्वै=(३+२) पाँच (देखो छंद नं० ५१, ५६ तथा प्रकाश १३ वें का छंद नं० ३६)।

भावार्थ—तदनन्तर रावण सीता को लेकर लंका को चला। अत्यंत बुड्ढे जटायु को अत्यंत हार्दिक दुःख हुआ। आगे बढ़ने पर जानकी ने नीचे की ओर (भूमि की ओर) देखा तो एक पर्वत पर पाँच बंदरों को बैठे देखा।

मूल—पद पद्म की शुभ घूँघरी। मणि नील हाटक सो जरी। द्रुत उत्तरीय विचारि कै। भुव डारि दी पग टारि कै॥ २४॥

शब्दार्थ—घूंघरी=नूपुर। हाटक=सोना। उत्तरीय=ओढ़नी। पग टारिकै=पैरसे उतार कर।

भावार्थ—सीताजी ने अपने चरण कमलों के घुँघुरू जो सुवर्ण के थे और जिनमें नीलम जड़े हुए थे, पैर से उतारकर और अपनी ओढ़नी में बांधकर जमीनपर फेंक दिये (ताकि ये बंदर उसे पावें और खोज करते हुए राम जी को खोज दें)।

मूल—दोहा-सीता के पदपद्म के नूपुर पट जनि जानु।
मनहु कन्यो सुग्रीव घर राजश्री प्रस्थानु॥ २५॥

शब्दार्थ-राजश्री=राज्यवैभव, राज्यलक्ष्मी। प्रस्थान=आगमन

चिह्न ।

भावार्थ–(कवि कहता है) उनको सीता के चरण के नूपुर और कपड़ा ही न समझो वे तो मुझे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सुग्रीव के घर राजलक्ष्मी का प्रस्थान रक्खा गया है (थोड़े दिनों में सुग्रीव को राज्य मिलने वाला है, उसी के आगम चिह्न है) ।

अलंकार–अपह्नुति और उत्प्रेक्षा ।

मूल—दोहा—यद्यपि श्री रघुनाथ जू, सम सर्वग सर्वज्ञ ।
नर कैसी लीला करत, जेहि मोहत सब अज्ञ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—सम=सदा एक रस (जो किसी भी मनोभाव से प्रभावित न हो) । सर्वग=सर्वत्र व्याप्त । सर्वज्ञ=सब बातों को जानने वाले । अज्ञ=मूढ़ ।

मूल—(राम) सवैया—निज देखो नहीं शुभ गीतहिं सीतहिं कारण कौन, कहो अबहीं । अति मो हित कै वन माँझ गई सुरमारग में मृग मान्यो जहीं ॥ कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं । अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥ २७ ॥

शब्दार्थ–सुरमारग=मारीच ने जो मरते समय 'हा लक्ष्मण' शब्द कहा था, उसी शब्द-मार्ग पर, जिस ओर से शब्द-ध्वनि आई थी उसी रास्ते पर ।

भावार्थ—(पर्णकुटी पर आकर और सीता को वहाँ न

पाकर श्री राम जी लक्ष्मण से कहते हैं) मैं अपनी सुन्दर सीता को यहाँ नहीं देखता इसका क्या कारण है, तुरन्त बतलाओ। क्या मुझपर अति प्रेम करके वे उस शब्दमार्ग से उस वन को चली गईं जहाँ मैं ने मृग को मारा है? या तुमको कुछ कटु वचन कहे है और अब मेरे आने पर लज्जित होकर वा भय से कहीं छिप रही हैं। यह हमारी ही पर्णकुटी है या कोई दूसरी है? तुम वही मेरे सहोदर लक्ष्मण हो कि नहीं (कपट वपुधारी कोई दूसरे व्यक्ति तो नहीं हो?)

अलंकार—संदेह।

मूल—दोधक छन्द—

धीरज सो अपनो मनरोक्यो। गीध जटायु पर्‍यो अवलोक्यो॥
छत्र ध्वजा रथ देखिकै बूझ्यो। गीध कहो रण कौन सों जूझ्यो॥
(जटायु)-रावण लैगयो राघव सीता। हा रघुनाथ रटै शुभ गीता॥
मैं बिनु छत्र ध्वजा रथ कीनो। है गयो हौं बल पक्ष विहीनो॥
मैं जग में सब ते बड़भागी। देहदशा तव कारण लागी॥
जो बहु भाँतिन वेदन गायो। रूप सो मैं अवलोकन पायो॥३०॥

शब्दार्थ—देह दशा लागी=यह गीध देह और यह वृद्धावस्था (जो किसी काम की न थी) तुम्हारे उपकार में लगी।

मूल—(राम)—दोधक छन्द—

साधु जटायु सदा बड़ भागी। तो मन मो वपु सों अनुरागी॥
छूटो शरीर सुनी यह बानी। रामहिं में तब जोति समानी॥३१॥

भावार्थ—(श्रीरामजी जटायु से कहते हैं) हे जटायु ! साधुवाद (धन्य धन्य) । तुम बड़े भाग्यमान हो जो तुम्हारा मन मेरे रूप से अनुराग रखता है । राम की यह वाणी सुनते ही जटायुने प्राण त्याग दिये और उसकी जीवज्योति राम ही में लीन होगई (सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुआ) ।

मूल—तोटकछंद—

दिस दच्छिन को करि दाह चले। सरिता गिरि देखत वृक्ष भले॥
वन अंध कवंध विलोकतहीं। दोउ सोदर खैंचि लिये तबहीं॥

शब्दार्थ—अंध=नेत्रहीन । कवंध=सिरहीन एक राक्षस (आगे के छंदों में उसने स्वयं अपनी कथा कही है । इन्द्रके वज्र मारने से इसका सिर पेट में घुस गया था, पर यह मरा नहीं। इन्द्र ने इसकी भुजायें दो दो कोस की कर दी थीं । सिर पेट में घुस गया था, इस कारण इसे देख नहीं पड़ता था । लंबी भुजाओं से ढूँढ़ टटोल कर अपना आहार पकड़ लेता था । अतः 'विलोकत ही' का अर्थ यहाँ होगा 'टटोलतेंही,' भुजाओं से स्पर्श होते ही) ।

भावार्थ—जटायु की दाह-क्रिया करके रामजी दक्षिण की ओर को आगे बढ़े और नदी, पहाड़, और सुन्दर वृक्ष देखते (और उनसे जानकी का पता पूँछते) चले जा रहे थे कि रास्ते में अंधा कबंध मिला और इनकी आहट पाकर टटोल कर दोनों भाइयों को अपनी लंबी भुजाओं से अपने निकट

खींच लिया।

मूल—तोटक छंद—

जब खैंचहि को जिय बुद्धि गुनी। दुहुँ बानन्हि छै दोउ बाहु हनी॥
वह छांड़ि के देह चल्यो जबही। यह व्योम में बात कही तबही॥

शब्दार्थ—बुद्धिगुनी=विचार किया। दुहुँ=दोनों ने (राम और लक्ष्मण ने)। बाहु हनी=भुजाएँ काट डालीं। व्योम=आकाश।

भावार्थ—जब उसने राम और लक्ष्मण को भक्षण कर डालने का विचार किया तब दोनों भाइयों ने उसकी दोनों भुजायें बाणों से काट डालीं। जब वह शापित गन्धर्व अपनी इस राक्षसी देह को छोड़ कर पुनः सुरपुर को चला, तब आकाश में उसने यह बात कही:—

मूल—(कबंध-गंधर्वरूपसे) तोटकछंद—

पीछे मघवा मोहि शाप दई। गंधर्व ते राक्षस देह भई॥
फिरि कै मघवा सह युद्ध भयो। उन क्रोध कै सीस पै वज्र हयो॥

शब्दार्थ—पीछे=गतकाल में। मघवा=इन्द्र। सह=के साथ, से। हयो=मारा।

नोट—इसी 'सह' वा 'सँग' से 'सन' 'सो' 'से', इत्यादि विभक्तियाँ बनीहुई जान पड़ती हैं।

भावार्थ—गतकाल में इन्द्र ने मुझे शाप दिया था, जिससे मैं गंधर्व से राक्षस हो गया। तदनंतर इन्द्र से मेरा युद्ध

हुआ, तब उन्होंने क्रोध से मेरे सिर पर वज्र मारा।

मूल—दोहा—गयो सीस गड़ि पेट में पर्यो धरणि पर आय।
कछु करुणा जिय मों भई दीन्ही बाहु बढ़ाय ॥३५॥
बाहु दई द्वे कोस की "आवै तेहि गहि खाउ।
रामरूप सीता-हरण उबरहु गहन उपाउ" ॥ ३६ ॥

भावार्थ—दोहा नं० ३५ का अर्थ सरल ही है। दोहा नं० ३६ में वह गंधर्व कहता है कि जब इन्द्रने कृपाकर के मेरी भुजाएँ दो दो कोस की करदीं उसी समय यह भी कहा था कि जो कोई तेरे निकट आवै उसे पकड़ कर खा लिया कर (इस प्रकार तू जीवित रहेगा), रामावतार के समय जब सीता-हरण होजाने पर श्रीराम इस बन में आवें तब उनको पकड़ लेना तब तेरा उद्धार हो जायगा (राक्षस देह छोड़ कर गंधर्व शरीर पावेगा)।

मूल—(गंधर्व) दोहा—
सुरसरि ते आगे चलें मिलिहैं कपि सुग्रीव।
देहैं सीता की खबर बाढ़ै सुख अति जीव ॥ ३७ ॥

भावार्थ—(वही गंधर्व आकाश से कहता है कि) जब इस गोदावरी से आगे बढ़ोगे तो तुम्हें सुग्रीव नामक एक बंदर मिलैगा। वह सीता की ठीक खबर देगा (सीता की कुछ सहिदानी देगा) जिसके मिलने से आपको बड़ा आनंद होगा। (इस वार्ता को सुन कर श्रीरामजी आगे को चले)।

(विरह में राम की उन्मत्त दशा)

मूल—तोटक छंद—

सरिता इक केशव सोभ रई। अवलोकि तहाँ चकवा चकई॥
उरमें सिय प्रीति समाय रही। तिनसों रघुनायक बात कही॥

शब्दार्थ—सोभ रई=शोभारंजित, अति सुन्दर।

मूल—तोटक छंद—

अवलोकत हो जबहीं जबहीं। दुख होत तुम्हें तबहीं तबहीं॥
वह बैर न चित्त कछू धरिये। सिय देहु बताय छमा करिये३९

शब्दार्थ—हे=थे। दुख होत=साहित्य में स्त्री के कुच-युग्म की उपमा चक्रवाक के जोड़े से दी जाती है। अतः सीता के कुचयुग्म से तुम लज्जित होकर विरोध मानते थे। बैर=विरोध भाव।

भावार्थ—(रामजी चक्रवाक के जोड़े से कहते हैं) जब जब सीता को तुम देखते थे, तब तब तुम्हें दुःख होता था (कि हम ऐसे सुन्दर नहीं हैं) अतः उस विरोध को भुलाकर सीता को इधर जाते देखा हो तो कृपा करके कुछ पता तो बतलाओ।

मूल—तोटक छंद—

शशि को अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छवि देखि जिये।
छति चित्त चकोर कछूक धरो। सिय देहु बताय सहाय करो॥

शब्दार्थ—छति=एहसान, भलाई, कृतज्ञता।

भावार्थ—हे चकोरगण ! चंद्रमा का देखना छोड़ कर जिस सीता की मुखछवि देखकर तुम जीते थे, उस एहसान की कुछ सुध करो, और सीता का पता बतलाकर मेरी सहायता करो ।

नोट—भाव यह है कि चंद्रमा के अभाव में मेरी स्त्री की मुख-छवि देखकर तुम जीते थे। मैं चाहता तो तुम को अपनी स्त्री का मुख न देखने देता। पर तुमको दुःखित जान कर मैं ऐसा न करता था। अब मैं उसके विरह से दुखी हूँ, अतः अब तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये—मैं तुम्हें जीवित रहने में सहायता देता था तुम मेरे जीवित रहने में सहायता करो, नही तो कृतघ्न कहलाओगे। 'कृति' शब्द पर विचार करने से यही भाव स्पष्ट निकलता है।

अलंकार—अन्योन्य।

मूल—दुर्मिल सवैया—

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षण जानि तजे डरि कै।
मुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा ! करुणा करिकै॥

शब्दार्थ—केतक=केवड़ा। केतकि=केतकी। जाति=जायफल का पेड़। तीक्षण=काँटेदार। साधु=सज्जन। सोधु=पता। करुणा=करना नामक पुष्प-वृक्ष। करुणामय=दयावान्।

भावार्थ—(श्रीरामजी करुना नामक वृक्ष से कहते हैं) हे करुणामय (दयालु) करुणा ! कृपा करके हमें सीता का कुछ पता बतलाओ, तुम साधु प्रकृति हो इसी से तुम से पूछते हैं। तुम क्यों मौन हो रहे हो (साधुजन परदुःख को भली भाँति अनुभव कर सकते हैं)। यदि कहो कि अन्य वृक्षों से क्यों नहीं पूछते, तो उसका कारण सुनो, चंपक से इस कारण नहीं पूछा कि वह याचक का शत्रु है (मकरंद के याचक भौंरे को वह पास तक नहीं फटकने देता—प्रसिद्ध बात है कि भौंरा चंपे पर नहीं बैठता) अतः वह हमारा दुःख क्या समझेगा। अशोक तो अपना सब शोक दूर करके 'अशोक' कहलाता है (जो स्वयं अशोक है वह दूसरे के शोक का क्या अनुभव करेगा) इस कारण उससे भी नहीं पूछा। केवड़ा, केतकी, जायफल, और गुलाब को तीक्षण काँटेदार जानकर छोड़ दिया है, क्योंकि जो तीक्षण प्रकृति के होते हैं वे भयंकर होते हैं। अतः आपको ही सज्जन जानकर पूछते हैं (सज्जन साधु ही हमारी पीड़ा का अनुभव कर सकता है)।

अलंकार—स्वभावोक्ति से पुष्ट निरुक्ति।

मूल—(राम) नराच छंद—

शब्दार्थ--हिमांशु=चन्द्रमा । वात=वायु । विलेप=शीतल-कारक विशेष लेपनादि (चन्दन कर्पूरादि) । कालराति= मृत्यु की रात्रि । कराल=भयंकर । लोकहार=जनसंहारक ।

भावार्थ--(राम जी लक्ष्मण-प्रति कहते हैं) हे लक्ष्मण ! हमें सीता के वियोग में चन्द्रमा सूर्य के समान संतप्त लगता है, मलय पवन वज्र सी चलती है, समस्त दिशायें आगसी जलती हैं, चन्दन कर्पूरादि का लेप (जो तुम मेरे तन पर लगाते हो) अंग को जलाता है, रात्रि तो मुझे कालरात्रि से भी अधिक भयानक जान पड़ती है । यह सीता का वियोग नहीं है, इसे संसार-संहारक काल ही जानो ।

अलंकार--शुद्धापह्नुति ।

मूल--पद्धटिका छंद--

यहि भाँति विलोके सकल ठौर । गये सबरी पै दुउ देवमौर ॥
लियो पादोदक तेइ पद पखारि । पुनि अर्घादिक दीन्हें सुधारि॥

शब्दार्थ--पादोदक=चर्णामृत । अर्घादिक=जल, फूल, मूलादि कुछ हलके पदार्थ जो अतिथि के आने पर उसे जलपान को दिये जाते हैं ।

भावार्थ-इस प्रकार सब जगह सीता को खोजते हुए वे दोनों देवशिरोमणि (राम लक्ष्मण) शबरी के स्थान में पहुँचे । उसने चरण धोकर चर्णामृत लिया और अतिथि जानकर उनको उचित जलपान दिया ।

मूल—पद्धटिका छंद—

हर देत मंत्र जिनको विशाल। सुभ कासी में पुनि मरण काल॥
ते आये मेरे धाम आज। सब सफल करन जप तप समाज४४

भावार्थ—(शबरी अपने मन में सोचती है) जिनके नाम का महा शुभंकर मंत्र काशी में महादेव जी सब जीवों को मरण काल में सुनाते हैं, वे ही श्रीराम आज मेरा जप तप सफल करने के लिये मेरे स्थान में आये हैं (अतः आज मैं अत्यन्त बड़भागिनी हुई)।

मूल—पद्धटिका छंद—

फल भोजन का तेहि धरे आनि। भये यज्ञपुरुष अतिप्रीति मानि॥
तिन रामचंद्र लक्ष्मण स्वरूप। तब धरे चित्त जगजोति रूप४५॥

भावार्थ—तदनंतर शबरी ने भोजनार्थ फल लाकर दिये। उसके फलों को यज्ञपुरुष (नारायणरूप) राम जी ने बड़ी रुचि से प्रीति पूर्वक खाया। तदनंतर शबरी ने राम लक्ष्मण को जगत् के प्रकाशक विष्णु भगवान समझ कर अपने चित्त में धारण कर लिया (अपने हृदय ही में राम का रूप देखने लगी, उसका हृदय ब्रह्मज्योति से प्रकाशित होगया)।

मूल—दोहा—शबरी पावकपंथ तब, हरषि गई हरि लोक।
बनन विलोकत हरि गये, पंपातीर सशोक॥ ४६॥

शब्दार्थ—पावकपंथ=योगाग्नि से अपना शरीर जलाकर। हरिलोक=परम धाम, वैकुंठ।

मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को।
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गतिको।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर है कमलापति को॥५०॥

शब्दार्थ—चक्रिन=सर्प । चंदनवात=मलय-पवन । न्यायन ही=न्याययुक्त, ठीकही । मृगमित्र=चंद्रमा (पशुका मित्र है अतः जड़बुद्धि है) । निशाचर-पद्धति=निश्चरों की रीति ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी पंपासर से कहते हैं)-हे कमलाकर (कमलों की खानि) पंपासर ! कमलापति (श्रीरामजी) को जो तुम दुःख देते हो (विरह को उद्दीप्त करते हो) यह बात तुम्हारे योग्य नहीं (क्योंकि तुम कमलाकर हो और ये कमलापति हैं-यह तुम्हारे दामाद हैं)-यदि कहो कि मलय पवन भी तो इन्हें दुःख देता है, तो वह तो उचित ही कार्य करता है क्योंकि चंदन स्वयं जड़ है और सर्पयुक्त है अतः विषैला है (विषका स्वाभाविक गुण विमोहन है) विष से संबंध रखनेवाले जड़वृक्ष की वायु यदि राम को विमोहित करे तो आश्चर्य नहीं । चंद्रमा को देख कर जो इनका चित्त दग्ध होता है (सो भी उचित ही है क्योंकि) चंद्रमा निश्चरोंकी रीति लिये हुए है (रात्रिचर है) । शुकपिकादि पक्षियों की काकली जो इनको दुखद लगती है वह भी उचित ही है क्योंकि वे जड़बुद्धि हैं इनकी विरह-दशा को नहीं जानते, पर तुमतो कमलाकर हो (पर्याय से यहाँ इसका अर्थ "क-

मूल—सवैया—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।
रुचि रोहै॥
मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥४९॥

शब्दार्थ—करहाटक=कमलका बीजकोष, शिफाकंद, कमल-पुष्प के मध्य की छतरी जो पहले पीली होती है पुनः बढ़ने पर हरी हो जाती है। हाटक=सोना (पीले रंग का)। मनरोचन= मन को रुचनेवाला, सुन्दर। लोक विलोचन की रुचि रोहै=लोगों (दर्शकों) की रुचि पर सवार होजाता है (देखने में भला मालूम होता है)। केशवराय=विष्णु। कमलासन=ब्रह्मा।

भावार्थ—सुन्दर सफेद कमल में पीली छतरी है। उस पर सुन्दर भौंरा बैठा है जो सब दर्शकों को अत्यन्त भला जान पड़ता है। इसको देखकर जलदेवियों ने ऐसी ऊपमा दी जिसे सुनकर बड़े बड़े देवताओं के मन भी मोहित होगये (भली मालूम हुई)। केशव कहते हैं कि (उन्होंने यह कहा कि) इस पीली छतरी पर काला भौंरा ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्मा के सिर पर विष्णु विराजमान हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—(लक्ष्मण) सवैया—

मिलि चक्रिन चंदन बाउ बहै अति मोहत न्यायन हीं मति को

मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चन्द्र निशाचर-पद्धति को।
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गतिको।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर है कमलापति को॥५०॥

शब्दार्थ—चक्रिन=सर्प । चंदनवात=मलय-पवन । न्यायन ही=न्याययुक्त, ठीकही । मृगमित्र=चंद्रमा (पशुका मित्र है अतः जड़बुद्धि है) । निशाचर-पद्धति=निश्चरों की रीति ।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी पंपासर से कहते हैं)-हे कमलाकर (कमलों की खानि) पंपासर ! कमलापति (श्रीरामजी) को जो तुम दुःख देते हो (विरह को उद्दीप्त करते हो) यह बात तुम्हारे योग्य नहीं (क्योंकि तुम कमलाकर हो और ये कमलापति हैं-यह तुम्हारे दामाद हैं)-यदि कहो कि मलय पवन भी तो इन्हें दुःख देता है, तो वह तो उचित ही कार्य करता है क्योंकि चंदन स्वयं जड़ है और सर्पयुक्त है अतः विषैला है (विषका स्वाभाविक गुण विमोहन है) विष से संबंध रखनेवाले जड़वृक्ष की वायु यदि राम को विमोहित करे तो आश्चर्य नहीं । चंद्रमा को देख कर जो इनका चित्त दग्ध होता है (सो भी उचित ही है क्योंकि) चंद्रमा निश्चरोंकी रीति लिये हुए है (रात्रिचर है) । शुकपिकादि पक्षियों की काकली जो इनको दुखद लगती है वह भी उचित ही है क्योंकि वे जड़बुद्धि हैं इनकी विरह-दशा को नहीं जानते, पर तुमतो कमलाकर हो (पर्याय से यहाँ इसका अर्थ "क-

मला को पैदा करनेवाले" लेना चाहिये)-और ये कमलापति हैं, अतः तुम्हारा इनका ससुर दामाद का रिश्ता है। ससुर होकर दामाद को दुःख न देना चाहिये। यह बात तुमसे नहीं बनती।

अलंकार—वक्रोक्ति ('कमलाकर' का दूसरा अर्थ लिया गया है)।

आरण्य कांड की कथा समाप्त

(किष्किन्धाकांड)

मूल—दोहा—ऋष्यमूक पर्वत गये केशव श्री रघुनाथ।
देखे वानर पंच विभु मानो दक्षिण हाथ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—वानरपंच=पांच वानर—सुग्रीव, हनुमान, नल, नील और सुखेन। विभु=प्रतापी, तेजस्वी। दक्षिण हाथ=दक्षिण दिशा के रक्षक अथवा (श्रीरामने) उन्हें-दक्षिण हाथ की तरह अपना सच्चा सहायक समझकर मित्ररूप देखा, अर्थात् देखते ही राम को यह भावना हुई कि सीता की खोज में इनसे सहायता मिलेगी।

—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद—
जब कपिराजा रघुपति देखे। मन नरनारायण
द्विजवपु कै श्री हनुमत आये। बहु विधि दै आशिष मन भाये ५२॥

भावार्थ—जब सुग्रीव ने राम जी को देखा (तब) अपने

मन में दोनों भाइयों को (श्रीराम और लक्ष्मणको) नर और नारायण ही समझा। ब्राह्मण भेष से श्री हनुमान जी राम जी के निकट आये और अनेक प्रकार से मनभाये आशीर्वाद दिये।

मूल—(हनुमान) कुसुमविचित्रा छंद—

सब विधि सूरे वन महँ को हौ। तन मन सूरे मनमथ मोहौ॥
सिरसि जटा वाकल वपुधारी। हरि हर मानौ विपिन विहारी॥ ⊗

भावार्थ—(हनुमान जी पूछते हैं) हे महाराज! आप लोग अति सुन्दर रूपवाले हो अतः कौन हो? वन में किस कार्य से आये हो? आप तन मन से शूरवीर मालूम होते हो, सुन्दर इतने हो कि काम को भी मोहते हो, सिरपर जटा और शरीर पर वल्कलवस्त्र धारण किये हो, ऐसा जान पड़ता है मानो आप विष्णु और शिव हो, जंगल में सैर करने को आये हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद-परम वियोगी सम रसभीने। तन मन एकै युग तन कीने। अब तुम को काहगि वन आये। केहि कुल हौ कौनहि पुनि जाये॥ ५४॥ ⊗

भावार्थ—तुम ऐसे रस निमग्न जान पड़ते हो जैसे किसी के वियोग में हो-वियोगी के समान विरह-रस में भीगे हो। तुम तन मन से एक ही हो, पर दो तन धरे हो (इतना तो मैं तुम्हारे रूप से ही जान गया)। पर अब तुम बताओ

कि तुम कौन हो और किस काम से वन में आये हो ? किस कुल के हो और किस के पुत्र हो ?

मूल—(राम)—चंचरीछन्द—

पुत्र श्री दसरथ के वन राज सासन आइयो।
सीय सुंदरि संग ही बिछुरी सु सोधु न पाइयो॥
राम लक्ष्मण नाम संयुत सूर वंश बखानिये।
रावरे वन कौन हो केहि काज क्यों पहिचानिये॥ ५५॥

शब्दार्थ—सासन=आज्ञा। संग ही=साथ में थी। सोधु=पता, खोज। सूर=सूर्य। रावरे=आप। क्यों पहिचानिये=आप को हम किस परिचय से जाने (आप का नाम धाम वंश इत्यादि क्या समझें सो कहिये)।

भावार्थ-(श्रीरामजी अपना परिचय देते हैं) हम श्रीदशरथ जी के पुत्र हैं, राजा की आज्ञा से वन को आये हैं। हमारे साथ में सीता नाम्नी एक स्त्री थी, वह इस वन में खोगई है, उसका कुछ पता नहीं चलता। हम दोनों के नाम राम और लक्ष्मण हैं, हम सूर्यवंश के हैं। आप कहिये, आप कौन हैं, इस वन में क्यों आये हैं, आप का परिचय क्या है (अर्थात् आप अपना नाम, धाम, काम और वंश का परिचय दीजिये)।

मूल—(हनुमान) दोहा—

वा गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सँग मंत्री चारि।
बानर लई छुड़ाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि॥ ५६॥

शब्दार्थ-(जब हनुमान जीने सुना कि ये भी स्त्री वियोगी

हैं-ठीक सुग्रीव की सी दशा इनकी भी है, एक दशावालों में शीघ्र मित्रता हो सकती है। तब अपना परिचय देना छोड़ कर तुरंत सुग्रीव का हाल कहने लगे-इस से हनुमानजी की चतुराई प्रकट है) इस पर्वत पर राजा सुग्रीव रहते हैं। उनके साथ उनके चार मंत्री हैं (उन्हीं में एक मुझे भी जानो)। बालि नामक वानर ने उनकी स्त्री छीन ली है और उन्हें घर से निकाल दिया है।

मूल—दोधकछंद—

वा कहँ जो अपनो करि जानौ। मारहु बालि बिनै यह मानौ॥
राज जु देउ दै वाकि तिया को। तो हम देहिं बताय सिया को ⊗

भावार्थ—उस सुग्रीव को यदि आप अपना सगा करके जानें (क्योंकि आप सूर्यवंश के हैं और वह भी सूर्य का पुत्र है) तो मेरी विनती मान कर आप बालि को मारिये। उसकी स्त्री और राज्यश्री यदि आप उसको दिलवा दें तो हम आपको सीता का पता बतादें। अथवा "सिया को बताय देहिं" अर्थात् सीता का पता भी बतावें और ला भी दें।

अलंकार—संभावना।

मूल—(लक्ष्मण) दोधक छंद—

आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन को प्रभु पारौ॥
थावर जंगम जीव जु कोऊ। संमुख होत कृतारथ सोऊ॥५९॥ ⊗

भावार्थ—(लक्ष्मण जी हनुमान जी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं)-हे प्रभु दुःखी जन की विपत्ति टारिये, दीन अनाथ

का प्रतिपालन कीजिये, क्योंकि आपका पन है कि चर अचर कोई हो,सम्मुख होते ही वह कृतार्थ होगा (उसके मनोर्थ की सिद्धि होगी)।

मूल—दोधकछंद—

बानर ह्वै हनुमान सिधार्‍यो। सूरज को सुत पायनि पार्‍यो॥
राम कह्यो उठि बानर राई। राज सिरी सख स्यों तिय पाई॥५९

भावार्थ—तब हनुमान (ब्राह्मण का भेष छोड़कर) बानर रूप (अपने असली भेष) में आकर राम-जी के पास से सुग्रीव के पास गये और सुग्रीव को अपने साथ लाकर रामजी के चरणों पर डाला (शरणागत किया)। श्री राम ने सुग्रीव को चरणों पर पड़ा हुआ देखकर कहा—हे बानर राज! उठो। हे सखा ! तुमने अब राज्यश्री को स्त्री समेत पालिया (पाओगे)।

अलंकार—भाविक (भावी बात वर्तमान क्रिया में वर्णित है)।

मूल—दोहा—उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ।
सीता जू के पद सहित, नूपुर दीन्हे लाइ॥ ६०॥

मूल—तारकछंद—

रघुनाथ जबै पट नुपुर देखे। कहि केशव प्राण समानहि लेखे॥
अवलोकन लक्ष्मण के कर दीन्हे। उन आदर सों सिर लाइ के लीन्हे

शब्दार्थ—अवलोकन=देखने को, पहिचानने के लिये।

मूल—दंडक—पंजर कै खंजरीट नैनन का केशोदास कैधौं मीन मानस को जलु है कि जारु है । अंगको कि अंगराग, गेंडुवा कि गलसुई किधौं कोट जीव ही को, उरको कि हारु है ॥ बंधन हमारो काम केलि को, कि ताड़िबे को ताजनो बिचार को, कै व्यजन विचारु है । मान की जमनिका कै कंजमुख मूँदिबे को सीता जू को उत्तरीय सब सुख सारु है ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—पंजर=पिंजड़ा । खंजरीट=खंजन । जारु=जाल । गेंडुवा=(खास बुँदेलखंडी शब्द है) तकिया । गलसुई=गाल के नीचे लगाने की छोटी गोल और मुलायम तकिया । कोट जीव को=प्राणों की रक्षा करने का कोट । ताजनो=(फा० ताज़ियाना) कोड़ा, कशा, उत्तेजक । विचार=रतिकेलि का विशेष आचरण-प्रेम प्रीति का विशेष आचार । व्यजन=पंखा । विचारु=भावना । जमनिका=पर्दे की दीवार, टट्टी, कनात । उत्तरीय=ओढ़नी, ओढ़ने का वस्त्र ।

भावार्थ—(श्री राम जी सीता की ओढ़नी देखकर विचार करते हैं) यह मेरे नेत्ररूपी खंजनों के लिये पिंजड़ा है, या मन रूपी मीन के लिये प्राणाधार जल है, या फँसाने के लिये जाल है, या मेरे अंग को आनंद प्रदायक शीतल और सुगंधित लेप वा तकिया और गलसुई है, या मेरे जीव का रक्षा-कारक कोट है, या मेरे हृदय के लिये शोभाप्रद हार है। या कामकेलि के समय का मेरे हाथों का बंधन है, या रति-केलि आदि को उत्तेजित करने के लिये कोड़ा है, या प्रेम प्रीति की भावना

रूपी अग्निको भड़काने के लिये पंखा है, या मान-समय में कमलमुख मूंदने के लिये पर्दा है, या सर्व सुखकी मूल श्री सीताजू की ओढ़नी है।

अलंकार—संदेह।

सूचना—ऐसाही वर्णन हनुमन्नाटक में भी है। शायद उसी को पढ़कर केशव को यह उक्ति सूझी हो। वह वर्णन यों है:—

> द्यूते पणः प्रणयकोलिषु कंठपाशः।
> क्रीड़ा परिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते॥
> शय्यानिशीथसमये जनकात्मजाया।
> प्राप्तं मया विधिवशादिह चोत्तरीयम्॥

मूल—स्वागता छंद—

शब्दार्थ—वानरेन्द्र=सुग्रीव। भीति-भेद=भय का सब मर्म। बाँह धरी=सदैव रक्षा करने की प्रतिज्ञा की (सखाभाव स्थापित किया)।

मूल—स्वागता छंद—

सूरपुत्र तव जीवन जान्यो। बालि जोर बहु भाँति बखान्यो॥
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू। सो अशेष विनती विनई जू॥६४॥

शब्दार्थ—सूरपुत्र=सुग्रीव। जोर=बल। अशेष=सब। विनती विनई=निवेदन किया।

मूल—स्वागताछंद—

एक वार शर एक हनो जो। सात ताल बलवंत गनों तो॥ ⊗
रामचन्द्र हँसि बाण चलायो। ताल बेधि फिरि कै कर आयो॥

शब्दार्थ—ताल=ताड़ वृक्ष। ताल बेधि=सातो ताड़ों को छेदकर।

मूल—(सुग्रीव) तारकछंद—

यह अद्भुत कर्म न और पै होई। सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई ⊗
निकरी मनते सिगरी दुचिताई। तुमसों प्रभु पाये सदा सुखदाई॥

शब्दार्थ—प्रसिद्ध=नामी। दुचिताई=संदेह, दुविधा।

मूल—मत्तगयन्द सवैया—

वावन को पद लोकन मापि ज्यों वावन के वपु माहिं समायो।
केशव सूरसुता जल सिंधुहि पूरि कै, सूरहि को पद पायो॥
काम के बाण त्वचा सब वेधिकै काम पै आवत ज्यों जग गायो।
राम को सायक सातहु तालन वेधि कै रामहि के कर आयो६७

शब्दार्थ—सूरसुता=जमुना। सूरहि को पद पायो=फिर सूर्य ही में जा समाता है।

अलंकार—मालोपमा।

मूल—सोरठा—जिनके नामविलास, अखिल लोक वेधत पतित। ⊗
तिन को केशवदास, सात ताल वेधन कहा॥६८॥

शब्दार्थ—नाम विलास=नाम लेने से।

मूल—(राम)—तारकछंद—

अति संगति बानर की लघुताई। अपराध विना वध कौनि बड़ाई ⊗
हति बालिहि देउँ तुम्हैं नृप शिक्षा। अब है कछु मो मन ऐसिय इच्छा

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) यद्यपि चंचल स्वभाव वानरों की संगति करना मेरे लिये लघुता की बात है और बिना अपराध किसी को मारना कोई प्रशंसा की बात नहीं है, तथापि अब वालि को मार तुम्हें राजनीति की शिक्षा दूँगा (राजनीति यह है कि अपने उद्देश्य-साधन के हेतु यदि कुछ अनुचित कार्य भी करना पड़े तो करना चाहिये) इस समय मेरी ऐसी ही इच्छा है।

बारहवाँ प्रकाश समाप्त

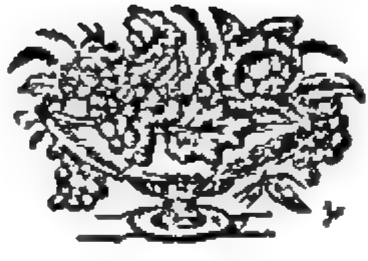

तेरहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या तेरहें प्रकाश में बालि बध्यो कपिराज।
वर्णन बर्षा शरद को उदधि उलंघन साज॥

मूल—पद्धटिका छंद—

रविपुत्र बालि सों होत युद्ध। रघुनाथ भये मन माहँ क्रुद्ध। ⊗
सर एक हन्यो उर मित्र काम। तब भूमि गिर्‍यो कहि राम राम॥
कछु चेत भये तेहि बलनिधान। रघुनाथ विलोके हाथ बान।
सुभ चीर जटा सिर स्याम गात। बनमाल हिये उर विप्रलात।२

शब्दार्थ—रविपुत्र=सुग्रीव। मित्रकाम=मित्र के हित की कामना से। बलनिधान=(वह बालि इतना बली था कि राम के बाण से तुरंत मरा नहीं, वरन् थोड़ी देर बाद सँभलकर उठ बैठा)। विप्रलात=भृगुचरण चिन्ह।

मूल—(बालि)—पद्धटिकाछंद—

जग आदि मध्य अवसान एक। जग मोहत हौ बपुधरि अनेक। ⊗
तुम सदा शुद्ध सब को समान। केहि हेतु हत्यो करुणानिधान॥

शब्दार्थ—जग आदि=संसार के उत्पादक। जग मध्य=संसार के पालक। जग अवसान=संसार के संहारक। जग.... एक=संसार के कर्ता, भर्ता और हर्ता आप ही एक हैं; अर्थात् मैं (तुम्हारे भृगुचरण चिह्न से) पहचान गया कि विष्णु के अवतार हो। समान=समदर्शी।

मूल—(राम)—

सुनि वासवसुत बल बुधि निधान। मैं शरणागत हित हते प्रान।
यह साँटो ले कृष्णावतार। तब ह्वैहौ तुम संसार पार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वासवसुत=बालि। साँटो=बदला। संसारपार=मुक्त।

विशेष—कृष्णावतार में बालिने ही जरा नामक व्याधका अवतार लेकर श्रीकृष्णको बाण मारा था।

मूल—रघुबीर रंक ते राव कीन। युवराज विरद अंगदहि दीन।
तब किष्किंधा तारा समेत। सुग्रीव गये अपने निकेत ॥५॥

शब्दार्थ—युवराज विरद=युवराज पद। निकेत=घर।

मूल—दोहा—कियो नृपति, सुग्रीव हति बालि बली रणधीर।
गये प्रवर्षण अद्रि को लक्ष्मण स्यों रघुबीर ॥६॥

शब्दार्थ—अद्रि=पर्वत। स्यों=सहित।

मूल—त्रिभंगी छंद—

देख्यो सुभ गिरिवर, सकल सोमवर, फूल वरन बहु फरनि फरे।
सँग सरभ, ऋक्ष जन, केसरि के गन, मनहु चरन सुग्रीव पर ॥
[illegible]

शब्दार्थ—सोम=शोमा। सरभ=(१) पशु (२) वानरों की एक जाति विशेष। ऋक्ष=(१) रीछ (२) जामवंत। केसरी=(१) सिंह (२) वानरों की एक जाति विशेष—(जिसमें हनुमान जी के पिता मुख्य थे)। सिवा=(१) शृगाली (२) पार्वती। गजमुख=(१) गणेश (२) मुख्य २ जाति के हाथी।

परभृत=(१)कोयल (२) बड़े बड़े सेवक अर्थात् नंदी, भृंगी इत्यादि। चंद्रक=(१) जल (२) चंद्रमा। दिगम्बर=(१)बहुत बड़ा (२) नंगा, वस्त्र-रहित। अहिराज=(१) बड़े सर्प(२) शेष वा वासुकी।

भावार्थ—श्रीरामजी ने उस पवित्र पहाड़ को देखा कि सब प्रकार की शोभा से युक्त है (जो जो वस्तुएँ पर्वत में होनी चाहियें वे सब वहाँ हैं)। अनेक रंग के फूल फूले हैं और बहुत प्रकार के फल भी फले हुए हैं (सब ऋतुओं के फल फूल वहाँ हैं)। अनेक वनपशु, रीछ और सिंहों के गणों से युक्त वह पहाड़है, सो ऐसा जान पड़ता है मानो शरभजाति के वानर, जामवंत तथा केशरी नामक वानर को साथ लिये हुए सुग्रीव सदा श्रीराम के चरणों के नीचे पड़े रहते हैं। (अंतिम दो चरणों में शिव और पर्वत की समता श्लेष से दिखलाई गई है) यह पर्वत मानो शिव है=(कारण यह कि)=शिव के संगमें शिवा (पार्वती) विराजती हैं तो यहाँ भी शिवा हैं (शृगाली हैं), शिवके संग गजमुख (गणेश) गलगंजैं उड़ाते हैं तो यहा भी मुख्य मुख्य (बड़े बड़े) हाथी गरजते हैं, शिव के साथ परभृत (बड़े बड़े सेवक, नंदी भृंगी इत्यादि) स्तुति गान कर उनको प्रसन्नकरते हैं तो यहाँ भी परभृत (कोयल) बोलकर चित्त हरती है, शिव जी सिरपर चंद्रक (चंद्रमा) धारण किये हुए हैं तो यह पर्वत भी निज तन पर

चंद्रक (जलाशय–सरोवरादि) धारण किये है, शिवजी परम दिगम्बर हैं, तो यह पर्वत भी परम दिगम्बर (अति विस्तृत) है, शिवजी अहिराज को धारण करते हैं, तो यह पर्वत भी बड़े बड़े सर्पों को धारण किये हुए है (बड़े बड़े सर्प पर्वत में हैं) अतः इन समताओं के कारण यह पर्वत शिवरूप है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उल्लेख।

सूचना—यह छंद केशव के पांडित्य का नमूना है। ऐसे छंद इस ग्रंथ में अनेक हैं–(देखो प्रकाश २ में छंद नं १०)।

जोगर छंद—सिसु सो लसै संग धाय। बनमाल ज्यों सुरराय॥ अहिराज सो यहि काल। बहु सीस सोभनि माल॥

शब्दार्थ—धाय=(१) दूध पिलानेवाली दाई (२) धवई नामक वृक्ष। बनमाल=(१) विष्णु की प्रसिद्ध माला (२) वनों का समूह, अनेक प्रकार के वृक्षों के पृथक पृथक वन। सुरराय=विष्णु। सीस=(१) सिर (२) गिरिशृंग।

भावार्थ—यह पर्वत शिशु समान शोभित है, क्योंकि जैसे शिशु के संग धाय रहती है वैसेही इसमें भी धवा वृक्ष हैं। यह पर्वत विष्णु के समान है क्योंकि वे भी वनमाला धारण करते हैं और इसमें भी वनों के समूह (वन–माल) हैं। यह पर्वत इस समय (वर्षा में) अपनाग सम है, क्योंकि जैसे उनके बहुत से सुन्दर (मणियुक्त) सिर हैं, वैसे ही इस पर्वत के भी अनेक सुशोभित शृंग (सिर) हैं।

अलंकार—उपमा और श्लेष से पुष्ट उल्लेख।

(वर्षा-काल वर्णन)

मूल--(राम)—स्वागता छंद—

चंद मंद दुति वासर देखौ। भूमिहीन भुवपाल विशेषौ॥
मित्र देखिये सोभत है यौं। राजसाज विनु सीतहि हौं ज्यौं॥९॥

भावार्थ--रात्रि में (शुक्लपक्ष में भी) चंद्रमा मंद द्युति रहता है, दिन भी सुप्रकाशवान नहीं होता। ये दोनों ठीक वैसे ही तेजहीन है जैसे राज्यहीन राजा। सूर्य भी ऐसा मंद द्युति देख पड़ता है जैसा राज्यहीन और विना सीता के मैं हूँ।

अलंकार--पूर्वार्द्ध में दृष्टान्त, उत्तरार्द्ध में उपमा।

मूल-दोहा-पतिनी पति विनु दीन अति, पति पतिनी विनु मंद।
चंद्रविना ज्यों जामिनी ज्यौं विनु जामिनि चंद॥१०॥

शब्दार्थ—मंद=हीनप्रभा। जामिनी=रात्रि।

अलंकार—अन्योन्य।

(वर्षा वर्णन)

मूल—स्वागता छंद—

देखिराम वरषा ऋतु आई। रोम रोम वहुधा दुख दाई॥
आस पास तम की छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई॥११

शब्दार्थ—आस पास=चारो ओर। तम की छवि छाई=घोर अंधकार है। द्यौस=(दिवस) दिन।

अलंकार—तद्गुण।

मूल—मंद मंद धुनि सों घन गाजै। तूर तार जनु आवझ बाजै॥
ठौर ठौर चपला चपकै यों। इन्द्रलोक-तिय नाचति हैं ज्यों १४॥

शब्दार्थ—तूर=तुरही। तार=(ताल) मँजीरा। आवझ=ताशा।

भावार्थ—मंद मंद ध्वनि से बादल गरजते हैं। उनका शब्द ऐसा मालूम होता है मानों तुरही, मँजीरा और ताशे बजते हों, और जगह जगह पर बिजली चमकती है, वह ऐसी मालूम होती है मानो इन्द्रपुरी की स्त्रियाँ (अप्सराएँ) नाचती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। प्रतिवस्तूपमा

मूल—मोटनक छंद—
सोहैं घन स्यामल घोर घने। मोहैं तिनमें बक पाँति मनै॥
संखावलि पी वहुधा जल स्यों। मानो तिनको उगिले बलस्यों

शब्दार्थ—स्यों=सहित।

भावार्थ—घोर काले बादल सोहते हैं, उनमें उड़ती हुई बक-पंक्तियाँ मनों को मोहती हैं। यह घटना ऐसी जँचती है मानो बादल समुद्र से जल पीते समय जलके साथ बहुतसे शंख भी पीगये थे और अब वे ही शंख बल पूर्वक उगल रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल-शोभा अति शक्र शरासन में नाना द्युति दीसति है घनमें
रत्नावलि सी दिविद्वार भनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो१४॥

शब्दार्थ—शक्र-शरासन=इन्द्र धनुष । रत्नावलि=रत्नों की बनी झालर, वंदनवार । दिविद्वार=देवलोक के दरवाजे पर ।

भावार्थ—इन्द्र धनुष अति शोभा दे रहा है, बादलों में नाना प्रकार के रंग देख पड़ रहे हैं । ऐसा जान पड़ता है मानो वर्षा के स्वागत में देवताओं ने सुरपुर के द्वार पर रत्नों की झालर (वंदनवार) बांधी हो ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छंद —
घन घोर घने दसहू दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध विना छिति के तन तायें। तिन पीड़न पीड़ित है उठि धाये

शब्दार्थ—मघवा=इन्द्र । छिति=पृथ्वी ।

भावार्थ—सब ओर घने बादल छाये हुए हैं, मानो इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई की है, (चढ़ाई का कारण यह है कि) सूर्य ने विना अपराध ही पृथ्वी को संतप्त किया है (ग्रीष्म में सताया है) । अतः पृथ्वी के दुःख से दुखित होकर सूर्य को दण्ड देने के लिए इन्द्रदेव उठ दौड़े हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तारक छन्द—
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानो। निरघात सबै पविपात बखानो
धनु है यह गौरमदाइव नाहीं। सरजाल वहै जलधार वृथाहीं॥१६॥

शब्दार्थ—निरघात=(निर्घात) बिजली की कड़क । पविपात=वज्रपात । गौर मदाइन=(बुंदेलखंडी) इन्द्रधनुष। बहै=चलती है।

भावार्थ—बादल अति ज़ोर से गरज रहे हैं वही मानो रण नगारे बज रहे हैं, और बिजली की कड़क के शब्द को वज्र फेंकने का शब्द जानो । यह इन्द्रधनुष नहीं हैं, वरन इसे सुरपति का चाँप समझो और जो बूंदे पड़ती हैं यह बाणवर्षा है, इसे जलधार कहना व्यर्थ है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति।

मूल—तारक छन्द

भट,चातक दादुर मोर न बोलैं।चपला चमकै न, फिरै खँग खोले
दुतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही।धरनी कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही

शब्दार्थ—खँग=(खड्ग)तलवार। दुतिवंत=चन्द्र, शुक्रादि चमकीले ग्रह। चन्द्रवधू=वीरबहूटी नामक लालरंग का सुकुमार कीड़ा।

भावार्थ—ये पपीहा, मेढ़क और मोर नहीं बोलते, वरन् इन्द्र के भट सूर्य को ललकार रहे हैं, यह बिजली नहीं चमक रही है, वरन् इन्द्र महाराज तलवार खोले घूम रहे हैं, और (सूर्य पर क्रुद्ध होने के कारण) समस्त द्युतिमान चमकीले ग्रहों पर विपति डाल दी है,यहाँ तक कि चन्द्रवधुओं को पकड़कर पृथ्वी के हवाले कर दिया है (कि इन्हें मनमाना दंड देकर अपना

बदला लो)।

अलंकार—अपह्नुति । प्रत्यनीक (सूर्य पर क्रुद्ध होकर समस्त द्युतिवंत ग्रहों को दंड देना)।

मूल—तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी । उर में हम चन्द्र प्रभा सम दीसी ॥ वरषा न सुनौ किलकै कल काली । सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—तरुनी=स्त्री (अनुसूया)। चन्द्र=(१) चन्द्रमा (२) सोम नामक अनुसूया का एक पुत्र । किलकै=हँसती है । कल=सुन्दर । अहिमाली=(१)महादेव, (२) सर्प समूह । वर्षा=वर्षा काल के शब्द (दादुर मोरादि वा बिजली की कड़क)।

भावार्थ—(श्री राम जी लक्ष्मण जी से कहते हैं) यह वर्षा अत्रि-पत्नी अनुसूया सी है, क्योंकि जैसे अनुसूया के गर्भ में सोम की प्रभा थी वैसे ही इस वर्षा में भी बादलों में चंद्रप्रभा छिपी है (जैसे सोम नामक पुत्र के अनुसूया के गर्भ में आने से अनुसूया के तन में मंद प्रभा प्रकाशित हुई थी वैसे ही वर्षा में बादलों से ढँका चन्द्रमा मंद प्रकाश देता है) (पुनः कहते हैं) यह वर्षा काल के शब्द नहीं हैं, वरन् काली सुन्दर शब्द से हँस रही है । जैसे काली की समस्त महिमा महादेव ही जानते हैं वैसे ही वर्षा शब्द की समस्त महिमा सर्प समूह ही जानता है (वर्षा में सर्पों को दादुर झिल्ली

इत्यादि जंतु अधिकता से खाने को मिलते हैं अतः वर्षा की महिमा सर्प ही भली भाँति जानते हैं)।

अलंकार—उपमा, अपह्नुति, श्लेष।

(वर्षा-कालिकारूपक)

मूल—घनाक्षरी छंद—भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है। दूरि करी सुख सुख सुखमा ससी की नैन अमल कमलदल दलित निकाई है। केसोदास प्रबल करेनुका गमनहर, मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है। अंबर वलित मति मोहै नीलकंठ जूकी कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है॥ १९॥

सूचना—इस छंद के दो अर्थ स्पष्ट हैं। एक कालिकापक्ष का, दूसरा वर्षा पक्ष का। समंग पद श्लेष अलंकार होने के कारण दोनों पक्ष के हेतु शब्दार्थ भी भिन्न भिन्न होंगे।

शब्दार्थ—(कालिका पक्ष में)-सुरचाप=इन्द्र-धनुष। प्रमुदित=प्रमोदप्रद (उन्नत, पीन)। पयोधर=कुच। भूखन=जेवर। तड़ित=बिजली। रलाई है=मिली हुई है। सुख=सहज ही। सुखमा=शोभा। निकाई=शोभा। प्रबल=मत्त। करेनुका=हथिनी। गमनहर=चालको छीन लेनेवाली। मुकुत=(मुक्त) स्वच्छन्द। हंसक-सबद=बिलुवाओं का शब्द अंबर=कपड़ा। वलित=युक्त। नीलकंठ=महादेव।

भावार्थ—(कालिका-पक्ष का) इन्द्रधनुष ही जिसकी सुंदर भौंहें हैं, घने और बड़े बादल (पयोधर) ही जिसके उन्नत

कुच हैं, विज्जुछटाही जिसके जड़ाऊ ज़ेवरों की चमक है, जिसने अपने मुखसे सहज ही में चन्द्रमा के मुख की शोभा दूर कर दी है (वर्षा में चन्द्रमा मंदज्योति रहता ही है), जिसके निर्मल नेत्रों से कमल की पंखड़ियाँ शोभा-दलित होगई हैं (वर्षा में कमलदल शोभाहीन हो जाते हैं)—केशवदास कहते हैं कि जिसने (कालिका ने) मतवाली हथिनियों की चाल छीन ली है (वर्षा में हाथियों की यात्रा भी बंद रहती है), जिसके बिछुआओं का स्वच्छंद शब्द (झिल्ली आदि का शब्द), सुखदायी है, नीलाम्बर से युक्त हो कर (कालिका ने नीलाम्बर पहन लिया है और वर्षा में मेघाच्छन्न आकाश भी अति नील रहता है) जो नीलकंठ महादेव (वर्षा के मयूर गण) की मति को मोहित करती है वही कालिका देवी (पार्वती) हैं (या यह वर्षा है) ।

शब्दार्थ—(वर्षा पक्ष में) भौ=भय, डर । सुरचाप=इन्द्र-धनुष । प्रमुदित पयोधर=उनये हुए बादल (घनघोर घटा) । भू=पृथ्वी । ख=आकाश । नजराय=देख पड़ती है । तड़ि=बिजली । तरलाई=चंचलता । सुख=सहज ही । मुख सुखमा ससी की=चंद्रमा की प्रभा । नै न अमल=नदियाँ निर्मल नहीं हैं । कमलदल दलित=कमलों के दल दलित हो गये हैं । निकाई=काई रहित हैं (सिवार काई इत्यादि नष्ट हो गये हैं । फ=जल । प्रबल फ=जलकी प्रबल धारा । रेनुकाहर=धूल

को बहा ले जाने वाली । गमनहर=आवागमन बंद करने वाली । सु हंसक-सबद मुकुत=हंसो के शब्द से रहित (वर्षा में हंस बोलते नहीं, कहीं चले जाते हैं) । अंबर=आकाश । बलित=बादलों से युक्त । नीलकंठ=मयूर ।

भावार्थ—(वर्षा पक्ष का) हर्षित होकर ऐसी वर्षा ऋतु आई है जिसमें अनेक भय हैं (अर्थात सर्प बिच्छू आदि के भय वा घर गिरने वा वज्रपात के भय), इन्द्रधनुष है, उनई हुई घन-घोर बादलों की घटा है, और भूमि तथा आकाश में चंचल बिजली की चमक देख पड़ती है, चंद्रमा की सुन्दर प्रभा सहज ही दूर हो गई है, नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं, कमलदल दलित हो गए हैं, जलाशय काई रहित हैं, (केशव कहते हैं कि) जलकी प्रखर धारा ने धूल को बहा दिया है और आने जाने वालों का गमनागमन रोक दिया है (इसी से हम भी सीता की खोज में कहीं जा नहीं सकते), सारा देश सुखप्रद हंस शब्द से रहित है (हंस कहीं चले गये हैं), आकाश बादलों से युक्त है, जिसे देख देख कर मोरों की मति मोहित होती है (वे मस्त हो हो कर नाचते हैं) । यह कालिका है या वर्षा आई है ।

अलंकार—संदेह से पुष्ट सभंगपद श्लेष ।

मूल—तारक छंद—

अभिसारिनि सी समझौ परनारी।सत मारग मेटन की अधिकारी
मति लोभ महामद मोह छई है।द्विजराज सुमित्र प्रदोषमई है।२०।

शब्दार्थ—अभिसारिनि=अभिसारिका नायिका। परनारी=(१) परकीया स्त्री (२)बड़ी बड़ी नालियाँ। सत मारग=(१) धर्ममार्ग (२) अच्छे रास्ते। द्विजराज=(१)चंद्रमा (२)ब्राह्मण। सुमित्र= (१) अच्छे मित्र (२) सूर्य। प्रदोष = (१) बड़ादोष (२) अंधकार

भावार्थ—इस वर्षा से बनी हुई बड़ी बड़ी नालियाँ परकीयाभिसारिका सी हैं। जैसे वे(परकीया स्त्रियाँ) स्वधर्ममार्ग को मेटती हैं, वैसेही इस वर्षा में बड़ी बड़ी नालियों ने अच्छे मार्गों के मिटाने का (काट कर खराब कर देने का) अधिकार पाया है (वर्षा के जलप्रवाह से रास्ते बिगड़ गये हैं)। अथवा यह वर्षा किसी पापी मनुष्य की लोभ-मद-मोह इत्यादि से युक्त बुद्धि है, क्योंकि जैसे पापी की लोभमोहादि ग्रसित बुद्धि ब्राह्मण और अच्छे मित्रों का बड़ा दोष करती है, वैसेही यह वर्षा चंद्रमा और चमकीले सूर्य को अंधकार में छिपाये रहती है।

अलंकार—उपमा और श्लेष से पुष्ट उल्लेख।

मूल—दोहा-बरनत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम-सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई संतत मिथ्या दृष्टि॥ २१॥

शब्दार्थ—विषमगाढ़=अति सघन। तम=अंधकार। संतत= सर्वदा। दृष्टि=(१) नजर (२) आशा, उम्मेद।

भावार्थ—केशव कहते हैं कि वर्षा में ऐसे सघन अंधकार की उत्पत्ति होती है कि सर्वदा (रातोदिन) दृष्टि मिथ्या

प्रमाणित होती है (कुछ दिखाई नहीं पड़ता) जैसे बुरे मनुष्य की सेवा से कोई आशा फलीभूत नहीं होती।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—(राम) दुर्मिल सवैया—

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिये।
यहि काल कराल ते शोधि सबै हठि कै बरषा मिस दूर किये।
अबधौं बिनु प्राण प्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंब हियेरर

शब्दार्थ—कलहंस=छोटे और सुन्दर मधुर शब्द बोलनेवाले हंस। कलानिधि=चन्द्रमा। अनुरूपक=समानवाले, समताके। शोधि=खोज खोज कर। हितू = हितैषी।

भावार्थ—(रामजी कहते हैं) सीता के वियोग में कलहंस, चन्द्रमा, खंजन और कमलों को देख देख कर कुछ दिन तक तो मैं जीवित रह सका, क्योंकि इन वस्तुओं को मैंने मन से सीता की गति, मुख, नेत्र और पैरों के समान वाले पदार्थ मान लिया था। पर कराल काल से यह भी न देखा गया (सीता को तो दूर ही कर दिया था) अब वर्षा के बहाने इन (दिल ३०। ले) पदार्थों को भी खोज खोज कर हठ पूर्वक दूर कर दिया। अब बिना प्रिया के मेरे प्राण किसका अवलंबन करके रहेंगे।

अलंकार—क्रम।

(शरद-वर्णन)

मूल—दोहा—बीते बरषा काल यों आई सरद सुजाति ।
गये अँध्यारी होति ज्यों चारु चाँदनी राति॥ २३ ॥

शब्दार्थ—सुजाति=अच्छे कुल की सुन्दरी स्त्री ।

भावार्थ—वर्षा काल बीतने पर सुन्दरी शरद इस प्रकार आगई जैसे अँधेरी रात बीत जाने पर सुन्दर चांदनी रात आ जाती है (तो आनन्द होता है) ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—मोटनकछंद—

दंतावलि कुंद समान गनो । चंद्रानन कुंतल भौंर घनो ॥
भौंहैं धनु खंजन नैन मनो । राजीवनि ज्यों पद पानि भनो॥२४॥
हारावलि नीरज हीय रमैं । हैं लीन पयोधर अंबर में ॥
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे । हंसी गति केशव चित्त हरे॥२५॥

शब्दार्थ—(छंद २४)—समान = (मानयुक्त) गर्वीले, । कुंतल=बाल । धनु=धनुष- (वर्षा काल में वीर लोग अपने धनुष उतार कर रख देते हैं । शरद काल में उन्हें पुनः दुरुस्त करके पूजते हैं और काम में लाते हैं तथा नवीन धनुष भी बनाये जाते हैं) । राजीव=लाल कमल ।
(छंद २५)-नीरज=कुमुद वा अन्य सफ़ेद पुष्प जो जल में पैदा होते हैं । अथवा मोती (ये भी शरद ऋतु में ही पैदा होते हैं) । पयोधर=(१)बादल (२) कुच । अम्बर=(१)आकाश

(२) कपड़ा। पाटीर=चन्दन। हंसी गति=(१)हंसों की चाल (२) हंसों की चालवाली।

भावार्थ--(पहले शरद को 'सुजाति' सुन्दरी कहा, अतः उसका रूपक छन्द २४, २५ में कहते हैं) छन्द २४-वह शरद सुन्दरी कैसी है। गर्वीले कुन्द पुष्प ही उसके दांत समझो, चन्द्रमा को ही मुख और भ्रमर समूह को केश मानो। वीरों के दुरुस्त कियेहुए वा नवीन बने हुए धनुषों को भौंहें समझो और लाल कमलों को हाथ पाँव कहो।

छंद २५—कुमुद पुष्प वा मोतियों को हृदय पर पड़े हुए हार समझो, और (चूंकि'सुजाति'-सुकुलजाता है अतः लज्जा से) कुचों को कपड़ों में छिपाये है (शरद में बादल आकाश में लीन हो जाते हैं—होते ही नहीं अथवा बहुत कम होते हैं), चाँदनी ही का चंदन तन पर लगाये हुए है, और हंसो की चाल रूपी हंसगति (मंदगति) से चलती हुई चित्त को हरती है।

अलंकार—रूपक-(श्लेष से पुष्ट रूपक)।

—मोटनक छन्द—

श्री नारद की दरसै मति सी। लोपै तम ताप अकीरति सी॥
मानौ पतिदेवन की रति सी। सन्मारग की समझौ गति सी॥२६

शब्दार्थ—तम=(१)अंधकार(२)अज्ञान। ताप=(१)त्रिविधि ताप(२)ताप,गर्मी। अकीरति=(१)अपयश(२)अकर्तव्यता।

पतिदेवा=पतिव्रता स्त्री। रति=प्रेम। सन्मारग=(१)धर्ममार्ग (२)अच्छे रास्ते। गति=(१)सुगति (२)चाल, यात्रा।

भावार्थ—यह शरद ऋतु श्री नारदमुनि की मति सी दिखलाई पड़ती है, क्योंकि जैसे नारद जी की मतिसे (सलाह वा उपदेशसे) अज्ञानांधकार, त्रिताप और अपयश का लोप होता है, वैसे ही इस शरद से भी वर्षा का अंधकार, सिंह के सूर्य की गर्मी तथा अकर्तव्यता (राजकाज दिग्विजयादि, व्यापार, यात्रा आदि बंद रहते हैं) का लोप होता है। अथवा इस शरद को पतिव्रता स्त्रियों के सच्चे प्रेम के समान मानो, क्योंकि जैसे उनके प्रेम से स्वस्वामि-भक्ति रूपी सन्मार्ग की चाल से औरों को सन्मार्ग पर चलने की चाल सूझ पड़ती है, वैसेही इस शरद के आने से सब रास्ते सूझ पड़ने लगे (सब मार्ग चलने योग्य हो गये)—अब हमे भी सीता के खोज में आगे बढ़ना चाहिये।

मूल—दोहा—लक्ष्मण दासी बृद्धसी आई सरद सुजाति। ⊗
मनहु जगावन को हमहिं बीते बरषा राति॥ २७॥

भवार्थ—हे लक्ष्मण। यह शरद ऋतु उत्तम कुलजाता बूढ़ी दासी के समान आगई। मानो वर्षा रूपी रात्रि के बीतने पर हमें जगाने आई है-(इस से स्पष्ट जान पड़ता है कि राजकुमारों को जगाने के लिये बूढ़ी दासियाँ रहती थीं)—तात्पर्य यह कि अब सीता के खोज में सन्नद्ध होना चाहिये।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—कुंडलिया—ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर त
कहियो वचन बुझाय कै कुशल न चाहौ गात ॥
कुशल न चाहो गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीता सोध काम वश राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित लही सुख-सम्पति जाते।
मित्र कह्यो गहि बांह कानि कीजत है ताते ॥२८॥

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र। कुशल न चाहौ गात=क्या अपने शरीर की कुशल नहीं चाहते? बालिहि देख्यो चाहत हौ=बालि के निकट जाना चाहते हो (मरना चाहते हो)। सोध=खोज। राम न लेख्यो=राम को कुछ नहीं समझते। कानि=लज्जा।

मूल—दोहा—लक्ष्मण किष्किंधा गये वचन कहे करि क्रोध।
तारा तब समझाइयो कीन्हों बहुत प्रबोध ॥२९॥

मूल—दोधक छंद—
बोलि लये हनुमान तबै जू। ल्यावहु बानर बोलि सबै जू॥
बार लगै न कहूँ बिरमाहीं। एक न कोउ रहै घर माहीं ॥३०॥

मूल—त्रिभंगीछंद—
सुग्रीव सँघाती, मुखदुति राती, केशव साथहि सूर नये।

शब्दार्थ—संघाती=साथी (जातिवाले)। राती=लाल। साथहि

=लक्ष्मण के साथ ही। सूर नये=नवयुवक उत्साही सूर वीर। आकासबिलासी=आकाश में छलांग मार कर चलने वाले। सूर प्रकासी=सूर्य के समान तेज वाले। आय गये=रामजी के पास आगये। अवगाहन=खोजकरने। चाहन=देखने। यूथप यूथ=दलपति सहित दलके दल। ऋक्षपति=जामवंत।

मूल—दोहा-बुधि विक्रम व्यवसाय युत साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के मुँदरी दीन्हीं हाथ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—बुधि=तात्पर्य यह कि ये बुद्धिमान हैं अतः भेद-नीति से काम लेंगे। विक्रम=बली होने के कारण दंड भी दे सकते हैं। व्यवसाय=तात्पर्य यह कि ये व्यवसाय-कुशल हैं अतः दाम नीति (लेन देन) से भी कार्य साधन कर सकते हैं। साधु=शान्त स्वभाव होने से साम नीति से कार्य साधन करेंगे। बल=सेना। अनंत=असंख्य।

भावार्थ—श्री राम जी ने हनुमान जी को चारो नीतियों में कुशल समझ कर असंख्य सेना के साथ करके अपनी मुद्रिका दे कर दक्षिण की ओर विदा किया।

मूल—हीरक छंद*—

चंडचरन, छंडि धरनि, मंडि गगन धावहीं।
तत्क्षण हुइ दच्छिन दिसि लक्ष्यहि नहिं पावहीं ॥

*हीरक छंद दो प्रकार का है। एक २१ मात्रा का होता है। दूसरा वार्णिक जो १८ अक्षर का होता है। यह वार्णिक हीरक है। इसका रूप है (म, स, न, ज, न, र

धीरधरन बीरबरन सिंधुतट सुभावहीं ।
नाम परम, धाम धरम, राम करम गावहीं ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—चंडचरण=चरणों के बली अर्थात चलने वा कूदने में अति प्रबल (अधक) । छंडि धरनि=पृथ्वी को छोड़कर, उछाल मार कर । मंडि गगन=आकाशमार्ग में शोभित होते हुए । तत्क्षण=उसी समय,तुरंत (ज्योंहीं श्रीराम ने आज्ञा दी) । हुइ दच्छिन दिसि=दक्षिण की ओर मुख करके । लक्ष्यहिं=सीता को । धीर धरन=धैर्यवान । वीर बरन=श्रेष्ठ वीर । सुभावहीं= स्वभाव से ही अर्थात किसी भय वा निराशा से नहीं । नाम परम=परम पुनीत नाम । धामधरम=धर्म का मूल । रामकरम =राम जी के कृत्य (बालि-वध सुग्रीव-मैत्री इत्यादि) ।

भावार्थ—जिस समय श्री राम जी ने आज्ञा दी उसी समय तुरंत दक्षिण दिसा की ओर वे लोग कूदते फाँदते आकाश मार्ग से उड़ते जाने लगे । खोज करते हैं पर सीता को नहीं पाते । तब वे धैर्यवान वीरश्रेष्ठ समुद्र के तट पर बैठ कर सहज स्वभाव से श्री राम जी के कार्यों को (लीलाओं को) ने लगे (कहने लगे, चर्चा करने लगे) ।

मूल—(अंगद) अनुकूला छंद—

शब्दार्थ—अवधि बिनासी=अवधि के दिन बीत गये (३०

दिन का समय दिया गया था)। सकुच=लज्जा। जनक-निहंता=पिता का वध करानेवाला (सुग्रीव)।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) सीता न मिली, और जितना समय दिया गया था वह बीत गया। जो लौट कर घर जाते हैं तो बड़ी लज्जा की बात है, मुझे तो सुग्रीव छोड़ेंगे नहीं (अर्थात् प्राण दंड देंगे) अतः यही उचित है कि अब हम सब यहीं समुद्र तटपर घर बनाकर बस रहें।

मूल—(हनुमान) अनुकूलाछंद—

अंगद रक्षा रघुपति कीन्हीं। सोध न सीता जल,थल लीन्हीं।
आलस छांड़ो कृत उर आनो। होहु कृतघ्नी जानि, सिख मानो

शब्दार्थ—सोध=खोज। कृत=एहसान, भलाई। कृतघ्नी=एहसान फरामोश, नमकहराम।

भावार्थ—(अंगद ही इस यूथ के प्रधान थे। उनको हताश देखकर हनुमानजी कहते हैं) हे अंगद! राम जी ने तुम्हारी रक्षा की है (यद्यपि पिता को मारा है, पर तब भी तुम्हें युवराज पद दिया है) उस के बदले तुमने अभी पूर्ण कृतज्ञता नहीं दर्शाई। तुमने सीता की खोज स्थल में तो की है पर अभी जल में नहीं की (अतः तुम्हें समुद्रस्थ द्वीपों में खोजना चाहिये) अतः राम जी का एहसान स्मरण करके तुम्हें आलस्य छोड़ कर उद्योग करना चाहिये। कृतघ्नी मत बनो, मेरी शिक्षा मानो।

मूल—(अंगद) दंडकछंद (रूप घनाक्षरी)—

जीरण जटायुगीध धन्य एक जिन रोंकि, रावण विरथ कीन्हों निज प्राण हानि। हुते हनुमंत बलवंत तहां पांच जन, भूषन कछूक नररूप जानि॥ आरत पुकारत ही राम राम बार बार, लीन्हों न छँड़ाय तुम सीता आनि भीति मानि। गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि॥ ३६॥

शब्दार्थ—जीरण=बुड्ढा। एक=अकेला। विरथ=रथहीन। हुते=थे। पांचजन=सुग्रीव, हनुमान, नल, नील और सुखेन। ही=थी। भीति=डर। न पुकार लागै=बचाने को न दौड़े। भोगवै=भोगता है। अभयदानि=दंड न देनेवाला।

अलंकार—(अंगद जी हनुमान जी को उत्तर देते हैं) बुड्ढा जटायु धन्य है, जिसने अकेला ही होने पर रावण को रोका था और अपने प्राण देकर रावण को रथहीन कर दिया था। हे हनुमान! तुम तो बली पाँच जन थे और कुछ कुछ नररूप धारी जानकर सीताने तुम्हें कुछ भूषण भी दिये थे (जटायु को तो कुछ दिया भी न था) तथा दुखित होकर बार बार राम राम कहकर पुकारती थी, तब ही तुमने सीता को क्यों नहीं छीन लिया, तब तो तुम अत्यंत डर गये थे (अब बड़ी बड़ी बातें मारते हो और मुझे कृतघ्न बतलाते हो)। सुनो! नीति यह कहती है कि गाय, ब्राह्मण, राजा, और स्त्री को (विपत्ति में देखकर)

जो बचाने को न दौड़े और जो चोर को दंड न दे वह घोर नरक भोगता है—(कैसा मुहँतोड़ जवाब है)।

मूल—दोहा—सुनि संपाति सपक्ष है राम चरित सुख पाय।
सीता लंका माँझ है खगपति दई बताय॥३७॥

भावार्थ—संपाति=जटायु का भाई। सपक्ष है=पुनः नवीन पंखयुक्त होकर। खगपति=संपाति (आदर से खगपति शब्द कहा गया है)।

मूल—दंडक—हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस, लीकसी लिखत नभ पाहनके अंकको। तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधौं, लच्छन को बाण छूट्यौ रावण निशंक को॥ गिरिगिज गंड ते उड़ान्यो सुबरन अलि, सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को। हवाई सी छूटी केशोदास आसमान में कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंकको॥ ३८॥

शब्दार्थ—हरि कैसो वाहन=गरुड़ के समान (अतिवेग से)। हेमहंस=सुवर्ण के रंग का हंस। लीक=रेखा। पाहन =कसौटी। लच्छन=लक्ष्मण। गंड=गाल। सुबरन अलि= पीला भौंरा। कलंकरंक=कलंकरहित (जिसमें कलंक न हो)। हवाई=(बुँदेलखंडी शब्द) आतशबाजी का बाण। कमान=तोप।

भावार्थ—(हनुमान जी की छलांग का वर्णन। सुन्दर नामक पर्वत पर से उछल कर उसपार सुवेल नामक पर्वत पर जा गिरे—उसीकी उपमायें हैं) विष्णु भगवान

के वाहन (गरुड़) के समान, या ब्रह्मा के पीले हंस के समान, आकाशरूपी नीली कसौटी पर सोने कीसी रेखा खींचते हुए (शीघ्रतापूर्वक) उड़गये या तेज-निधान हनुमान रामचंद्र की मुद्रिका को विमान बनाकर उड़गये, या निशंक रावण के मारने को लक्ष्मण का बाण छूटा, या (सुन्दर नामक) पर्वत रूपी हाथी के गाल पर से पीला भौंरा उड़कर सीता जी के निष्कलंक पदकमल की ओर उड़गया, या आकाश में आतशबाजी का बाण छूट गया, या तोप के गोला के समान हनुमान जी लंका को चले।

—उपमा और रूपक से परिपुष्ट संदेह।

किष्किंधा कांड की कथा समाप्त।

(सुन्दर कांड)

मूल—दोहा—उदधि नाकपतिशत्रु को उदित जानि बलवंत।
अंतरिच्छ ही लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमंत२५

शब्दार्थ—उदधि=समुद्र। नाकपतिशत्रु=मैनाक। उदित=उठता हुआ। अंतरिच्छ ही=आकाशही से। लच्छि=देखकर। पद अच्छ=(अक्षपद) नजरके चरणों से (केवल दृष्टि मात्र से)।

भावार्थ—बलवान हनुमान जी ने समुद्र में (विराम देने के हेतु) मैनाक को उठता हुआ देख कर आकाश ही से केवल दृष्टि के पैर से छुवा (वहां उतर कर विश्राम नहीं किया)।

सूचना—'पदअक्ष' शब्द में विसंधि और यतिभंग दूषण पड़ता है।

मूल—दोहा—बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि४०

शब्दार्थ—बीच=आधे मार्ग में। सुरसा=सर्पों की माता। सिंहिका=राहुकी माता, छायाग्राहिणी। कढ़े=निकले।

मूल—तारक छंद—कछुराति गये करि दंश दसासी। पुरमाँझ चले बनराजि-विलासी। जब ही हनुमंत चले तजि शंका। मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका॥४१॥

शब्दार्थ—करि दंश दसा सी=(मसक समान रूप कपि धरी-तुलसी)। दंश=डाँस, मसा। बनराजिविलासी=वनों में विचरनेवाले हनुमान जी। तिय ह्वै=स्त्रीरूप धर कर।

मूल—(लंका) तारक छंद—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हो। अति सूक्षम रूप धरे मन मोहो॥ पठये केहि, कारण कौन चले हो। सुर हो किधौं कोउ सुरेश भले हो॥४२॥

शब्दार्थ—मोहि उलंघि=मेरी अवहेलना करके।

भावार्थ—(लंका नाम्नी राक्षसी हनुमान जी से पूछती है) बतलाओ तुम कौन हो, जो मेरी अवहेलना करके नगर के भीतर जारहे हो, तुम अति छोटा रूप धारण करके मन को धोखा देते हो (अर्थात् छोटा जंतु जानकर कोई तुम्हारी परवाह न करेगा ऐसा समझकर तुमने धोखा देने की ठानली

है) । किस कारण और किसके भेजे हुए तुम लंका को चले हो, तुम कोई सुर हो, या भलेमानस इन्द्र हो ।

अलंकार—संदेह ।

मूल—(हनुमान)—हम वानर हैं रघुनाथ पठाये ।
तिनकी तरुणी अवलोकन आये ॥
(लंका) —हति मोहि महामति भीतर जैये ।
(हनुमान) तरुणीहि हते कबलौं सुख पैये ॥ ४३ ॥

—(हनुमान जी कहते हैं) हम राम जी के भेजे हुए वानर हैं, उनकी स्त्री को खोजने आये हैं । (लंका कहती है) हे महामति ! मुझको मारकर तब नगर के भीतर जाइये (जीते जी मैं भीतर न जाने दूँगी) । (तब हनुमान जी कहते हैं) स्त्री को मार कर कब तक सुख पावेंगे (अर्थात् स्त्री को मारना महापाप है—कैसे मारें) ।

मूल—तारक छंद—(लंका) तुम मोरहि पै पुर पैठन पैहौ ।
हठ कोटि करौं घरही फिरि जैहौ । हनुमंत बली तेहि थापर मारी । तजि देह भई तबही वर नारी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—थापर=थप्पड़ ।

विशेष—आगे के छंद में लंका अपना हाल स्वयं कहती है।

मूल—(लंका) चौपाई छंद—

धनदपुरी हौं रावन लोनी । बहुविधि पापन के रस भोनी ॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हौंवर करुणा करि मोकहँ दीन्हौं ॥

जब दसकंठ सिया हरि लैहैं। हरि हनुमंत विलोकन पैहैं॥
जब वह तोहि हतै तजि संका। तब प्रभु होय विभीषन लंका४६
चलन लगो जब हीं तब कीजै। मृतक सरीरहि पावक दीजो॥
यह कहि जात भई वह नारी। सब नगरी हनुमंत निहारी४७॥

शब्दार्थ--(४५) धनद=कुबेर। भीनी=भीगी हुई। बर=वरदान। (४६) हरि=वानर।

मूल-चौपाई-तब हरि रावन सोवत देख्यो। मनिमय पलिका की छवि लेख्यो॥ तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं। बिच बिच आवझ वीण बजावैं॥ ४८॥

भावार्थ--तब वानर (हनुमान) ने रावण को मणि जटित सुवर्ण के पलंग पर सोते देखा। वहाँ बहुत स्त्रियाँ गाना गाती थीं, और बीच बीच में ताशे और वीणा भी बजाती थीं।

मूल—चौपाई छंद—मृतक चिता पर मानहु सोहै। चहुँ दिस प्रेतवधू मन मोहैं॥ जहँ जहँ जाय तहाँ दुख दूनो। सिय बिन है सिगरो पुर सूनो॥ ४९॥

भावार्थ—(रावण पलंग पर सोता है, वह कैसा जानपड़ता है) मानो चिता पर मुर्दा पड़ा है, और इर्द गिर्द गाती बजाती हुई स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो प्रेतिनियाँ हैं। (तदनन्तर अन्यान्य घरों को देखा, पर) जहाँ जहाँ हनुमान जी जाते हैं तहाँ तहाँ (सीता को न पाकर) उन्हें बड़ा दुख होता है। सारा नगर (प्रति घर ढूँढ़ डाला) सीता बिना शून्य देखा।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥ कहूँ यक्षिणी पक्षिणी ढै पढ़ावैं। नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥ ५०॥

शब्दार्थ—किन्नरी=किन्नरों की कन्यायें। किन्नरी=सारंगी। सुरी= देव कन्यायें। आसुरी=असुर कन्यायें। यक्षिणी= यक्षकन्यायें। पक्षिणी=शारिका, मैना आदि पक्षी। नगी-कन्यका=पार्वत्य प्रदेश की कन्यायें (कश्मीर या तिब्बत देश की)। पन्नगी=नागकन्यायें।

भावार्थ—कहीं किन्नर कन्यायें सारंगी लिये बजा रही हैं, कहीं देव कन्यायें तथा असुर कन्यायें बाँसुरी में गीत गा रही हैं। कहीं यक्षकन्यायें शारिका इत्यादि को पढ़ा रही हैं, कहीं पार्वत्य प्रदेशी कन्यायें नागकन्याओं को नचा रही हैं (अनेक प्रकार के वैभवसूचक राग-रंग हो रहे हैं)।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—पियें एक हाला गुहैं एक माला। बनी एक बाला नचै चित्रशाला॥ कहूँ कोकिला कोक की कारिका को॥ पढ़ावैं सुवा लै सुकी सारिका को॥ ५१॥

शब्दार्थ—हाला=शराब। चित्रशाला=रंगशाला, नाचघर। कोक की कारिका=कोकशास्त्र के श्लोक। कोकिला=कोकिलकंठी स्त्रियाँ। सुकी=सुनी। सारिका=सारो, मैना (पक्षी)।

भावार्थ—कहीं कोई स्त्री मदिरा पीती है, कोई माला गूँथती है, कोई बनी ठनी युवती नाचघर में नाचरही है, कहीं कोई

कोकिलकंठी स्त्री सुवा को सुग्गी और मैना के साथ लेकर (पिंजरों में एकत्र करके) कोकशास्त्र के मंत्र (आलिंगन चुंबनादि की परिभाषायें) पढ़ा रही है।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—फिर्‌यो देखि कै राजशाला सभा का। रह्यो रीझि कै, वाटिका की प्रभा को॥ फिर्‌यो ओर चौहूँ चितै शुद्धगीता। बिलोकी भली सिंसिपामूल सीता॥५२॥

शब्दार्थ—राजशाला=राजभवन (रावण का महल)। प्रभा =सुन्दर शोभा। ओर चौहूँ=चारो ओर। शुद्धगीता=सर्व प्रशंसित (सीता का विशेषण है)। सिंसिपा=(शिंशिपा) शीशमवृक्ष। सिंसिपामूल=शीशम के नीचे।

भावार्थ—राजमहल को देखकर, हनुमान राजसभा की ओर गये और उसका सौन्दर्य और वैभव देखकर रीझ रहे। (जब सीता को कहीं नहीं देखा तब) वाटिका की ओर गये और चारो ओर घूम कर देखा तो एक शीशम के पेड़ के नीचे सर्व प्रशंसित सीता को बैठे देखा।

(सीता की वियोगिनी मूर्ति)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—धरे एक वेणी मिली मैल सारी। मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥ सदा राम नामै रटै दीन वानी। चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥ ५३॥

शब्दार्थ—धरे एक वेणी=सब बाल उलझ कर एकत्र होकर एक लंबी जटा सी बन गई है। मृणाली=कमलदंड, मुरार।

पंक=कीचड़। ररै=रटती है। राकसी=राक्षसी।

भावार्थ—(हनुमान जी ने सीता जी को किस रूप में देखा कि) सब बाल उलझ कर सिर पर एक जटा सी बन गई है और साड़ी मैली हो रही है। ऐसी जान पड़ती है जैसे कीचड़ से निकाली हुई मुगर हो। सदा दीन वाणी से राम शब्द रटती हैं, और चारो ओर दुःखदायिनी राक्षसियाँ घेरे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—प्रसी बुद्धि सी चित्त चिंतानि मानो। किधौं जीभ दंतावली में बखानौं॥ किधौं घेरि के राहु नारीन लीनी। कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी॥ ५४॥

भावार्थ—मानो चित्त की चिंताओं से बुद्धि ग्रसी हो, या दाँतों के बीच में जीभ ही कहो, या राहुकी स्त्रियों ने सुन्दर अमृतयुक्त चंद्रकला को घेर लिया हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

मूल—भुजंग प्रयात छंद—किधौं जीव की जोति मायान लीनी। अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥ मनो संबरखीन में कामवामा। हनूमान ऐसी लखी राम रामा॥ ५५॥

शब्दार्थ—जीव की जोति=सच्चिदानन्द की अंश स्वरूपा जीवात्मा। माया=अज्ञान कृत्य। अविद्या=सांसारिक विषयों में लीन बुद्धि। विद्या=पारमार्थिक बुद्धि। प्रवीनी=निपुण। संबरखीन=शंबर नामक असुर की स्त्रियाँ। कामवामा=रति।

राम रामा=रामपत्नी सीता ।

भावार्थ—या माया में लीन सच्चिदानंद की अंश स्वरूपा जीवात्मा है, या निपुण पारमार्थिक बुद्धि सांसारिक विषय संबंधी बुद्धियों में फँसी है, या मानो शंवरासुर की स्त्रियों के बीच में रति है, श्रीहनुमान जी ने सीता जी को ऐसी दशा में देखा ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

(रावण का आना और सीता प्रति वार्ता)

मूल—भुजंगप्रयातछंद—तहाँ देव द्वेषी दसग्रीव आयो । सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो ॥ सबै अंगलै अंग ही में दुरायो । अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—देवद्वेषी=देवताओं का शत्रु । दसग्रीव=रावण । सबै....दुरायो=अति लज्जा से सब अंगों को सिकोड़कर बैठीं । अधोदृष्टिकै=नीचेको दृष्टि करके ।

भावार्थ—वहाँ उसी समय देवशत्रु रावण आगया । उस का आगमन सुनकर देवी सीता अत्यंत दुखी हुईं और लज्जासे सिकुड़ कर बैठ गईं और नीचे को दृष्टि करके रोने लगीं (जिससे आँसुओं की धारा बह चली) ।

मूल—(रावण)भुजंगप्रयातछंद—सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै । इतो सोच तो राज काजै न कीजै ॥ बसै दंडकारण्य देखै न कोऊ । जु देखै महा बावरो होय सोऊ ॥ ५७ ॥

भावार्थ--(रावण सीतामति कहने लगा) हे देवि ! मुझ पर कुछ तो कृपादृष्टि करो, राम के लिये इतना सोच मत करो। वे राम तो वनवासी हैं, कोई उन्हें देखता भी नहीं (कोई जरा भी सम्मान नहीं करता-मैं राजा हूँ, सम्मानित हूँ) वे राम ऐसे भेष से हैं कि जो कोई उन्हें देखे वह भी बावला हो जाय (तपस्वी भेषसे हैं अतः शृंगार मय सुन्दर रूप नहीं है)।

५ रावण के वचनों का साधारण अर्थ तो विरोधी पक्ष में निन्दामय जान पड़ता है, पर रामभक्त टीकाकार सरस्वती उक्तार्थ के बलपर एक दूसरा अर्थ भी करते हैं।

सरस्वतीउक्तार्थ--हे देवि ! अब मुझ पर कृपादृष्टि करो मैं शीघ्र इस निश्चर शरीरसे मुक्ति पाऊँ। (यदि कहो कि रामभजन करके मुक्तिकी इच्छा कर, तो उसका उत्तर यह है कि) मैं राम भजन की इतनी चिंता नहीं करता-जितनी चिंता तुम्हारे भजन की है, क्योंकि राम का भजन ऐसा कठिन है कि दंडकारण्य में रहनेवाले तपस्वियों में से भी कोई उन राम को नहीं देख सकता (और आप तो प्रत्यक्ष मेरे सामने मौजूद हैं) और जो कोई उनको देख पाता है वह महा बावला ही होता है अर्थात् शंकर सरीखे परमहंस-स्वरूप लोगही उनके दर्शन पा सकते हैं-(मैं तामसी प्रकृति के कारण उस उच्च परमहंसपद तक पहुँच नहीं सकता, अतः

का भजन तो मुझ से न हो सकेगा, आपकी ही शरणलेता
, आपही कृपादृष्टि से मुझे मुक्ति दीजिये)।

लंकार—व्याजस्तुति।

ल—भुजंगप्रयातछंद—कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हेतू नग्न मुंडीनहीं को सदा है॥ अनाथै सुन्यो मैं अनाथानु-
सारी। बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥ ५८॥

ावार्थ—(रावणपक्षका) तेरा पति राम कृतघ्नी है
(क्योंकि तू तो सहानुभूति से उनके साथ बन में आई और
उन्होंने तुझे अकेली बन में छोड़ शिकार में मन लगाया,
तेरी कुछ परवाह न की) कृपण भी है (तुझे अच्छे अच्छे
वस्त्राभूषण देकर तेरा सम्मान नहीं करता, मैं तुझे अच्छे अच्छे
वस्त्राभूषण दूँगा) वह कुकन्याओं को चहता है (पर स्त्रियों
का प्रेमी है—शवरी इत्यादि को चाहता है) सदा नंगे और
मुड़िया साधु वैरागियों का हितुवा है अर्थात् राजसी ठाट
बाट कुछ भी नहीं है। स्वयं अनाथ (निराश्रय) है और
अनाथों ही का आश्रयी है (राजपाट कुछ भी नहीं और न
राजों से मेल ही है) उसके चित्त में सदा जटाधारी दंडी
मुंडी (तपस्वी ही) बसा करते हैं अर्थात् वह तुझ जैसी
सुन्दरी स्त्री की कदर नहीं जानता, अतः तुझे समुचित प्यार
नहीं करता।

नोट—नीति-कुशल रावण पति के दोष दिखलाकर सती

सीता को निजवश में करना चाहता है।

सरस्वतीउक्तार्थ—राम कृतज्ञी हैं अर्थात भक्तों के समस्त अच्छे बुरे कर्मों को नाशकरने वाले हैं, कुदाता हैं अर्थात् (कु=पृथ्वी) पृथ्वी देनेवाले हैं (दासों को राजपाट सब कुछ देते हैं) और कु-कन्या (पृथ्वी की पुत्री) सीता को चाहते हैं, नंगे दंडी मुंडी (साधु परमहंसादि) इत्यादि के परम हितू हैं, स्वयम् अनाथ हैं (जिसका कोई भी नाथ न हो-जिसके ऊपर कोई न हो स्वयम् परम स्वतंत्र हो) और अन्य अनाथलोग (आश्रयहीन जन) उनके पीछे चलते हैं (उनका आश्रयलेते हैं) और दंडी (सन्यासी लोग) और जटा तथा मुंडमालधारी शिवजी के चित्त में बसते हैं।

अलंकार—लेष और व्याजस्तुति।

मूल—भुजंगप्रयात—तुम्हें देवि दूषैं, हितू ताहि मानै। उदासीन तासों सदा ताहि जानै॥ महा निर्गुणी नाम ताको न लीजै। सदा दास मोपै छपा क्यों न कीजै॥ ५९॥

भावार्थ—(रावणपक्षका) हे देवि! तुम्हारा पति राम उसी को अपना हितू समझता है जो तुम्हें दूषण देता है (तुम्हारी निंदा करता है) अतः उसको तुम अपनी ओर से सदा उदासीन समझो (उसे तुम्हारी कुछ परवाह नहीं है)। वह महा निर्गुण है (उस में कोई गुण नहीं है) उसका नाम मत लो। और मैं तो आपका सदा दासवत् पूजन करूँगा।

मेरे ऊपर कृपादृष्टि क्यों नहीं की जाती।

दूसरा अर्थ—(भक्तपक्षका)—हे देवि ! श्री राम जी उन्हीं को हितू समझते हैं जो तुम्हारे देवीरूप (लक्ष्मी) को दोषपूर्ण समझकर धन सम्पत्ति की इच्छा नहीं करते और जिसे सदा ही तुम्हारी ओर से उदासीन जानते हैं। वे महा निर्गुण हैं (सत-रज-तम से परे अर्थात् त्रिगुणातीत हैं) उनका कुछ नाम ही नहीं है इसी से उनका नाम ही नहीं जपा जा सकता—वे पूर्ण निर्गुण ब्रह्म हैं, उनकी उपासना मुझसे न हो सकेगी। आपतो प्रत्यक्ष मूर्तिमान सगुण रूपा मेरे सामने मौजूद हैं। आप मुझे अपना सदैव का दास समझ कर कृपा क्यों नहीं करतीं (कृपादृष्टि से मुक्ति प्रदान क्यों नहीं करतीं)।

अलंकार—श्लेष, व्याजस्तुति।

मूल—भुजंगप्रयात—अदेवी नृदेवीन की होहु रानी। करैं सेव बानी मघोनी मृडानी॥ लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं। सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावैं॥ ६०॥

शब्दार्थ—अदेवी=राक्षसियाँ। नृदेवी=रानियाँ। बानी=सरस्वती। मघौनी=(मघवानी) इन्द्रकी स्त्री शची। मृडानी=भवानी, पार्वती। किन्नरी=(१) किन्नरों की स्त्रियाँ (२) सारंगी। सुकेसी=अप्सरा विशेष। उर्वसी=अप्सरा विशेष।

भावार्थ—(रावणपक्षका) पत्नी रूपसे मेरे महलों में चल

कर रहो और मेरे घर जो राक्षसियाँ वा नरकन्यायें मेरी पत्नी हैं उन सब की रानी (पूज्य) बनो। (ऐसा करने से) सरस्वती शची और पार्वती भी तुम्हारी सेवा करेंगी। किन्नर कन्याएँ सारंगी लिये तुम्हें गीत सुनावेंगी, और सुकेशी उर्वसी इत्यादि अप्सराएँ तुम्हारे सामने नाच कर अपने को सम्मानित समझेंगी—अर्थात् तुम्हें सब रानियों में सर्वश्रेष्ठ पद दूगाँ और सब प्रकार के भोग विलास करोगी।

दूसरा अर्थ—(भक्तपक्ष का) हे सीता! दैत्यकन्याओं और राजरानियों की भी रानी हो, तुम्हारी सेवा सरस्वती, शची और भवानी भी करती हैं, सारंगी लिये किन्नरकन्यायें तुम्हारे सामने गीत गाती हैं और सुकेशी तथा उर्वसी इत्यादि अप्सराएँ तुम्हारे सामने नाचकर सम्मान पाती हैं (तुम समस्त शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ शक्ति हो)।

अलंकार—उदात्त।

मूल—मालिनीछंद—तृन बिच देइ बोली साय गंभीर बानी। दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी॥ दसरथसुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूढ नासै॥ ६१॥

शब्दार्थ—गभीर=निर्भयता से। भासै=शोभित नहीं होते। स्यों=सहित।

भावार्थ—सीता जी ने एक तिनका बीच में करके रावण को निर्भयतायुक्त उत्तर दिया कि हे शठ रावण! तू क्या और

तेरी राजधानी क्या ? जब राम से वैर करके रुद्र और ब्रह्मा भी शोभा नहीं पा सकते तो तू बेचारा निश्चर (ऐसा करने से) क्यों न समूल नष्ट हो जायगा।

मूल—मालिनीछंद—अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी। खल सर खर धारा क्यों सहै तिक्ष ताकी ॥ विड़कन घन घूरे भाखि क्यों बाज जीवै। सिवसिर ससिश्रीको राहु कैसे सु छीवै ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—तनु=बारीक। तिक्ष=तीक्षण। विड़कन=गलीज के कण। घन=बहुत। ससिश्री=चंद्रमा की शोभा। छीवै= (बुंदेलखंडी) छुवै।

भावार्थ—हे रावण ! जिन की खींची हुई पतली धनुरेखा तुझ से जरा भी लाँघी नहीं गई, उन के तेज बाणों की तीक्षण धारा तू कैसे सह सकता है। घूरे में पड़े हुए बहुत से विष्ठाकणों को खाकर बाज पक्षी कैसे जीवित रहैगा—(तेरा राज वैभव मैं विष्ठावत् समझती हूँ)—और तू मुझे उसी तरह नहीं छू सकता जैसे शिवजीके सिर पर के चंद्रमा को राहु नहीं छू सकता।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति से पुष्ट दृष्टान्त।

मूल—मालिनीछंद—उठि उठि शठ ह्याँ ते भागु तौलौं अभागे। मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौं न लागे ॥ विकल सकुल देखौं आसुही नास तेरो। निपट मृतक तोको रोप मारै न मेरो ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—बिसर्पी=तेज चलनेवाले। आसु=अति शीघ्र।

भावार्थ—हे अभागे रावण। उठ और यहाँ से तब तक भग कर अपने प्राण बचाले जब तक मेरे शीघ्र गामी वचन-सर्प तुझे नहीं डसते। मैं शीघ्र ही कुलसहित तेरा नाश देख रही हूँ, तुझको निपट मृतक जानकर मेरा रोष तुझे नहीं मारता।

मूल—दोहा—अवधि दई है मासकी कह्यो राक्षसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो युक्तिछुरी सों छोलि॥६४॥

शब्दार्थ—युक्ति छुरी सों छोलि=इसका भाव यह है कि यदि कुछ कष्ट पहुँचाने की जरूरत पड़े तो कष्ट भी पहुँचाना।

अलंकार—व्याजोक्ति।

(सीता-हनुमान संवाद)

मूल—चामरछंद—देखि देखि कै अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यो॥
ठौर पाइ पौनपूत डारि मुद्रिका दई।
आस पास देखि कै उठाय हाथ कै लई॥६५॥

शब्दार्थ—जु अंग आगि ह्वै रह्यो=तू सर्वांग अग्निवत् हो रहा है (अर्थात लाल पल्लवयुक्त हो रहा है और मुझे विरहाग्नि से संतप्त करता है)। ठौर=मौका, सुअवसर। उठाय हाथ कै लई=(बुँदेलखंडी मुहावरा है) हाथ से उठा ली, उठा कर हाथ में लेली।

भावार्थ—अशोक वृक्ष को नवपल्लव युक्त देख कर सीता जी ने कहा, हे अशोक ! तू जो सर्वांग अग्निमय हो रहा है, मुझ पर कृपा कर और थोड़ी अग्नि मुझे भी दे (जिससे मैं जल मरूँ) । ऐसा अच्छा मौका पाकर हनुमान जी ने ऊपर से श्रीराम जी की अँगूठी गिरादी (और उसे अग्निकण जान कर)सीता जी ने इधर उधर देख कर–कि कोई है तो नहीं–अपने हाथ से उठाली ।

अलंकार—भ्रम ।

मूल—तोमरछंद–जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ॥
यह कह्यौ लखि तब ताहि । मनि जटित मुँदरी आहि ॥६६॥
जब बाँचि देख्यो नाँउ । मन पर्‍यो संभ्रम भाउ ॥
आचाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥ ६७ ॥
बिछुरी सु कौन उपाउ । केहि आनियो यहि ठाँउ ॥
सुधि लहौं कौन प्रभाउ । अब कांहि बूझन जाउँ ॥ ६८ ॥
चहुँ ओर चितै सत्रास । अवलोकियो आकास ॥
तहँ साख बैठो नीठि । तब पर्‍यो वानर दीठि ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—(६६) सियरी=ठंढी । (६७) संभ्रम=भारी भ्रम । आचाल ते=बचपन से । (६८) सुधि=ठीक हाल । कौन प्रभाउ=किस भाँति । (६९) सत्रास=डर से (डर यह कि रावण कोई राक्षसी माया तो नहीं रच रहा है)। अवलोकियो= देखा । नीठि=मुशकिलसे, कठिनता से ।

मूल—तोमरछंद-तब कह्यो को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि
कै पक्ष पक्ष-विरूप । दसकंठ वानर रूप ॥७०॥

शब्दार्थ—मोतन चाहि=मेरी तरफ देख। पक्ष=मेरे पक्ष वाला (राम पक्ष का कोई दूत वा सहायक)। पक्ष-विरूप= शत्रु पक्ष का (रावण की ओर का कोई मायावी हितैषी)।

भावार्थ—तब सीताजी ने पूछा तू कौन है ? तू सुर है वा असुर ? मेरी ओर तो देख। तू मेरे पक्ष का है वा शत्रुपक्ष का, अथवा तू रावण ही है वानर रूप धर कर मेरे साथ माया रचता है ?

अलंकार—संदेह।

मूल—कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद॥
कहि येगि वानर पाप । नतु तोहिं देहौं शाप ॥७१॥
उरि वृक्ष साखा झूमि । कपि उतरि आयो भूमि ॥
संदेस चित महँ चाइ । तब कही बात बनाइ ॥७२॥

शब्दार्थ—(७१) खेद=डर । पाप=छल कपट। (७२) संदेस चित महँ चाइ=सीता के चित्त में राम का संदेसा पाने की चाह समझ कर।

मूल—पद्धटिकाछंद—
कर जोरि कह्यो हौं पौनपूत। जिय जननि जानि रघुनाथ दूत
रघुनाथ कौन दशरथनंद। दशरथ कौन अज तनय चंद ॥७३॥
केहि कारण पठये यहि निकेत । निज देन लेन संदेस हेत।
गुण रूप सील सोभा सुभाउ। कछु रघुपति के लक्षण सुनाउ॥७४

शब्दार्थ—(७३) चंद=इस शब्द का अन्वय 'अज' के साथ है अर्थात 'अजचंद'। (७४)—निज देन लेन संदेस हेत=निज संदेसा पहुँचाने के लिये और आपका सँदेसा लेजाने के लिये। 'हेत' शब्द का अन्वय लेन तथा देन के साथ है—अर्थात् देन हेत, लेन हेत।

भावार्थ—(छंद ७३) बहुत सरल है। (छंद ७४)सीता जीने पूछा कि राम ने तुझे यहाँ क्यों भेजा है, हनुमान ने कहा 'अपना सँदेसा तुम्हें सुनाने के लिये और तुम्हारा सँदेसा उनके पास लेजाने के लिये। (तब पुनः सीताने कहा) राम जी के कुछ लक्षण बताओ–उनमें कौन सा विशेष गुण है, उनका कैसा रूपहै, कैसा शील है और स्वभाव कैसा है–(ये सब बातें हनुमान की सत्यता जाँचने के लिये पूछी गई हैं)।

मूल—(हनुमान)—पद्धटिका छंद—

अति जदपि सुमित्रानंद भक्त। अति सेवक हैं, अति सूर सक्त।
अरु जदपि अनुज तीनो समाने। पै तदपि भरत भावत निदान ७५

भावार्थ—हनुमानजी श्रीराम का विशेष गुण बतलाते हैं कि यद्यपि लक्ष्मणजी उनके बड़े भक्त हैं, उनकी बड़ी सावधानी से सेवा करते हैं, बड़े शूर और शक्तिमान हैं, और यद्यपि तीनो ही भाई ऐसे हैं, तथापि भरत ही पर राम का अधिक प्रेम रहता है।

मूल-पद्धटिकाछंद-

ज्यों नारायन उर श्रीवसंति। त्यों रघुपति उर कछु दुति लसंति
जग जितने हैं सब भूमि भूप। सुर असुर न पूजैं रामरूप॥७६॥

भावार्थ—(राम के रूप की विशेषता) जैसे नारायण भगवान के हृदय पर श्रीवत्स का चिह्न है, त्योंही श्रीरामजी के हृदय में भी द्युतिमान चिह्न है। इस जगत में जितने राजे हैं, वे और सुर अथवा असुर कोई भी राम के सौन्दर्य की बराबरी नहीं कर सकता।

मूल—(सीता)—निशिपालिकाछंद-मोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई। प्रीति केहि धौं सुनर बानरनि क्यों भई। बात सब वर्णि परतीति हरि त्यों दई। आँसु अन्हवाय उर लाय मुँदरी लई॥ ७७॥

भावार्थ—(सीताजी पुनः बोलीं) इन बातों से भी मुझे विश्वास नहीं होता कि तू सचमुच रामका दूत है। अच्छा-यह बतला कि नर बानरों में प्रीति कैसे हुई? अर्थात् श्रीराम जी और तुझ से जान पहचान कैसे हुई और मित्रता कैसे जुड़ी। तब हनुमान जी ने सब बातें (जैसा सीता जी जानना चाहती थीं—सीताजी का पट-भूषण गिराना, और सुग्रीवद्वारा उन पट-भूषणों का रामजी के पास पहुँचना, सुग्रीव-मित्रता इत्यादि) कह कर विश्वास करादिया। तब सीता जी के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये और उन आँसुओं से मुँदरी को

भिगोकर उसे हृदयसे लगा लिया।

नोट—इस प्रसङ्ग में सीताजी का चातुर्य, नीति-निपुणता, पातिव्रत इत्यादिका अच्छा वर्णन है। मायावी राक्षसों के बीच धोखा हो जाने का भय था, अतः सीता ने हनुमान की अच्छी तरह परीक्षा करके तब उनपर विश्वास किया। मुद्रिका पाकर सीता की मनोभावनाओं की अधिकता वर्णन करने में केशव ने अपनी प्रतिभा का कमाल दिखलाया है।

मूल—दोहा—आंसु बरषि हियरे हरषि सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहिं बरनति है बहु भाइ ॥७८॥

शब्दार्थ—सुखद सुभाइ=सहज ही करुणामूर्ति। बहु भाइ=विविध प्रकार से।

नोट—आगे इस प्रसंग भर में उल्लेख अलंकार मानना उचित होगा। अलग २ प्रत्येक छन्द में 'सन्देह' होगा।

मूल—पद्धटिकाछंद—
यह सूर किरण तम दुःख हारि। ससिकला किधौं उर सीतकारि
कल कीरति सी सुभ सहित नाम। कै राज्यश्री यह तजी राम७९

शब्दार्थ—सीतकारि=शीतल करनेवाली। सहित नाम=उस अँगूठी पर "श्रीरामोजयति" खुदा हुआ था।

भावार्थ—(जानकी जी विचार करती हैं कि) क्या यह सुँदरी सूर्य किरण है क्योंकि इसने मेरे दुःखरूपी अंधकार को हर लिया, या यह चन्द्रमाकी कोई कला है, क्योंकि

मेरे हृदय को शीतल कर रही है (विरह-ताप शान्त
है) या नाम सहित यह श्री राम की सुन्दर कीर्ति
क्योंकि जैसे श्रीराम के नाम-स्मरण वा कीर्ति-श्रवण से
को आनंद प्राप्त होता है वैसाही आनंद यह मुझे देरही
अथवा रामने इसे राज्यश्री का चिह्न जान राज्य की
इसे भी त्याग दिया है।

अलंकार—संदेह।

—पद्धटिकाछंद—

के नारायन उर सम लसंति। सुभ अंकन ऊपर श्री
यर विद्या सी आनंद दानि। जुत अष्टापद मन शिवा मा

शब्दार्थ—अंकन=(१) शरीर, वक्षस्थल(२) अक्षर।
(१)श्रीवत्स चिह्न (२) 'श्री' शब्द। अष्टापद=(१
अर्थात् सिंह (३)सुवर्ण। शिवा=पार्वती (शिव की कल्
कारिणी शक्ति)।

भावार्थ—अथवा यह मुँदरी श्रीनारायण भगवान का
ही है, क्योंकि जैसे श्रीनारायण के वक्षस्थल पर श्रीवत्
चिह्न है, उसी प्रकार इसमें भी सब अंकों के ऊपर
अंकों से पहले) 'श्री' बसती है-(उस अँगूठी के नगीने
"श्रीरामोजयति" शब्द लिखा हुआथा), या यह परा
है, क्योंकि उसी के समान यह भी आत्मानन्द देरही
या इसे (कल्याणकारिणी) पार्वती ही समझूँ क्योंकि

पार्वती अष्टापदयुक्त (सिंह सहित) रहती हैं वैसेही यह भी अष्टापद (स्वर्ण) युक्त अर्थात सुवर्णमय है ।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट संदेह ।

मूल—पद्धटिकाछंद—

जनु माया अच्छर सहित देखि । कै पत्री निश्चयदानि लेखि ॥
पिय प्रतीहारिनी सी निहारि । श्री रामोजय उचार कारि ॥८१॥

शब्दार्थ—अच्छर=(१) अक्षर ब्रह्म, अविनाशी ब्रह्म । (२) लिपि अक्षर । प्रतिहारिनी=चोबदारिन । माया=(१)प्रकृति (२) धन अर्थात् सुवर्ण ।

शब्दार्थ—यह सुँदरी मानो माया सहित अक्षर ब्रह्म है (जैसे माया और ब्रह्म एकत्र रहते हैं वैसे ही इसमें भी सुवर्ण है और अक्षर लिखे हैं) या यह निश्चयदायिनी पत्रिका है (मोहर की हुई चिट्ठी वा सनद) क्योंकि जैसे उसमें नाम की मोहर होती है उसी प्रकार इसमें भी राम का नाम खुदा हुआ है । या यह प्रियतम रामचंद्र की चोबदारिन, है क्योंकि जैसे चोबदारिन मालिक का नाम लेकर जय जयकार उच्चारण करती है वैसे ही यह सुँदरी भी नाम सहित जयकार को उच्चारण करती है ।

अलंकार—श्लेष और उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—पद्धटिकाछंद—

पिय पठई मानो सखि सुजान । जगभूषन को भूषन-निधान ॥
निजु आई हमको सीख देन । यह किधौं हमारो मरम लेन ॥८२॥

शब्दार्थ—जगभूषन=श्रीरामजी । भूषन-निधान=भूषणों की मंजूषा । निजु=निश्चय ही । सीख=शिक्षा । मरम=भेद, तत्त्व ।

भावार्थ—यह मुद्रिका श्रीराम जी की अलंकारमंजूषा है, अर्थात् श्रीरामजी केवल इसी को पहन कर ऐसी शोभा पाते हैं मानो सब भूषण पहने हुएहैं । इस मुद्रिका को मियतम ने मानो सखी बनाकर हमारे पास भेजा है ताकि यह हमें [illegible] की शिक्षादे अथवा हमारे हृदय के मर्म (पातिव्रत कुशीलाचरण) का पता लगावे (मुद्रिका को देख कर सीता की आकृति वा भावनाएँ जैसी हो जायँ—उनको देख कर हनुमानजी समझ लेंगे कि जानकी पवित्रता हैं वा कुशीलाचारिणी हैं) ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह ।

मूल—दोहा—सुखदा सिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरुनारि ॥८३॥

भावार्थ—यह श्रीरामजी की मुद्रिका है या कोई परम हितैषिणी गुरु स्त्री (सास, धाय, माता इत्यादि) है, क्योंकि जैसे गुरु स्त्री सुख, शिक्षा, प्रयोजन, यश और रस (दाम्पत्य सुख) देने का प्रबंध करती है वैसे ही यह मुद्रिका भी करती है ।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट संदेह ।

मूल—दोहा—बहु वर्णा सहज प्रिया, तमगुण हरा प्रमान।
जग मारग दरशावनी, सूरज किरण समान ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ—बहुवर्णा= (१) कई रंगवाली (सूर्य किरण में सात रंग होते हैं)-(२) कई अक्षरवाली (अँगूठी में 'श्रीरामोजयति' ये छः अक्षर लिखे थे)। सहजप्रिया= साधारणतः प्रिय (सूर्य किरण भी सहज प्रिय होती है, अँगूठी भी वैसी ही होती है)। तमगुणहरा=(१)अंधकार हरने वाली (२) दुःख हरनेवाली। प्रमान = निश्चयपूर्वक। जग मारग दरशावनी=(१)सांसारिक कार्यों का मार्ग दिखलानेवाली (२) सांसारिक रीति दिखलानेवाली (पतिपत्नी का परस्पर स्मरण करा कर संबंध दृढ़ करने वाली)।

भावार्थ—यह मुद्रिका सूर्य किरण के समान है क्योंकि बहु वर्णा है (सूर्यकिरण में बहुत से रंग होते हैं, इसमें भी बहुत से अक्षर हैं) सहज प्रिया है, तमगुण हरा है (सूर्य किरण अंधकार हरती है, यह मुद्रिका दुःख वा अज्ञान हरती है) और निश्चय पूर्वक जगमार्ग की दरशानेवाली है (सूर्य किरण उजेला देकर सबको सांसारिक कार्यों का मार्ग दिखाती है और यह अँगूठी मुझे प्रियतम का स्मरण कराकर दाम्पत्ति प्रेम का मार्ग दिखाती है)।

अलंकार—श्लेषसे पुष्ट समुच्चयोपमा।

मूल—दोहा—श्री पुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहै परतीति ॥ ८५ ॥

शब्दार्थ—श्री=राज्यश्री । हौं=मैं । अनीति करी=धोखा दिया, त्याग दिया ।

भावार्थ—(श्री सीता जी मुद्रिका प्रति कहती हैं) राज्य-लक्ष्मी ने अयोध्या में, मैंने वन में और तू ने मार्ग में राम को छोड़ा, अतः हे मुद्रिका बतला तो अब स्त्रियों की वफ़ादारी पर कौन नर विश्वास करेगा?

मूल—पद्धटिकाछंद—

कहि कुसल मुद्रिके राम गात। सुभ लक्ष्मण सहित समान तात
यह उतरु देति नहिं बुद्धिवंत। केहि कारण धौं हनुमंत संत ॥८६॥

शब्दार्थ—सहित=हितैषी । समान=(स+मान) स्वाभिमानी । बुद्धिवंत=हनुमंत का विशेषण है ।

भावार्थ—हे मुद्रिका ! बतला, राम जी शरीर से तो सकुशल हैं! और शुभ लक्षण मेरे परम हितैषी तथा स्वाभिमानी प्यारे लक्ष्मण जी तो सकुशल हैं? हे बुद्धिमान सज्जन हनुमंत तुम ही बतलाओ, यह मुद्रिका तो कुछ उत्तर नहीं देती, इसका क्या कारण है ।

मूल—(हनुमान)दोहा—तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम ॥८७॥

भावार्थ—(हनुमान जी चतुराई से उत्तर देते हैं कि) हे माता तुम इसे मुद्रिका नाम से संबोधन करके पूंछती हो, इसीसे यह इस नाम को सुनकर चुपहै (कि मुझसे तो पूंछती

ही नहीं) क्योंकि अब तुम से रहित होकर (तुम्हारे वियोग में) श्री राम जी ने इसे कंकण की पदवी दी है (तुम्हारे वियोग में इतने दुबले हो गये हैं कि मुँदरी को अब कंकणवत् पहनते हैं)–अतः यह मुँदरी अपने को कंकण समझती है इसीसे मुँदरी कहने से नहीं बोलती–(दूसरे के नाम से दूसरा नहीं बोलता) ।

अलंकार—अल्प ।

(रामजी की विरहावस्था)

मूल—(हनुमान)—दंडकछंद—दीरघ दरीन बसैं केशोदास केसरी ज्यों, केसरी को देखि बन करी ज्यों कँपत हैं। बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत, चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं॥ केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम, घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत हैं। भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैनि, साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत हैं॥ ८८॥

शब्दार्थ—दरीन=गुफाएँ । केसरी=(१) सिंह (२) केशर । करी=हाथी । बासर की संपति=दिन का प्रकाश । केका=मोर का शब्द । घनश्याम=खूब काले । घोरन=गरज । साकत=शाक्त, शक्ति वा दुर्गा के उपासक ।

भावार्थ—(श्री हनुमान जी मौका पाकर श्री राम जी की विरह दशा का वर्णन करते हैं) राम जी सिंह की तरह बड़ी बड़ी गुफाओं में ही बसते हैं (बनशोभा नहीं देखते)

और केशर की क्यारियाँ देखकर ऐसे भयभीत होते हैं जैसे जंगली हाथी सिंह को देखकर डरता है। दिनका प्रकाश उसी तरह नहीं देखते जैसे उलूकपक्षी (दिन का प्रकाश उन्हें अच्छा नहीं लगता) । और चंद्रमा को देखकर चकवा से भी अधिक चँपते हैं (व्याकुल होते हैं) । मोरों का शब्द सुनकर सर्प की तरह (कंदराओं में) छिप रहते हैं, और काले बादलों की गरज सुनकर जवासे की भाँति जलते है। भंवर की तरह चंचल चित्त वनों में घूमा करते हैं, रात्रि को जोगियों की तरह जागते हैं (रात्रि को नींद नहीं आती) और साकत की तरह (तुम्हें अपनी इष्ट देवी समझ) सदा तुम्हारा ही नाम रटते रहते हैं।

अलंकार—उपमाओं से पुष्ट उल्लेख।

मूल—(हनुमान)—धारिधरछंद—

राजपुत्रि यक बात सुनौ पुनि। रामचन्द्र मन माहँ कही गुनि।
राति दीह जमराज जनी जनु। जातनानि तन जानत के मनु॥

शब्दार्थ—जमराज जनी=यमराज की दासी (अति कष्टदायिनी) । जातना=यातना, पीड़ा।

भावार्थ—हे राजपुत्री ! पुनः एक बात सुनिये जो श्री रामचन्द्र जी ने खूब सोच विचार कर कही है। बड़ी रात्रि जमराज की दासी के समान कष्टदायिनी जान पड़ती है, हमारी पीड़ा को हमारा तन या मन ही जानता है (कहने योग्य नहीं)।

मूल—दोहा—दुख देखे सुख होहिगो, सुख नहि दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपै, होइ परम पद लीन ॥ ९० ॥

भावार्थ—(श्री राम जी ने यह भी कहा है कि) दुःख के बाद सुख होगा (धैर्य रखना) क्योंकि प्रकृति का नियम है कि सुख विना दुःख झेले नहीं मिलता । जैसे तपस्वी पहले तपका दुःख झेलता है तब मोक्ष पाता है ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास ।

मूल—दोहा- धरप-वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन में कालभट भेंटि भेंटियत बाम ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ—सकाम=उत्कट इच्छायुक्त । बाम=देवांगना ।

भावार्थ—वर्षा का वैभव देखकर अब कामनायुक्त हृदय से शरद को देखा है (अर्थात् तुम्हारी तलाश की कामना रखते हुए भी वर्षा के कारण रुक जाना पड़ा, अब भी हमारी उत्कट इच्छा दब नहीं गई । अब शरद ऋतु आई है, रास्ता साफ हुआ है हम शीघ्र तुम्हारे पास आते हैं) यह वर्षा की रुकावट और तदनन्तर शरद का आना हमें कितनी कठिनाई से प्राप्त हुआ है जैसे किसी योद्धा को रण में पहले कालभट से भेंट करनी पड़ती है तदनन्तर देवांगनाओं से भेंट होती है ।

अलंकार—उदाहरण ।

मूल—(सीता) दोहा-दुःख देखे कै देखिहौं तव मुख आनँद कंद।
तपन ताप तपि धौस निशि जैसे सीतल चंद ॥ ९२ ॥

भावार्थ—दुःख झेल कर तब तेरा आनन्दप्रद मुख देखूँगा। जैसे जो दिनभर सूर्य की गरमी से तपता है, वह रात्रि को चन्द्रमा की शीतलता का अनुभव करता है।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—दोहा—अपनी दसा कहा कहौं दीपदसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा केशव सहित सनेह ॥९३॥

शब्दार्थ—दसा=हालत। दीपदसा=दिया की बत्ती। सनेह =(१)प्रेम (२)तैल।

भावार्थ—मैं अपनी हालत क्या कहूँ, मेरा शरीर तो चिराग की बत्ती के समान प्रेमवश रातदिन जला करता है।

—उपमा और श्लेष से पुष्ट व्यतिरेक।

मूल (हनुमान)—दोहा—
सुगति सुकेशि, सुनैनि सुनि, सुमुखि, सुदंति, सुथोनि।
दरसावै गो बेगिहीं तुमको सरसिज-योनि ॥९४॥

शब्दार्थ—सरसिजयोनि=ब्रह्मा।

भावार्थ—हे सुन्दर चाल, बाल, नेत्र, मुख, दन्त और कटि वाली सीता! सुनो, धैर्य रखो, ब्रह्मा शीघ्र ही ऐसा संयोग उपस्थित करेगा कि मैं तुम्हारे दर्शन करूँगा।

मूल—हरिगीतिकाछंद—
कछु जननि दे परतीति जासों राम चन्द्रहिं आवई।
सुभ सीस की मणि दई यह कहि सुजस तव जग गावई॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।

सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥ ९५ ॥*

शब्दार्थ—परतीति=विश्वास । सीसकी मणि=चूड़ामणि, शीशफूल । जयपद=विजय, जीत ।

मूल—करजोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो । ⊗
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ।
रन मारि अक्ष कुमार बहु विधि इन्द्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्म अस्त्र प्रमाण मानि सो वश्य भो मन शुद्ध कै ॥९६॥

शब्दार्थ—उपवन=वाटिका । कोरि=करोड़ । किंकर=दास । जंबुमाली=प्रहस्त नामक मन्त्री का पुत्र । पंचमन्त्रि=(१) विरूपाक्ष,(२)यूपाक्ष (३)दुर्द्धर्ष, (५)प्रघसंभास (५)कर्ण । अक्षकुमार=रावण का एक पुत्र । इन्द्रजित=मेघनाद । ब्रह्मअस्त्र=ब्रह्मा की दी हुई फाँस । वश्य भो=वशीभूत हुआ । मन शुद्ध कै=शुद्ध मन से, केवल राम काज हेतु (बल से या भय से हार कर नहीं) ।

तेरहवाँ प्रकाश समाप्त

*नोट—छन्द ९५ के बाद एक हस्त लिखित प्रति में नीचे लिखे छन्द मिलते हैं, और छन्द नं० ९६ उसमें नहीं है ।

हरिगीतिकाछंद—

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो ।
घर पौढ़ियो जहँ जंबुमाली दूत जाय पुकारियो ॥
उठि धाइयो मन क्रोध अति करि सोधु कपि जब पाइयो ।
बहु आइयो तेहि ठौर तबही संक उर नहिं लाइयो ॥

अति जोर स्यों हनुमंत देखि अनंत बानन मारियो।
मन मानियो नहिं छोभ कपि तब सकल सैन सँहारियो॥
पुनि जंबुमाली सों भिर्‍यो लइ बाहु जुगल उखारि कै।
मठ बैठि कै अभिलाष सों पुर में ते दीनो डारि कै॥
परियो ते रावन की सभा तेहि काल तेहिं पहिचानियो।
पुनि पंचसुत मंत्रीन के तिन सीस आयसु मानियो॥
तन बान कासे हाँसि बान धनु तेहि काल लेइ गये तहाँ।
रन दूत पूत सुसेन स्यों बर जंबुमालि पर्‍यो जहाँ॥
बरषै सु बान समान घन तन भेदियो हनुमंत को।
तब धाइयो कपि नाद करि रोकै कहा भयमंत को॥
घननाल लै सिगरे हये उर साल रावन के भयो।
तेहि काल अक्ष कुमार बोलि प्रहस्त को आयसु दयो॥

छंद—

जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने।
कुमार अक्ष तिक्ष बाण छाइयो घने घने॥
कपीस क्रुद्ध क्रुद्ध भो सँहारि अक्ष डारियो।
प्रहस्त सीस में तबै प्रहारि मुष्ट मारियो॥

दोहा—

मोरो अक्ष सुनो जहीं रावन अति पछिताय।
इन्द्रजीत सों या कहो बानर जियत न जाय॥

तोटक—

घननाद गयो सजिकै जबहीं। हनुमंत सों युद्ध जुरे तबहीं।
बलवंत गुन्यो वह हेरि हियो। मन में गुनि एक उपाय कियो

तोमर—

तब इन्द्र जीत बिलोकि। बिधिपास दीन्हीं मोकि।
कपि ब्रह्मतेजहिं जानि। निज सीस लीन्ही मानि॥

चौदहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या चौदहें प्रकाश में ह्वैहै लंका दाह।
सागर तीर मेलान पुनि करिहैं रघुकुल नाह॥

शब्दार्थ—मेलान=डेरा डालना, ठहरना, विश्राम।

मूल—(रावण)—मत्तगयन्द सवैया—

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जू को।
को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण भूषण भू को॥
सागर कैसे तर्‍यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरहिं देखो॥
कैसे बँधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥१॥

शब्दार्थ—त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण=त्रिशिराऔर खरदूषण को नाश करनेवाले।

भावार्थ—(रावण पूछता है कि) रे कपि तू कौन है ? (हनुमान जी जवाब देते हैं कि) मैं अक्षय कुमार का घातक बली रघुनाथजी का दूत हूँ। (पुनः प्रश्न है कि) कौन रघुनाथ ? (जवाबहै कि) त्रिशिरा और खरदूषण को मारने वाले और संसार के भूषण रूप रघुवंशी श्रीरामजी। (तब प्रश्न है कि) तूने समुद्र कैसे पार किया ? (जवाब है कि) गोपद समान लाँघ कर आया। (फिर प्रश्न है कि) किस काम के लिये आया ? (जवाबहै कि) सीता के चोर को

ढूँढ़ने के लिये। (फिर प्रश्न है कि) तू बंदी क्यों हुआ ? (जवाबहै कि) तेरी स्त्री को सोते समय आँख से देखा है इसी पाप से बंदी होना पड़ा।

विशेष—आचार्य केशव ने इस छंद में किस युक्ति से राम जी के माहात्म्य, रूप और बल का तथा राममक्तों के आचरणका वर्णन किया है सो समझते ही बन पड़ता है।

बल कैसाहै—हजारों की सेना एक दम में मारसकते हैं। माहात्म्य कैसा है—उनके सेवक अक्षय (अमर) को भी मार सकते हैं। रूप कैसा है—सारे संसार का भूषण है।

राम-सेवक सागर (भवसागर) कैसे तरते हैं—जैसे गोपद।

काम क्या करते हैं—केवल राम संबंधी कार्य। इस शरीर से किये हुए पापों का दंड यहीं भोग लेते हैं, पर स्त्री को माता के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से देखने तक को पाप समझते हैं।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

मूल—(रावण) चामर छंद—कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिये। काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिये॥ खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहुरे। पौरि ठौंगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहुरे॥ २॥

शब्दार्थ—कोरि=करोड़। यातना=कष्ट। फोरि फोरि मारिये =इतना पीटो कि इसके सब अंग फूट फूट कर रक्त निकलने लगे। पौरि=द्वार। रुंड=सिर रहित शरीर।

भावार्थ—सरल है। (रावण हनुमानजी के दंड की व्यवस्था करता है)।

मूल—(विभीषण)—दूत मारिये न राजराज छोड़ दीजई। ⊗ मंत्रि मित्र पूंछि कै सो और दंड कीजई॥ एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई। बुंद सूखि गो कहा महा समुद्र छीजई॥३॥

भावार्थ—(विभीषण रावण को समझाते हैं) हे राजराजेश्वर! दूत को मारना उचित नहीं। इसे छोड़ दीजिये और अपने मंत्रियों तथा मित्रों से पूछ कर कोई और दंड कीजिये। एक क्षुद्र दूत को मारकर बड़ा कलंक क्यों लेते हैं। समुद्र में से एक बूंद सूख जाने से क्या समुद्र घट जाता है अर्थात् राम की सेना में से यदि एक को मार भी डाला जाय तो क्या उनकी सेना कम हो जायगी)।

अलंकार—दृष्टान्त।

मूल—चामर छंद—तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि वाससी। लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसी॥ पूंछ पौनपूत की सँवारि वारि दी जहीं। अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं॥ ४॥ ⊗

शब्दार्थ—तूल=रुई। वाससी=वस्त्र, कपड़े। रार=धूना, राल। दून सूत सों=दोहरे सूत से। कसी=कस कर बाँध दिया। वारिदी=जलादी, आग लगा दी। जहीं=ज्योंहीं। तहीं=त्योंहीं।

भावार्थ—रुई को तैल में बोर बोर कर और बहुत से वस्त्र

जोड़ जोड़ कर और बहुत सी रार और ऊन लेकर दोहरे सूत से कस कर पूँछ में बाँध दिया। इस प्रकार पूँछ को बनाकर ज्योंही आग जला दी गई, त्योंहीं हनुमान जी (लघिमा सिद्धि से) अपने अंग को छोटा करके ब्रह्म फाँस से निवुक कर अटारी पर चढ़ गये।

मूल—चंचरी छंद (वर्णिक)—

धाम धामनि आग की बहु ज्वालमाल विराजहीं॥
पौन के झकझोर तें झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
क्षुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं॥ ५॥

शब्दार्थ—ज्वालमाल=आग की लपटें। झँझरी=छिद्र, सूराख। बाजि=घोड़े। बारन=हाथी। जोरन=जोर से। क्षुद्र=नीच लोग। विपदा=आफत।

भावार्थ—घर घर में आग की लपटें उठने लगीं, हवा के झोंकों से झरोखों से सूराखों से लपटें निकलने लगीं। घोड़े, हाथी, मैना, शुक और मोरादि पशुपक्षी गण जोर से भागने लगे, जैसे आफत आते ही नीच जन मालिक को छोड़ कर भागने में लज्जित नहीं होते।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—जटी अग्नि ज्वाला अटा सेत हैं यों। शरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों। लगी ज्वाल धूमावली नील रायैं। मनो स्वर्ण की किंकिनी नाग साजैं॥ ६॥

शब्दार्थ--जटी=जड़ी हुई (युक्त)। अटा=अट्टालिकाएँ। नाग=हाथी।

भावार्थ--अग्नि-ज्वालाओं से युक्त अट्टालिकाएँ ऐसी श्वेत होरही हैं, जैसे संध्या समय शरद ऋतु के बादल होते हैं। ज्वालाओं सहित धुएँ के धौरहर ऐसे जान पड़ते हैं मानो बड़े बड़े हाथी सोने की किंकिणी पहिने हों।

अलंकार--उपमा और उत्प्रेक्षा।

मूल--भुजंग प्रयात छंद--लसैं पीत छत्री मढ़ी ज्वाल मानो। ढके ओढ़नी लंक वक्षोज जानो॥ जरैं जूह नारी चढ़ीं चित्र-सारी। मनो चेटका में सती सत्यधारी॥ ७॥

शब्दार्थ--पीत छत्री=सोने की बनी पीली पीली महलों की बुर्जियाँ (छतरियाँ)। ज्वाल मढ़ीं=ज्वालायुक्त। लंक=लंकापुरी। वक्षोज=कुच। जूह=यूथ। चित्रसारी=सेजभवन (सोने के कमरे)। चेटका=चिता।

भावार्थ--महलों की स्वर्ण की बनी हुई बुर्जियाँ ज्वाला से ढक गई हैं, वे ऐसी मालूम होती हैं, मानो लंकापुरी के कुचों पर ओढ़नी पड़ी हुई है। रंगमहल के सैनागारों में स्त्रियों के झुंड के झुंड जल रहे हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो सती स्त्रियाँ चिताओं में जल रही हैं।

अलंकार--उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंग प्रयात—

[illegible]

शब्दार्थ—रैनिचारी=निश्चर। गहेज्योति गाढ़े=लपटों में बढ़ते हैं। ईश=महादेव। भोरें=धोखे में। अलंकार=सोने के आभूषण।

भावार्थ—कहीं निश्चर अग्नि की लपटों में पड़ गये हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो महादेव की कोपाग्नि में कामदेव जल रहा हो। कहीं स्त्रियाँ ज्वालाओं के धोखे में अपनी लाल साड़ी छोरकर और स्वर्णाभूषण तोड़कर फेंकती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और भ्रम।

मूल—भुजंग प्रयात—

[illegible]

शब्दार्थ—राते=लाल (स्वर्ण के)। रचे=रंगसे रँगे हुए। मलै अद्रि=मलयागिरि। दावज्वाला=दावाग्नि।

भावार्थ—कहीं लाल रंगसे चित्रित सोने के मकान पर धुवाँ छागया है, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्य और चंद्रमा मेघों से ढंक गये हैं। रावण की शस्त्रशाला जल रही है और उससे ऐसी गंध निकल रही है मानो मलयागिरि में दावाग्नि लग गई हो (जैसे मलयागिरि में दावाग्नि लगने से

जलने पर चन्दन से सुगंध और सर्पों से दुर्गन्ध निकलती है वैसे ही शस्त्रशाला के जलने से दो प्रकार की गंध आती है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंग प्रयात—चलीं भागि चौहूँ दिसा राजरानी। मिलीं ज्वालमाला फिरैं दुःखदानी॥ मनों ईश वानावली लाल लोलैं। सबै दैत्य-जायान के संग डोलैं॥ १०॥

शब्दार्थ—राजरानी=रावण की स्त्रियाँ वा वधुएँ। लोल=चलती हुई। दैत्यजायान=निश्चरियाँ।

भावार्थ—रावण की स्त्रियाँ चारो ओर भागती हैं, पर जिस ओर जाती हैं उसी ओर उन्हे दुःखद अग्नि की ज्वालाएँ मिलती हैं और वे उधर से लौटती हैं, पुनः जिधर जाती हैं उधर ही वही हाल होता है। यह घटना ऐसी मालूम होती है मानो ईश्वर की लाल और चर वाणावली सभी निश्चरियों के साथ साथ लगी उन्हें रगेदे फिरती है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मत्त गयंद सवैया—

लंकहि लाय दई हनुमंत विमान बचे अति उचरुखी है।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि,रानि रटैं पानी पानी दुखी है॥
कंचन को पविलो पुर पूर,पयोनिधि में पसरो सो, सुखी है।
गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी है॥११॥

शब्दार्थ—लाय दई=आग लगादी। उचरुखी है=और ऊँचे होकर चलने से। मनि—[illegible]

में जब हनुमान जी ने आग लगा दी तब इ-
तनी ऊँची लपटें उठीं कि देवताओं के विमानों को (मामू-
ली ऊँचाई की अपेक्षा) बहुत अधिक ऊँचाई से चलना पड़ा
तब वे बच सके (नहीं तो वे भी जल जाते) अग्नि से तप-
कर अनेक प्रकार के बहुमूल्य पत्थर फटकर उछलते हैं, और
सब रानियाँ दुःखित हो हो कर पानी पानी चिल्लाती हैं।
यहाँतक हुआ कि सोने की समस्त लंकापुरी पिघल जाने से
सोने का द्रव असंख्य धाराओं से समुद्र में जा गिरा। यह बात,
कवि केशव कहते हैं कि, ऐसी जान पड़ी कि मानो गंगा को
हजार धारा से मिलती हुई देख ईर्षा से सरस्वती नदी असंख्य
धाराओं से सुखी होकर समुद्र से मिल रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—हनुमत लाई लंक सब बच्यो विभीषन धाम।
जनु अरुणोदय बेर में पंकज पूरब जाम॥१२॥

शब्दार्थ—लाई=जलाई। पूरबजाम=पहले पहर में।

भावार्थ—हनुमान ने सब लंका जलाई। उसमें बचाहुआ
विभीषण का घर (ऐसा शोभा पा रहा है) मानो सूर्योदय
बेला के पहले ही पहर में कमल प्रफुल्लित होकर शोभित
हो रहा हो।

नोट—बेर और याम में पुनिरुक्ति सी जान पड़ती है। पर-
ऐसा कहने में युक्ति यह है कि राम-प्रताप रूपी सूर्योदय बेला

वेंगे, तब रण में रावण को संताप होगा (बिना युद्ध किये रावण सीता न देगा), परन्तु जब राम जी की घनी शर-धारा वर्षेगी, तब लंका को बहते देर न लगेगी (लंका ऐसा दृढ़ गढ़ नहीं है कि उसे जीतते देर लगे—यह कपिगण के उत्साह और हिम्मत का वर्णन है)।

मूल—तोमर—चलि अंगदादिक वीर। तहँ आइयो रनधीर॥
जहँ बाग हे सुग्रीव। फल देखि ललक्यो जीव॥ १८॥

भावार्थ—वहाँ से चलकर सब रणधीर वीर वहाँ आये जहाँ सुग्रीव के बाग (कई एक फले हुए बाग) थे; और भूखे होने के कारण और उन बागों में खूब फल देख कर उन सब का जी खाने को ललक उठा।

मूल—तोमर—सब खाइयो फल फूल। रहियो सु केवल मूल।
तब दीख दधिमुख आय। वह मारियो कपि धाय॥ १९॥

शब्दार्थ—दधिमुख=सुग्रीव का पुत्र और उन बागों का मुख्य रक्षक।

भावार्थ—अंगद के यूथ के सब बानरों ने उन बागों के सब फूल फल खा डाले, (फल फूलों से खाली होकर) वृक्ष केवल ठूँठमात्र रह गये। यह हाल दधिमुख ने देखा, तब वह (बरजने की रीति से) दौड़ दौड़ कर बानरों को मारने लगा।

मूल—तोमर—अति रोस बालि कुमार। गहि मारियो कपि धार।
सब लै गये निजु जीव। जहँ बैठियो सुग्रीव॥ २०॥

मूल—तोमरछंद—सीता न ल्याये वीर। मनमाँझ उपजति पीर।
आनौं सु कौन उपाय। पर पुरुष छीवै काय॥ १५॥

शब्दार्थ—छीवै=छुवै। काय=काया, शरीर।

भावार्थ—(श्रीहनुमान जी अपने मन में सोचते हैं) वीर होकर भी मैं सीता को न लाया, इस बात का मुझे मनमें खेद रहेगा, पर लाता किस उपाय से, मैं पर पुरुष होकर उनके शरीर को कैसे छूता।

छंद—
यहि पार अंगद भेटियो। सब को सबै दुख मेटियो।
जयसी कछू बितई सबै। तिनसों कही तयसी तबै॥ १६॥

भावार्थ—समुद्र के इसपार आकर हनुमान जी ने अंगद से भेंट की (अंगद ही उस यूथ के मुखिया थे, इससे केवल अंगद का नाम लिखा गया)। सब का सब प्रकार का शोक मिट गया। सब जैसी कुछ जिसपर बीती थी, सो सब दुःख की बातें उसने परस्पर कह सुनाई (हनुमान ने अपनी बीती कही और अंगद के साथवालों ने अपनी बीती कही)।

नोट—'जयसी' और 'तयसी' शब्द इसी रूपसे लिखे जायँगे, तभी छंद का रूप शुद्ध रहेगा। जैसी और तैसी लिखने से छंदका रूप अशुद्ध हो जायगा।

मूल—तोमर—जब राम धरिहैं चाप। रन रावनै संताप॥
बरषै सघन सर-धार। लंका बहत नाहिं बार॥ १७॥

भावार्थ—(सब विचार करते हैं) जब राम जी धनुष चढ़ा-

भावार्थ—तब अंगदने भी अति क्रुद्ध होकर दधिमुख की सेना को पकड़ पकड़ कर खूब पीटा। जब खूब पीटे गये तब वे रक्षक बानर अपने अपने प्राण लेकर भागे और वहाँ गये जहाँ सुग्रीव बैठे थे और सब हाल कहा।

मूल—दोहा—लै आये सीता खबर, ताते मन अति फूल।
इनको बिलगु न मानिये, नहिं धरिये चित मूल ॥ २१ ॥

। फूल=आनंद । बिलगु=बुराई।

(सुग्रीव ने अंगद की यह ढिठाई सुनकर अनुमान किया कि मालूम होता है कि) अंगद सीता का शोध लेकर आये हैं, इसी से आनंदयुक्त होकर ऐसा काम कर बैठे हैं। खैर, यदि ऐसा है तो इनके इस कार्य से बुरा न मानना चाहिये और इस दोष को चित्त से दोष न मानना चाहिये (क्योंकि हमारे परम मित्र राम का काम तो पूरा कर आये हैं)।

मूल—संयुता छंद—
रघुनाथ पै जबहीं गये। उठि अंक लावन को भये॥
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पायँ की धरनी धरी ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—अंक लाना=छाती से लगा कर भेंटना। करनी=करतूत।

भावार्थ—जब सब मिल कर राम जी के पास गये, तब राम

जी हनुमान जी को छाती से लगा कर भेटनें को उठे ही थे कि हनुमान जी ने यह कह कर कि महाराज मैंने कौनसा बड़ा काम किया है जो आप इतना सम्मान देना चाहते हैं (छाती से लगा कर भेंटना चाहते हैं। यह सम्मान मित्र के दर्जे का है, मैं तो दास हूँ) पैर के निकट ज़मीन पर अपना सिर टेक दिया (अति नम्र भाव से चरणों पर सिर रख दिया)।

नोट—सिर और पायँ शब्दों का ऐसा प्रयोग करना फारसी तथा उर्दू के साहित्य के अनुसार एक प्रकार का अलंकार है जिसे हिन्दी में 'मुद्रा' अलंकार कह सकते हैं।

मूल—दोहा—चिंतामणि सी मणि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीता जू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥ २३ ॥

भावार्थ—हनुमान जी ने श्री रघुनाथ जी के हाथ में चिन्तामणि समान सर्व आनंददायिनी सीता जी की 'चूड़ामणि' दे दी, वह चूड़ामणि ऐसी जान पड़ती थी मानो अनंत अनुराग से रंजित श्री सीता जी का मन ही था।

नोट—इस छंद से यह स्पष्ट है कि वह चूड़ामणि लाल रंग की थी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोधक छंद—

श्री रघुनाथ जबै मणि देखी। जी महँ भागदसा सम लेखी।
फूलि उठ्यौ मन ज्यों निधिपाई। मानहु अंध सुडीठि सुहाई॥२

शब्दार्थ—भागदशा=सौभाग्य की अवस्था, खुश किस्मती। फूलि उठ्यौ=आनंदित हुआ। निधि=नव निधि।

भावार्थ—श्री रघुनाथजी ने जब यह सीता जी की चूड़ामणि देखी तो उसे अपने मनमें अपनी खुश किस्मती ही के समान समझा। मन ऐसा आनंदित हुआ मानो दरिद्र ने नवो निधियाँ पाई हो या मानो अन्धे को सुदृष्टि मिली हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—(श्री रामवचन) तारक छंद—मणि होहि नहीं मनु आय प्रिया को। उरमें प्रगट्यो गुन प्रेमदिया को॥ सब भागि गयो जु हुतो तम छायो। अब मैं अपने मनको मत पायो॥२५॥

शब्दार्थ—आय = है। गुन=स्वरूप (दीपक का स्वरूप अर्थात् ज्योति)। तम=विरह दुःख और कर्तव्य-विमूढ़ता। मत=कर्तव्य ज्ञान।

भावार्थ—राम जी कहने लगे कि यह मणि नहीं वरन् सीता का मन ही है, इसे पाकर प्रेम दीपक की ज्योति हमारे हृदय में प्रकाशित हो उठी है, जिस प्रकाश से विरह दुःख और कर्तव्य-विमूढ़ता तो चले गये और अब हम अपने मन का मत पागये (अर्थात् अब यह मणि पाकर सीता का निश्चित पता मिलगया, प्रेम ने उत्तेजना दी है, अब हम वह काम करेंगे जो एक प्रेमी पति को अपनी प्रियतमा के लिये करना चाहिये अर्थात् सीताहर्ता रावण पर चढ़ाई करेंगे

और उसे दंड देकर सीता का उद्धार करेंगे।

अलंकार—अपह्नुति।

मूल—तारक छंद—दरसै हमकोऽघ नहीं दरसाये। उरलागति आय बन्याई लगाये॥ कछु उत्तर देति नहीं चुप साधी। जिय जानति है हमको अपराधी॥ २६॥

शब्दार्थ—ऽघ=अब। दरसाये=दरशाने से भी ('हमारी ओर देखो' ऐसा कहने से भी)। बन्याई=बरियाई, जबरई।

भावार्थ—(मणि पाकर राम जी को प्रेमवश बिरह की उन्माद दशा का आवेश हो आया है, अतः कहते हैं कि) हम कहते हैं कि हमारी ओर देखो तब भी यह हमारी ओर नहीं देखती, जबरदस्ती जब हम हृदय से लगाते हैं तब हृदय से लगती है (प्रेम से स्वयं हृदय से नहीं लगती) पूछने पर कुछ उत्तर भी नहीं देती, चुप्पी साध ली है, हमें अपराधी जानकर ऐसा करती है (तो ठीकही है)।

नोट—मुद्रिका पाकर सीता की जो दशा हुई थी वही दशा मणि पाकर राम जी की भी हुई। वे मुँदरी से वार्ता करने लगी थीं, ये मणि से बातें करने लगे। यह दशा देख, अधिक व्याकुलता से बचाने के लिये हनुमान जी बोल उठे।

मूल—(हनुमान) तारक छंद—कछु सीय दशा कहि मोहिं न आव। चर का जड़ बात सुने दुख पावै॥ सर सो प्रति बासर बासर लागै। तन घाव नहीं मन प्रानन खाँगे॥ २७॥

शब्दार्थ—प्रतिबासर=रोज, प्रति दिन। बासर=राग, गान

(जो रावण के यहाँ नित्य होता है और अशोक वाटिका से सुनाई पड़ता है)। साँगे=छेदता है।

भावार्थ—(हनुमान जी कहते हैं) हे महाराज ! सीता की दशा मुझसे कुछ कही नहीं जाती, यदि मैं कहूँ तो वह वार्ता सुनकर चैतन्य की तो बात क्या जड़ पदार्थ भी दुःख पावें। सुनिये उनकी यह दशा है कि रावण के यहाँ जो संगीत होता है (जिससे सब ही दुखी जीवों का कुछ न कुछ मनोरंजन होता है) वह उनको निरंतर बाण सम लगता है। तन में घाव तो नहीं देख पड़ता पर मन और प्राणों को वह छेदता है।

नोट—हनुमान जी संगीत विद्या के आचार्य हैं और उन्हें संगीत का यह प्रभाव अच्छीतरह विदित है कि संगीत सब प्रकार के दुखियों का मनोरंजन कर सकता है। जिसदुःख का इलाज संगीत से न हो सके वह दुःख लाइलाज समझना चाहिये। अतः सीता का दुःख बड़ा कठिन है, संगीत भी उन्हें बाण सम लगता है। यह कहकर हनुमान जी यह दर्शाना चाहते हैं कि सीता का प्रेम और तज्जनित विरह आप के प्रेम और विरह से कम नहीं।

अलंकार—उपमा।

मूल—तारक छंद—प्रति अंगन के सँगही दिन नासैं। निशि सों मिलि बाढ़ति बीह उसासैं॥ निशि नेकहु नींद न आवति

जानौ। रवि की छवि ज्यों अधरात घखानौ॥ २८॥

भावार्थ—(हनुमान जी शरद ऋतु में खबर लेकर लौटे हैं। शरद में दिन घटता है और रात्रि बढ़ती हैं, अतः कहते हैं कि) प्रतिदिन सीता के अंगों सहित दिन कम होता है (जैसे आजकल प्रतिदिन दिन का मान कम होता है वैसे ही प्रति दिन सीता के अंग कम होते जाते हैं—वे दुबली होती जाती हैं)। जैसे प्रतिरात्रि को रात्रि का मान बढ़ता है वैसे ही सीता की उसासें भी प्रतिरात्रि दीर्घतर होती जाती हैं। रात्रि को उन्हें जरा भी नींद नहीं आती जैसे आधीरात को सूर्य की ज्योति नहीं आती।

अलंकार—सहोक्ति और उपमा।

मूल—घनाक्षरी—भौंरिनी ज्यों भ्रमत रहति वन वीथिकानि, हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है। हरिनी ज्यों हेरति न केशरि के काननहिं, केका सुनि व्याली ज्यों बिलान ही चहति है॥ पीउ पीउ रटति रहति, चित चातकी ज्यों चंद चित चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है। सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी सूरतिन सीता जूकी मूरति गहति है॥ २९॥

शब्दार्थ—मृदुल मृणालिका=(१) मुलायम कमलदंड (२) कमलनालवत् मृदु बाहें। केशरि=(१) सिंह (२) केशर। बिलान=(१) बिलों को (२) विलुप्त होजाना (कहीं छुप रहना)। चहति है=ढूँढती है। सूरति=दशा। मूरति=शरीर।

भावार्थ—हे राजा रामचन्द्र! सुनिये, आपके विरह में सीता

जी का शरीर (स्वयं सीता जी) इन दशाओं को ग्रहण करता है (सीता जी की यह दशा है) कि जैसे भ्रमरी वन-वीथिकाओं में इतस्ततः घूमती रहती है उसी भाँति सीता भी अशोक वन की वीथिकाओं में तुम्हें खोजती हुई भ्रमण किया करती हैं अर्थात् अशोक वाटिका के तमालादि श्यामरंग वृक्षों को भ्रम वश तुम्हारा शरीर समझ कर भेटनेको दौड़ती है, और जैसे हंसिनी मुलायम कमलदंड को सदैव चाहती है उसी भाँति सीता जी तुम्हारी कमलनाल सम भुजाओं को चाहती रहती हैं। जैसे हरिनी सिंह के निवास करने के वन की ओर भूल कर भी कभी दृष्टिपात नहीं करता उसी प्रकार सीता जी केशर की क्यारियों की ओर नहीं देखती, और जैसे मोर का शब्द सुनकर सर्पिनी बिल खोजती है (मरने छिप जाना चाहती है) उसी तरह जानकी भी मयूरध्वनि सुन कर कहीं विदुष होजाने को कोई बिवर ढूँढा करती हैं। चित्त लगा कर चातकी की तरह पीउ कहाँ पीउ कहाँ रटती रहती हैं और चंद्रमा को देखकर चकवाकी की भाँति चुप हो जाती हैं।

अलंकार—उपमाओं से पुष्ट उल्लेख।

मूल—(सीता जी का संदेश)—दोहा—

श्री नृसिंह प्रहलाद की वेद जो गायत गाथ।
गये मास दिन आसु ही ढूंढ़ी हैहै नाथ॥ ३०॥

भावार्थ—श्रीसीताजी ने कहा है कि हे नाथ ! श्री नृसिंह और प्रहलाद की कथा जो वेद में वर्णित है, वह शीघ्र ही एक मास बीतने पर झूठी होजायगी अथात् प्रहलाद की कथा से जो यह बात प्रसिद्ध है कि ईश्वर अपने शरणागत भक्तों की रक्षा करते हैं, वह झूठी हो जायगी, क्योंकि यदि एक मास में आप आकर मेरा उद्धार न करेंगे तो रावण मुझे मार डालैगा और लोग कहेंगे कि राम जब अपनी स्त्री को न बचा सके तब प्रहलाद को उन्होंने कैसे बचाया होगा। (क्योंकि उसने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी—यथाः—

"मास दिवस महँ कहा न माना। तो मैं मारव काढ़ि कृपाना" (तुलसी)

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा (कारजमिस कारण कथन—कारः निबंधना)।

मूल—दोहा—आगम कनक कुरंग के, कही बात सुख पाइ।
कोपानल जरि जाय जनि शोक समुद्र न बुड़ाइ ॥ ३१ ॥

भावार्थ—सुवर्ण मृग (कपट मृग रूप मारीच) के आने से पहले जो बात प्रसन्नता पूर्वक आपने कही थी वह प्रतिज्ञा कोपाग्नि में जलने न पावै वा शोक समुद्र में डुबा न दी जाय (कोप वा शोक से भूल न जाइयेगा)—वह बात यह है (देखो प्रकाश १२ छंद ९)।

"राज सुता इक मंत्र सुनो अब। चाहत हौं भुवभार हरयौ सब।
पावक में निज देहहिं राखहु। छाय शरीर मृगै अभिलाखहु॥"

नोट—चूड़ामणि पाकर श्री राम जी को विश्वास हो गया था कि हनुमान अवश्य सीता तक पहुँचे हैं। सीता कथित यह एकान्तिक वार्ता सुनकर वह विश्वास और पक्का हो गया तब राम जी हनुमान की प्रशंसा करने लगे।

मूल—(राम) दंडक छंद—साँचो एक नाम हरि लीन्हें सब दुःख हरि, और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ। वानर नहीं हौ तुम मेरे वानरस सम, बलीमुख सूर बलीमुख निजु गाये हौ। साखामृग नाहीं बुद्धिबलन के साखामृग, कैधों वेद साखामृग केशव को भाये हौ। साधु हनुमंत बलवंत असवंत तुम, गये एक काज को अनेक करि आये हौ॥ ३२॥

शब्दार्थ—हरि=वानर। ठाये हौ=स्थापित किया है (सत्य कर दिखलाया है) वानरस=बाण की शक्ति (अमोघता)। बलीमुख=(१) वानर (२) बलियों में मुख्य। निजु=निश्चय। वेद साखामृग=वेदों की शाखाओं में विचरण करनेवाले।

भावार्थ—(श्री राम जी हनुमान की प्रशंसा करते हैं) वानरों के लिये जितने पर्यायवाची शब्द हैं उनमें जो 'हरि' शब्द है उसी को तुम ने सच्चा कर दिखाया क्योंकि तुमने हमारे सब दुःख हर लिये अर्थात् छुड़ादिये (हरति दुःखम् इति हरिः)। तुमने ऐसा कार्य किया है कि जो तुम्हें वानर

कहे वह झूठा है, तुमने तो अपने लिये (नर हरि) नर-हरि (नृसिंह=नरों में सिंहवत्) नाम स्थापित कर दिया (अर्थात तुम्हें 'नरहरि' की पदवी दी जाय तो ठीक है) । तुम वानर नहीं हो तुम तो मेरे बाण के समान अमोघ शक्ति से सम्पन्न हो, बड़े बड़े शूर वीर वानरों द्वारा तुम बलियों में मुख्य (प्रधान) कहकर प्रशंसित हो (बड़े बड़े शूरवीर वानर तुम्हें प्रधानता देते हैं) तुम केवल शाखामृग (एक शाखा से दूसरी पर उछल कूद करने वाले वानर) नहीं हो, वरन् बुद्धि और बल के शाखामृग हो, या वेदों की शाखाओं के विचरण करने वाले हो (वेदों में पारंगत हो) इसी कारण मुझे अति भाते हो । हे हनुमंत तुम साधु हो, बलवंत हो और यशवंत हो, एक कामको गये थे अनेक काम कर आये ।

अलंकार—परिकरांकुर, विधि, अपह्नुति, यमक, लाटानुप्रास इत्यादि से पुष्ट उल्लेख ।

मूल—(हनुमान) तोमर छंद—

गइ मुद्रिका लैपार । मनि मोहि लाई वार ॥
कह कन्यो मैं बल रंक । अति मृतक जारी लंक ॥ ३३ ॥

भावार्थ—(हनुमान जी कहते हैं) महाराज ! मैंने तो कुछ भी करतूत नहीं की, आपकी मुद्रिका मुझे उसपार लेगई और सीता जी की चूड़ामणि मुझे इस पार ले आई, मैं तो बल

में अति रंक हूँ। लंका को जलाकर भी कौनसा बड़ा का
किया वह तो मरी हुई थी (रामदासों में ऐसी दीनता औ
निरहंकारिता होनीचाहिये)।

मूल—तोमर—अति हत्यो बालक अच्छ। लै गयो बाँधि विपच्छ
जड़ वृच्छ तोरे दीन। मैं कहा विक्रम कीन॥ ३४॥

भावार्थ—अक्षय कुमार को मारा सो वह तो अत्यन्त निर्ब
बालक था, तदनंतर शत्रु मुझे बाँध ले गया (यदि बली होत
तो कैसे बाँधा जाता)। जो वृक्ष तोड़े सो वे तो भी
कमजोर जड़ जीव थे, हे राम जी मैं ने कुछ भी प्रशंसनी
विक्रम नहीं किया (आप जो बड़ाई करते हैं यह केवल
आपकी दीनदयालुताहै—दासों का महत्व बढ़ाते हैं)।

(राम का लंका की ओर प्रयाण)

३ मूल—तिथि विजय दसमी पाय। उठि चले श्री रघुराय॥
हरि जूथ जूथप संग। बिन पच्छ के ते पतंग॥ ३५॥

भावार्थ—विजय दशमी को (कुँवार सुदि १० को) राम
जी ने किष्किंधा के ऋष्यमूक पर्वत से लंका की ओर प्रयाण
किया, साथ में बंदरों की सेना और सेनापति हैं वे मानो
बिनपक्ष के पक्षी हैं (आकाश में उड़ते चलते हैं)।

अलंकार—हीन तद्रूप रूपक।

४ मूल—तोमर—आकास चलित विलास। सूझै न सूर प्रकास॥
पुनि झुच्छ लच्छन संग। जनु जलधि गंग तरंग॥ ३६॥

भावार्थ—वानरों के विलास से आकाश युक्त है अर्थात् सब बानर आकाश में उछलते कूदते उड़ते चलते हैं और वे संख्या में इतने अधिक हैं कि उनकी ओट के कारण सूर्य का प्रकाश दिखाई नहीं देता। पुनः राम के साथ लाखों रीछ भी चलते हैं, उनकी सेना ऐसी जान पड़ती है मानो समुद्र की लहरें चल रही हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—(सुग्रीव) दंडक छन्द—कहै केशोदास तुम सुनो राजा रामचंद्र, रावरी जवहिं सैन उचकि चलति है। पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आसपास, दिसदिस बरषा ज्यों बलनि बलऽति है॥ पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गजराज मृग मृगराज राजिनि दलति है। जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आयजात, पुरइन को सो पात पुहुमी हिलति है॥ ३७॥

शब्दार्थ—उचकि=उछलकर। रोदसी=पृथ्वी और और आकाश दोनों। बरषा ज्यों बलनि बलति है=जैसे वर्षा अपने बल (मेघों) से अति बली होती है वैसे ही आपकी सेना बली वानरों से अति बलवान है। बलति है=बल अति है। पन्नग=सर्प, बड़े बड़े अजगर। पतंग=पक्षी। राजिनि=(राजी) पंक्ति, समूह। दलति है=पीस डालती है। पय=पानी। पुहुमी=पृथ्वी।

भावार्थ—हे राजा रामचन्द्र! जब आप की सेना उछल कर चलती है, तब पृथ्वी और आकाश सब ओर से धूर से पूर्ण

जावे हैं, चारो ओर ऐसा जान पड़ता है मानो घन समूह से बली हो कर वर्षा ही आगई है (आकाश में उछलते चलते हुए वानर और रीछों के समूह बादल समूह से जान पड़ते हैं)। आप की सेना सर्पों, पक्षियों, वृक्षों छोटे बड़े पहाड़ों, बड़े हाथियों, पशुओं और सिंहों के समूहों को पीस डालती है। पाताल का पानी जहाँ तहाँ पृथ्वी के ऊपर आजाता है और पृथ्वी पुरइनपत्र की भाँति हिलने लगती है।

अलंकार—उपमा।

मूल—(लक्ष्मण) दंडकछंद—भार के उतारिबे को अवतरे रामचन्द्र किधौं केशोदास भूमि भारत प्रबल दल। टूटत हैं तरुवर गिरैं गन गिरिवर सूखे सब सरवर सरित सकल जल॥ उचकि चलत कपि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतलके थल थल। लचकि लचकि जात सेस के असेस फन भागि गई भोगवती अतल वितल तल॥ ३८॥

शब्दार्थ—किधौं=उसके विरुद्ध। भारत=भारसे परिपूर्ण करते हैं, और बोझ डालते हैं। दचका=धक्का। दचकत=हिल जाती है। मचकत=नीचे को दबते और पुनः ऊपरको उठते हैं। लचकिजात=नीचे को झुक जाते हैं। सेस=शेषनाग। असेस=(अशेष) सब। भोगवती=पृथ्वी के नीचे के लोक की पुरी। पृथ्वी के नीचे सात तहें (लोक) मानी जाती हैं जिनके नाम क्रमशः ये हैं (१) अतल (२) वितल(३) सुतल (४)तलातल (५) महातल (६) रसातल (७) पाताल। यह

भोगवती पुरी 'अतल' की राजधानी है।

भावार्थ—(लक्ष्मण जी कहते हैं कि) श्रीरामचन्द्रजी ने भूमिके भार को उतारने केलिये अवतार लिया है, पर उसके विरुद्ध अपने प्रवल दल के भार से भूमि का और भी बोझा बढ़ाते हैं। इतना बड़ा दल है कि उसके धक्कों से दरख्त टूटते हैं, पहाड़ गिरते हैं, समस्त तालों और नदियों का जल सूखता है (दलवाले सब पानी पी डालते हैं)। वानरों के उछल कर चलने के धक्कों से जमीन हिल जाती है और मचान की तरह पृथ्वी नीचे को दबती और पुनः उछलती है, शेष के समस्त फन नीचे को झुक झुक जाते हैं, और अतल लोक की भोगवती नगरी वितल लोक को भाग गई है (पहले तल की नगरी दब कर दूसरे तल को चली गई है)—तात्पर्य यह कि दल बहुत बड़ा है।

अलंकार—अत्युक्ति।

मूल—हरिगीतिका छंद—

रघुनाथ जू हनुमंत ऊपर शोभिजैं तेहि काल जू।
उदयाद्रि शोभन शृंग मानहु शुभ्र सूर विसाल जू॥
शुभ अंग अंगद कंध लक्ष्मन लक्षिये यहि भाँति जू।
जनु मेरु पर्वत शृंग अद्भुत चन्द्र राजत रात जू॥ ३९॥

शब्दार्थ—शोभिजै=शोभित हैं। उदयाद्रि=उदयाचल पर्वत। शोभन=सुंदर। शृंग=चोटी। शुभ्र=अति उज्ज्वल। सूर=सूर्य। लक्षिये=दिखलाई पड़ते हैं। रात=रक्ताभावाले,

७७ गोरे (ललाई मिश्रित गौरवर्ण वाले)।

भावार्थ—श्रीरघुनाथ जी उस समय (प्रयाणकालमें) हनुमान जी के कंधे पर सवार ऐसे शोभित होते हैं मानो उदयाचल के सुन्दर शिखर पर विशालाकार उज्ज्वल सूर्य हों, और सुन्दर शरीर वाले अंगद के कंधे पर लक्ष्मण जी सवारी किये इस भाँति दिखलाई पड़ते हैं मानो मेरु पर्वत के शिखर पर लाल गौर लद्मुत चन्द्रमा विराज रहा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

७ **मूल**—दोहा—बलसागर लक्ष्मण सहित कपिसागर रणधीर।
यशसागर रघुनाथजू मेले सागर तीर॥ ४०॥

शब्दार्थ—कपि सागर=समुद्र समान वानरी सेना। मेले= ठहरे, ठहरे, डेरा डाला।

भावार्थ—(इस तरह चलते चलते) बड़े यशस्वी श्रीरामजी, बड़े बली लक्ष्मणजी तथा अति रणधीर समुद्र समान वानरी सेना सहित जाकर समुद्र के किनारे उतरे (पड़ाव डाला)।

अलंकार—सारानुप्रास।

(समुद्र-वर्णन)

मूल—सवैया—

मूरति विभूति पियूषहु को विष इंदु शरीर कि पाय दियो है।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै॥
संत हियो कि धसै हरि संतत शोभ अनन्त कहै कवि को है।
चन्दन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै॥ ४१॥

शब्दार्थ—भूति=अधिकता। विभूति=(१) भस्म(२) रत्न। ईश शरीर=महादेव का शरीर। वियो=दूसरा। संतत=सदा। तरंग तरंगित = प्राचीन काल में मलयगिरि पर्वत से चंदन काट कर समुद्र में फेंक कर समुद्र की तरंगो द्वारा अन्यान्य देशों को लोग ले जाते थे, अतः चंदन के अनेक काष्ठखण्ड सदा समुद्र में तैरा करते थे।

भावार्थ—यह समुद्र है कि महादेव जी का दूसरा शरीर पाया गया है क्योंकि जैसे महादेव के शरीर में विभूति(भस्म) की अधिकता, पीयूष (पीयूषधर चंद्रमा) और विष पायेजाते हैं वैसे ही इस समुद्र में भी विभूति (रत्नादि) की अधिकता, अमृत और विष पाये जाते हैं। अथवा यह समुद्र है या कश्यप प्रजापति का घर है, क्योंकि जैसे कश्यप का घर देवता और दैत्यों का मन मोहता है (पिता का घर और जन्मभूमि प्यारी होती है) वैसे ही यह समुद्र भी अपनी दीर्घता से देव और दैत्यों के मन मोहित करता है। अथवा यह समुद्र है या किसी संत का हृदय है, क्योंकि जैसे संतहृदय में सदैव श्रीहरि निवास करते हैं वैसेही इस समुद्र में भी श्रीहरि बसते हैं, इसकी शोभा अनन्त है जिसे कोई कवि वर्णन नहीं कर सकता। अथवा यह समुद्र है या कोई नागर (नगर निवासी सुचतुर) पुरुष है, क्योंकि जैसे नागर मनुष्य का शरीर चंदनोद्धर से तरंगवत् चित्रित रहता है (शरीर में

चंदन के लहरियादार तिलक लगाते हैं) वैसे ही इस समुद्रका पानी भी चंदनवृक्षों से तरंगित रहता है (तरंगों के साथ चंदन-काष्ठ उतराया करता है)।

अलंकार—छेप और संदेह से पुष्ट उल्लेख।

मूल—हरिगीतिका छंद—

जलजाल काल करालमाल तिमिंगलादिक सों बसै।
उर लोभ छोभ विमोह कोह सकाम ज्यों खल को लसै॥
बहु संपदा युत जानिये अति पातकी सम देखिये।
कोउ माँगनो अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिये॥ ४२॥

शब्दार्थ—तिमिंगल=बड़े बड़े मच्छ (जो तिमि नामक छोटी मछली को निगल जाते हैं)। छोभ=चित्त की विचलित अवस्था, चंचलता। विमोह=बड़ी बड़ी गलतियाँ। कोह=क्रोध। माँगनो=भिक्षुक। पाहुनो=मेहमान, अतिथि।

भावार्थ—इस समुद्र का जलसमूह काल समान कराल तिमिंगलादि मच्छों के समूह से आबाद है, जैसे किसी खल का हृदय लोभ, क्षोभ, कोह, मोह और कामादि बुरे और भयंकर भावों से परिपूर्ण रहता है। यह समुद्र बहुत सम्पदा से युक्त तो है, पर यह महा पातकी के समान समाज से त्यक्त है, क्योंकि देखिये न तो कोई भिक्षुक इससे भिक्षा माँगता है न कोई अतिथि इसका पानी पीता है।

अलंकार—उपमा।

चौदहवाँ प्रकाश समाप्तः।

पन्द्रहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या प्रकाश दसपंचमें दससिर करै विचार।
मिलन विभीषन सेतु रचि रघुपति जैहैं पार॥

मूल—(रावण) हरिगीतिका छंद—
सुरपाल भूतलपाल हौ सब मूल मंत्रन जानिये।
बहु मंत्र वेद पुराण उत्तम मध्यमाधम मानिये॥
करिये जु कारज आदि उत्तम, मध्यमाधम भानिये।
उर मध्य आनि अनुत्तमै जुगये ते आज बखानिये॥ १॥

शब्दार्थ—भानिये=भंग कर डालो, छोड़ दो। अनुत्तम=सर्वोत्तम (अन+उत्तम=जिससे अधिक उत्तम कोई न हो)। जुगये=हृदय में सुरक्षित रखा है।

भावार्थ—रावण अपने मंत्रियों से कहता है कि तुम देवों और भूमि के पालक हो और सब प्रकार के मूलमंत्रों को जानते हो, वेदों और पुराणों में बहुत प्रकार के मंत्र हैं जिनमें से कुछ उत्तम कुछ मध्यम और कुछ अधम माने जाते हैं। इनमें से आदि प्रकार का जो उत्तम मंत्र है उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये, मध्यम और अधम मंत्र को छोड़ देना चाहिये। अतः मैं तुमसे वही मंत्र पूछता हूँ जिसे तुमने सर्वोत्तम समझ कर हृदय में सुरक्षित कर रखा है, आज वही उत्तम मंत्र मुझसे कहो।

लाल गोरे (ललाई मिश्रित गौरवर्ण वाले)।

भावार्थ—श्रीरघुनाथ जी उस समय (प्रयाणकालमें) हनुमान जी के कंधे पर सवार ऐसे शोभित होते हैं मानो उदयाचल के सुन्दर शिखर पर विशालाकार उज्ज्वल सूर्य हों, और सुन्दर शरीर वाले अंगद के कंधे पर लक्ष्मण जी सवारी किये इस भाँति दिखलाई पड़ते हैं मानो मेरु पर्वत के शिखर पर लाल गौर अद्भुत चन्द्रमा विराज रहा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

७ मूल—दोहा—बलसागर लक्ष्मण सहित कपिसागर रणर
यदासागर रघुनाथजू मेले सागर तीर

शब्दार्थ—कपि सागर=समुद्र समान वानरी से
उतरे, ठहरे, डेरा डाला।

भावार्थ—(इस तरह चलते चलते) बड़े य
बली लक्ष्मणजी तथा अति रणधीर सु
सहित जाकर समुद्र के किनारे उत

—लाटानुप्रास।

(समु

भावार्थ—जो अपने भुजबल से मृत्युपाश को तोड़ सकता है, कालदंड जिसको हाथ जोड़ता है, ऐसा कुंभकर्ण सा जिसके भाई है, वह भला किसको कुछ समझ सकता है (कोई भी क्यों न हो, उसके सामने सब तुच्छ हैं)।

अलंकार—काव्यर्थापत्ति । काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(कुंभकर्ण) चतुष्पदी छंद—

आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजे जो मन भावै ।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, आन को मंत्र बतावै ॥
जेहि वर जग जीत्यो, सबै अतीत्यो, तासों कहा बसाई ।
मति भूलि गई तब, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ॥५॥

शब्दार्थ—आपुन=आप । आन=अन्य, दूसरा । मन्त्र=सलाह= वर=बल वा वरदान । अतीत्यो=बीत गया, खतम हो गया । बसाई=वश चल सकता है । मति=सुधि, खबर (ब्रह्मा के वरदान की सुधि कि नर वानर को छोड़ तुम किसी के मारे न मरोगे, यथा—

"तुम काहू के मरहु न मारे । वानर मनुज जाति दुइ बारे" (तुलसी)

तब=सीता हरण के समय । सिर ऊपर आई=आपदा सिर पर आगई ।

भावार्थ—(कुंभकर्ण कहता है) आपतो सब जानते हैं (कि क्या होनहार है) इसी से आप किसी का कहना नहीं मानते, वो अच्छा है जो जी में आवे सो कीजिये । जब तुम सीता

मूल—स्वागता छंद—

आजु मोहिं करने सो कहौ जू। आपु माहिं जनि रोष गहौ जू॥
राजधर्म कहिये छविछाये। रामचन्द्र जौं लगि नहिं आये॥२॥

भावार्थ—अब जैसा मुझे करना चाहिये वैसा मंत्र दो, अपने मन में क्रुद्ध मत हो। जब तक रामचंद्र (ससेना) यहाँ नहीं पहुँचते, तब तक (ही समय है) सुन्दर राजोचित ऐसी कूटनीति बतलाओ जिससे मेरी विजय हो (क्योंकि राम अब यहाँ आ पहुँचेंगे तब मंत्रणा करने का समय न मिलेगा)।

मूल—(प्रहस्त) स्वागता छंद—

बाम देव तुम को वर दीन्हो। लोक लोक सिगरे वश कीन्हो॥
इन्द्रजीत सुत सों जग मोहै। राम देव नर वानर को है॥३॥

शब्दार्थ—बामदेव=महादेव। जग मोहै=संसार मूर्छित हो जाता है, (पराजित होता है)। देव=(संबोधन) हे देव!

भावार्थ—प्रहस्त कहता है, हे देव! शंकरने आपको वर दिया है जिसके बल से आपने सब लोकों को अपने वश में कर लिया है। और जब आपके ऐसा बली पुत्र है जिसने इन्द्र को जीत लिया है और जो संसार को मूर्छित कर सकता है, तो हे देव! नर राम और वानर आप को क्या हानि पहुँचा सकते हैं।

अलंकार—अर्थापत्ति (प्रमाण)।

मूल—मृत्यु पाश भुज जोरहि तोरै। कालदंड जेहि सों कर जोरै॥
कुंभकर्ण सम सोदर जाके। और कौन मन आवत ताके॥४॥

भावार्थ—जो अपने भुजबल से मृत्युपाश को तोड़ सकता है, कालदंड जिसको हाथ जोड़ता है, ऐसा कुंभकर्ण सा जिसके भाई है, वह भला किसको कुछ समझ सकता है (कोई भी क्यों न हो, उसके सामने सब तुच्छ हैं)।

अलंकार—काव्यर्थापत्ति । काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(कुंभकर्ण) चतुष्पदी छंद—

आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै ।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, आन को मंत्र बतावै ॥
जेहि बर जग जीत्यो, सबै अतीत्यो, तासों कहा बसाई ।
मति भूलि गई तब, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ॥५॥

शब्दार्थ—आपुन=आप । आन=अन्य, दूसरा । मन्त्र=सलाह= बर=बल वा वरदान । अतीत्यो=बीत गया, खतम हो गया । बसाई=वश चल सकता है । मति=सुधि, खबर (ब्रह्मा के बरदान की सुधि कि नर वानर को छोड़ तुम किसी के मारे न मरोगे, यथा—

"तुम काहू के मरहु न मारे । वानर मनुज जाति दुइ बारे" (तुलसी)

तब=सीता हरण के समय । सिर ऊपर आई=आपदा सिर पर आगई ।

भावार्थ—(कुंभकर्ण कहता है) आपतो सब जानते हैं (कि क्या होनहार है) इसी से आप किसी का कहना नहीं मानते, वो अच्छा है जो जी में आवे सो कीजिये । जब तुम सीता

हरलाये थे तब तुमने यह न समझा था कि यही हमारी मृत्यु का कारण होगी ? अब दूसरा कौन तुम्हें सलाह दे। जिस वरदान से तुमने संसार को जीता है, वह वरदान अब इस दशा में (नर वानर से बैर कर लेने की दशा में) व्यतीत हो चुका, इस कारण अब कुछ वश नहीं चल सकता। तब तो वह सुधि (ब्रह्मा के वरदान की) भूल गई, और अब जब आपदा सिर पर आगई तब उससे बचने का उपाय सोचते हो (तुमको पहले ही से नर वानर से बैर न करना था—अबतो मृत्यु निश्चित है)।

अलंकार—लोकोक्ति।

मूल—(मंदोदरी) सवैया—राम की वाम जो आनी चोराय सो लंक में मीचु की बेलि बई जू। क्यों रण जीतहुगे तिन सों जिनकी धनुरेख न लाँघि गई जू॥ बीस बिसे बलवंत हुते जु हुती दृग केशव रूप रई जू। तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयम्बर क्यों न लई जू॥ ६॥

शब्दार्थ—बीस बिसे=(बीसोबिस्वा) निश्चय। हुती दृग=जो आँख में चढ़गई थी, पसंद आई थी। रूप रई=रूपसे रंजित, रूपवती।

भावार्थ—(मंदोदरी कहती है कि) तुम जो राम की स्त्री हर लाये यह बात ऐसीही हुई; मानो तुमने लंका में मृत्यु की बेलि बोदी। भला तुम उनसे रण में कैसे जीत सकोगे जिन-

की खींची धनुष-रेखा को तुम लाँघ नहीं सके। यदि तुम निश्चय बलवंत थे और यदि तुम्हारी दृष्टि में सीता रूपवती जँच गई थीं, तो शिव-धनुष को तोड़ कर सीता को स्वयम्वर में हीं क्यों न जीत लिया।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—सवैया—वालि बली न बच्यौ पर खोरिहि क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरिहि। जा लगि छीर समुद्र मथ्यौ कहि कैसे न बाँधिहै बारिधि थोरहि॥ श्री रघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि विना रथ हाथिन घोरहि। तोर्‍यो सरासन संकर को जेहि सोऽव कहा तुव लंक न तोरहि॥ ७॥

शब्दार्थ—खोरि=दोष। थोरा=छोटा। लंक=(१) लंका (२) कमर।

भावार्थ— जिस राम से पर दोषी बली वालि नहीं बच सका उस राम से तुम निज दोषी होकर कैसे बच सकोगे, जिसके लिये राम ने क्षीर समुद्र मथडाला था (कच्छपरूप से, लक्ष्मी के लिये) उसी लक्ष्मीरूपा सीता के हेतु इस छोटे से समुद्र को क्यों न बाँध लेगें। विना चतुरंगिनी सेना के हैं ऐसा समझ कर तुम राम को असमर्थ न समझना। जिसने तुम्हारे पूज्य देव शंकर का धनुष तोड़ डाला वह तुम्हारी लंकापुरी क्यों न जीत लेगा (अथवा तुम्हारी कमर क्यों न तोड़ देगा, क्योंकि परस्त्री लंपट की कमर ही तोड़ देना उसका उचित दंड है)।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—(मेघनाद) दोहा—

मोको आयसु होय जो त्रिभुवन पाल प्रवीन।
राम सहित सब जग करौं नर बानर करि हीन ॥ ८ ॥

अलंकार—स्वभावोक्ति (प्रतिज्ञावद्ध)।

मूल—(विभीषण)—मोटनक छंद—

को है अतिकाय जो देखि सकै। को कुंभ निकुंभ वृथा जो बकै॥
को है इन्द्रजीत जो भीर सहै। को कुंभकरन्न हथ्यार गहै॥ ९ ॥

शब्दार्थ—अतिकाय=एक सेनापति। कुंभ, निकुंभ=कुंभकर्ण के दो वीर पुत्र। इन्द्रजीत=रावणपुत्र मेघनाद।

भावार्थ—अतिकाय की क्या मजाल है कि उनकी ओर देख सके, कुंभ और निकुंभ वृथा बकवादी हैं, ये कुछ नहीं कर सकते। मेघ नाद की क्या मजाल कि उनके साथ युद्ध कर सके और कुंभकर्ण भैया भी उनके साथ नहीं लड़ सकते।

मूल—देखे रघुनायक धीर रहै। जैसे तरु पल्लव वायु बहै॥
जौलौं हरि सिंधु तरैं तरै। तौलौं सियलै किन पाय परै॥ १० ॥

शब्दार्थ—तुम्हारी तरफ कोई ऐसा वीर नहीं कि जो राम को रणोद्यत देखकर सधीर मैदान में टिक सके। सब वीर ऐसे भागेंगे जैसे हवा के चलतेही तरुपत्र उड़ते हैं। बेहतर यह है कि राम के इस पार आने से पहले ही तुम सीता को साथ लेकर जाओ, सीता उन्हें दो और पैर पड़ कर अपना दोष क्षमा कराओ (तो बचने की उम्मेद है, नहीं तो नहीं)।

मूल—जौलौं नल नील न सिंधु तरै। जौलौं हनुमंत न दृष्टि परै॥ ⊗
जौलौं नहिं अंगद लंक दही। तौलौं प्रभु मानहु बात कही॥ ११॥
जौलौं नहिं लक्ष्मण बाण धरै। जौलौं सुग्रीव न क्रोध करै॥
जौलौं रघुनाथ न सीस हरो। तौलौं प्रभु मानहु पाइ परौ॥१२॥

मूल—[रावण] कलहंस छंद—अरि काज लाज तजि कै ⊗
उठि धायो। धिक तोहिं मोहिं समुझावन आयो॥ तजि राम
नाम यह बोल उचार्यो। सिर माँझ लात पगलागत मार्यो॥१३॥

शब्दार्थ—तजि राम नाम=राम का नाम लेना छोड़दे। "उचर्यो
का कर्ता 'रावण' है।

भावार्थ—रावण ने विभीषण से कहा कि शत्रु का पक्ष लेने
को उठ दौड़ा, धिक्कार है तुझे, मुझे तू समझाने चला है?
खबरदार, आज से राम का नाम न लेना। जब रावण ने यह
बात कही तब विभीषण डर कर पैर पड़ने लगा, पैर पड़ते
समय रावण ने विभीषण के सर पर लात से आघात किया।

मूल—कलहंस छंद—करि हायहाय उठि देह सँभार्यो। लि- ⊗
य अंग संग सब मंत्रिय चार्यो॥ तजि अंध बंधु दसकंध उ-
दार्यो। उर रामचन्द्र जगती पति जार्यो॥ १४॥

भावार्थ—चोट लगने पर रो पीट कर विभीषण उठे और देह
को सँभाल कर (सावधान होकर) अपने साथ रहनेवाले
चार मन्त्रियों को साथ लेकर अज्ञानी भाई रावण को छोड़
कर शीघ्रता पूर्वक राम के पास को चल दिये, क्योंकि वे हृदय
से श्रीराम जी को ही समस्त संसार का अधिष्ठाता जानते थे।

मूल—दोहा—मंत्रिन सहित विभीषणै बाढ़ी शोभ अकास।
जनु अलि आवत भाव ते प्रभुपद पदुमन पास ॥ १५॥

शब्दार्थ—शोभ=शोभा। अलि=भौंरे। भाव ते=बड़े प्रेम से।

भावार्थ—मंत्रियों सहित विभीषण आकाशमार्ग से राम जी की ओर जा रहे हैं, (निश्चर होने से शरीर काला है) अतः उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो श्री राम जी के चरण कमलों के पास बड़े प्रेम से भ्रमर आरहे हैं।

नोट—किसी प्रति में "प्रभु पद पदुमनि बास" पाठ है। इस पाठ में अर्थ होगा "प्रभु पद कमल की बास (सुगंध) पाकर मानों प्रेम सहित भौंरे आरहे हैं"।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चौपाई—

निकट विभीषण आय तुलाने। कपिपति सों तब ही गुदराने॥
रघुपति सों तिन जाय सुनायो। दसमुख सोदर सेवहिं आयो॥१६॥

शब्दार्थ—आय तुलाने=आपहुँचे। कपि=कटक के चारों ओर के पहरेदार बंदर। पति=निज अध्यक्ष (सुग्रीव) गुदराने=निवेदन किया।

भावार्थ—जब विभीषण रामदल के निकट आ पहुँचे तब पहरेदार वानरों ने (उन्हें दूर ही पर रोककर) उनका हाल अपने अध्यक्ष सुग्रीव से कहा। उन्होंने राम जी को जा सुनाया कि रावण का भाई आपकी सेवा करने को आया है

और आपसे मिलना चाहता है।

मूल—(श्रीराम)—चौपाई—

बुधि बलवंत सबै तुम नीके। मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के॥
तब जु विचार परै सो कीजै। सहसा शत्रु न आवन दीजै॥१७॥

शब्दार्थ—मंत्रिन ही के=मंत्रियों के हृदय के।

मूल—(सुग्रीव)—मोदक छंद—

रावण को यह साँचहु सोदरु। आपु बली बलवंत लिये अरु॥
राकस वंश हमैं हतने सब। काज कहा तिनसों हमसों अब१८॥

शब्दार्थ—सोदरु=सगा भाई। बलवंत लिये अरु=और भी बलवानों को साथ लिये है। राकस=राक्षस। हतने=हतन करना है, मारना है।

मूल—(जामवंत) मोदक छंद—वध्य विरोध हमैं इनसो अति। क्यों मिलि है हमसों तिनसों मति॥ रावण क्यों न तज्यो तबही इन। सीय हरी जबही वह निर्घृन॥ १९॥

शब्दार्थ—बध्य विरोध=वध्य-वधिक का सा विरोध। निर्घृन=निर्दय (रावण का विशेषण है) जिसे बुरा काम करते घृणा वा लज्जा न लगे।

मूल—(नल) मोदक छंद—

चार पठै इनको मत लीजिय। ऐसहि केसे बिदा करि दीजिय॥
राखिय जो अति जानिय उत्तमा। नाहित मारिय छाँड़ि सबै भ्रम२०॥

शब्दार्थ—चार=दूत।

मूल—दोहा—मंत्रिन सहित विभीषणै बादी शोम अकास।
जनु अलि आवत भाव ते प्रभुपद पदुमन पास ॥ १५॥

शब्दार्थ—शोम=शोभा। अलि=भौंरे। भाव ते=बड़े प्रेम से।

भावार्थ—मंत्रियों सहित विभीषण आकाशमार्ग से राम जी की ओर जा रहे हैं, (निश्चर होने से शरीर काला है) अतः उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो श्री राम जी के चरण कमलों के पास बड़े प्रेम से भ्रमर आरहे हैं।

नोट—किसी प्रति में "प्रभु पद पदुमनि बास" पाठ है। इस पाठ में अर्थ होगा "प्रभु पद कमल की बास (सुगंध) पाकर मानों प्रेम सहित भौंरे आरहे हैं"।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—चौपाई—

निकट विभीषण आय तुलाने। कपिपति सों तब ही गुदराने॥
रघुपति सों तिन जाय सुनायो। दसमुख सोदर सेवहिं आयो॥१६॥

शब्दार्थ—आय तुलाने=आपहुँचे। कपि=कटक के चारो ओर के पहरेदार बंदर। पति=निज अध्यक्ष (सुग्रीव) गुदराने=निवेदन किया।

भावार्थ—जब विभीषण रामदल के निकट आ पहुँचे तब पहरेदार वानरों ने (उन्हें दूर ही पर रोककर) उनका हाल अपने अध्यक्ष सुग्रीव से कहा। उन्होंने राम जी को जा सुनाया कि रावण का भाई आपकी सेवा करने को आया है।

और आपसे मिलना चाहता है।

मूल—(श्रीराम)—चौपाई—

बुधि बलवंत सबै तुम नीके। मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के॥
सब जु विचार परै सो कीजै। सहसा शत्रु न आवन दीजै॥१७॥

शब्दार्थ—मंत्रिन ही के=मंत्रियों के हृदय के।

मूल—(सुग्रीव)—मोदक छंद—

रावण को यह साँचहु सोदरु। आपु बली बलवंत लिये अरु॥
राकस वंश हमैं हतने सब। काज कहा तिनसों हमसों अब१८॥

शब्दार्थ—सोदरु=सगा भाई। बलवंत लिये अरु=और भी बलवानों को साथ लिये है। राकस=राक्षस। हतने=हतन करना है, मारना है।

मूल—(जामवंत) मोदक छंद—वध्य विरोध हमैं इनसों अति। क्यों मिलि है हमसों तिनसों मति॥ रावण क्यों न तज्यो तबही इन। सीय हरी जबही वह निर्घृन॥ १९॥

शब्दार्थ—वध्य विरोध=वध्य-वधिक का सा विरोध। निर्घृन=निर्दय (रावण का विशेषण है) जिसे बुरा काम करते घृणा वा लज्जा न लगे।

मूल—(नल) मोदक छंद—

चार पठै इनको मत लीजिय। ऐसहिं कैसे विदा करि दीजिय॥
राखिय जो अति जानिय उत्तम। नाहित मारिय छाँड़ि सबै भ्रम२०॥

शब्दार्थ—चार=दूत।

मूल—[नील] मोदक छंद—
साँचेहु जो यह है शरनागत। राखिय राजिवलोचन
भीत न राखिय तो अति पातक। होइ जु मातु पिता कुल

शब्दार्थ—मो मत=मेरा यह मत है। भीत=डर कर शरण आया हुआ। होइ. . . पातक=चाहे वह माता पिता और समस्त कुल का घातक ही क्यों न हो।

मूल—(हनुमान)—वसंततिलका छंद—जानौ विभीषण नं राकस रामराजा। प्रह्लाद नारद विशारद बुद्धि साजा॥ सुग्रीव नील नल अंगद जामवंता। राजाधिराज बलिराज समान संतार२।

शब्दार्थ—राकस=राक्षस, । विशारद=पंडित, विद्वान्।

मूल—दोहा—कहन न पाई बात सब हनूमंत गुण धाम।
कहौ विभीषण आपुही सबन सुनाय प्रणाम॥ २३॥

भावार्थ—हनुमान जी ने अपनी बात पूरी न कह पाई थी कि विभीषण ने सब को प्रणाम कर के अपना मर्म कह सुनाया।

मूल—(विभीषण) मत्तगयंद सवैया—
दीन दयाल कहावत केशव हौं अतिदीन दशा गहो गाढ़ो।
रावण के अब ओघ समुद्र में बूड़त हौं बरही गहि काढ़ो॥
ज्यों गज को प्रहलाद की कीरति त्योहीं विभीषण को जस बाढ़ो।
आरत बंधु पुकार सुनौ किन आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो॥२४॥

शब्दार्थ—बर ही=बलपूर्वक, । बाढ़ौ=बढ़ाइये, फैलाइये। किन=क्यों। हौं=मैं। त्योहीं. . . बाढ़ौ=उसी प्रकार विभीषण के बचाने का यश संसार में फैलाइये।

मूल—(पुनः विभीषण) मत्तगयंद सवैया—

केशव आपु सदा सह्यौ दुःख पै वासन देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्यौंहीं तहाँ तेहिंभाँति सँभारे॥
मेरिय बार अबार कहा कहूँ नाहिं तू काहू के दोष विचारे।
बूड़त हौं महा मोह समुद्र में राखत काहे न राखन हारे॥ २५॥

शब्दार्थ—त्यौंहीं=तुरंत, अति शीघ्र। अबार=देर। मोह=दुःख।

अलंकार—रूपक (मोह समुद्र में)।

मूल—बसंततिलका छंद—श्रीरामचंद्र अति आरतवंत जानि। लीन्हो बुलाय शरणागत सुःखदानि॥लंकेश आउ चिर जीवहि लंकधाम। राजा कहाउ जग जौलगि राम नाम॥२६॥

भावार्थ—श्रीराम जी ने विभीषण को दुखी जान, शरणागत सुखदाता होने के कारण यह कहकर बुला लिया कि हे लंकेश आओ, लंका में चिरकाल तक जीवित रहो, और जब तक संसार में राम नाम का साका चलैगा तब तक तुम राजा कहलाओगे।

मूल—तोटक छंद—

जबहीं रघुनायक बाण लियो। सविशेष विशोषित सिंधु हियो॥
तब ही द्विज रूप सु आइ गयो। नल सेतु रचै यह मंत्र दयो॥२७॥

शब्दार्थ—सविशेष=विशेष रूपसे (अत्यन्त)। विशोषित=सूखगया।

भावार्थ—जब राम जी ने धनुष बाण उठाया तब समुद्र का हृदय विशेष रूपसे सूख गया(उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला

—तुलसी), तब ब्राह्मण का रूप बना कर समुद्र आया और यह सलाह दी कि नल के हाथों पुल बँधवाकर सेना को उस पार ले जाइये ।

(सुन्दरकांड-कथा प्रसंग समाप्त)

(सेतु-बंधन)

मूल—दोहा—जहँ तहँ बानर सिंधु महँ गिरिगण डारत आनि।
शब्द रह्यो भरि पूरि महि रावण को दुख दानि ॥ २८ ॥

मूल—तोटक छंद—
उछलै जल उच्च अकाश चढ़ै । जल जोर दिशा विदिशान मढ़ै ॥
जनु सिंधु अकाश नदी अरिकै । बहु भाँति मनावत पाँ परिकै ॥२९॥

शब्दार्थ—अकाश नदी=आकाश गंगा । अरिकै=अड़ गई है, मान किया है । पाँ परिकै=पैर छू छू कर ।

भावार्थ—पहाड़ फेंके जाने से समुद्र का जल बहुत ऊँचे तक उछलता है और (दिशा विदिशाओं में छा गया है)। यह घटना ऐसी जान पड़ती है, मानो आकाश गंगा ने समुद्र से मान किया है (समुद्र नदी-पति होने से आकाश गंगा का भी पति है अतः पत्नीने मान किया है) और समुद्र अपने हाथों से उसके पैर छू छू कर उसे मनाता है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—तोटक छंद—
बहु व्योम विमान ते भीजि गये । जल जोर भये अँगराग रये ॥
सुर सागर मानहु युद्ध जये । सिगरे पट भूषण लूटि लये ॥३०॥

शब्दार्थ—अँगराग रये=अँगराग अर्थात् केसर चंदनादि से रँगे हुए (वस्त्राभूषण विमानों से बह बह कर समुद्र में आगये हैं) । सुर=देवताओं को । युद्ध जये=युद्ध में जीत लिया है । सागर=समुद्र ने ।

नोट—'सुर' कर्म कारक में और 'समुद्र' कर्ता कारक में है । "वस्त्राभूषण विमानों से समुद्र में बह आये हैं" इतने पद अनुक्त हैं ।

भावार्थ—समुद्र से जो जल उछला है उससे आकाशगामी सुर विमान भीग गये हैं, और जलके जोर से देवों के केशर चंदनादि रंजित वस्त्राभूषण समुद्र में बह आये हैं, यह घटना ऐसी जान पड़ती है, मानो समुद्र ने युद्ध में देवताओं को जीत कर उनके वस्त्राभूषण लूट लिये हैं ।

अलंकार—अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

मूल—तोटक छंद—

अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छयो । पुर रावण के जल जोर भयो ॥
तब लंक हनूमत लाइ दई । नल मानहु आइ बुझाइ लई ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—छिछि=उछले हुए पानी की छांछ (धारा) । त्रिकूट =वे तीन शिखर जिन पर लंकापुरी बसी थी । लाइ दई= आग लगादी थी ।

भावार्थ—समुद्र जल की उछलती हुई धाराओं से त्रिकूट पर्वत के तीनों शिखर छागये और रावण की लंकापुरी में

जल भर गया। यह घटना ऐसी जान पड़ी मानो हनु द्वारा जलाई गई लंका को नल ने बुझा लिया।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—तोटक छंद—

लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे। सरितान के फेरि प्रवाह बहे॥
पति देवनदी रति देखि भलीं। पितु के घर को जनु रूसि चलीं॥

शब्दार्थ—लगि सेतु=सेतु से रुककर। देवनदी=आकाश गंगा। रति=प्रीति। पति देवनदी रति=समुद्र और आकाश गंगा की प्रीति (देखो छंद नं० २९)। पितु के घर को=उद्गमस्थान को। 'सोभ गहे' 'प्रवाह' का विशेषण है। फेरि=उलट कर।

भावार्थ—सेतु के कारण (सेतु से रुककर) नदियों के सुन्दर प्रवाह जहाँ तहाँ रुक गये और उद्गमस्थान की ओर को बहने लगे, मानो वे नदियाँ अपने अपने पिता के घरों को इस कारण रूस कर चलदी हैं कि हमारा पति तो आकाशगंगा पर ही अधिक प्रीति करता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—सब सागर नागर सेतु रची। बरणौं बहुधा सुर शक्र सची॥
तिलकावलि सी सुभ सीस लसै। मणिमाल किधौं उर में बिलसै॥

शब्दार्थ—सब=समस्त (यह शब्द 'सुर' का विशेषण है)। नागर=सुन्दर, श्रेष्ठ। रची=अनुरक्त होकर। तिलकावलि=

खौर।

भावार्थ—समस्त देवता, यहाँ तक कि इन्द्र और शची भी, समुद्र के सेतु पर अनुरक्त होकर (सुन्दर देख कर) विविध प्रकार से उसका बर्णन करने लगे, कि यह समुद्र के सिर की खौर है या समुद्र के हृदय पर मणिमाला शोभा दे रही है।

अलंकार—संदेह।

मूल—तारक छंद—उरते शिव मूरति श्रीपति लीन्ही। शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही॥ इनको दरसै परसै पग जोई। भवसागर को तरि पार सो होई॥ ३४॥

शब्दार्थ—उरते=हृदय से, बड़े प्रेमसे, अत्यन्त भक्तिभाव से। श्रीपति=श्रीराम जी। सेतु के मूल=जिस स्थान से सेतु-रचना का आरंभ हुआ था। अधिष्ठित कीन्ही=स्थापित की।

भावार्थ—श्रीराम जीने अति भक्ति भाव से शिव की एक मूर्ति लेकर सेतु के आरंभ के स्थान पर स्थापित की (शिव मूर्ति स्थापित कर के उनकी आराधना की) और श्रीमुख से उस मूर्ति का यह माहात्म्य बतलाया कि जो व्यक्ति इनके दर्शन करेगा वा इनके चरणों का स्पर्श करेगा वह भवसागर के पार तर जायगा (उसका जन्म मरण न होगा, वह मुक्त हो जायगा)।

मूल—दोहा—सेतुमूल शिव शोभिजै केशव परम प्रकास।
सागर जगत जहाज को करिया केशव दास॥ ३५॥

शब्दार्थ—जहाज= नौका। करिया=केवट, खेवक, मल्लाह।

भावार्थ—शिव जी अपने परम प्रकाश से (पूर्ण शक्ति और प्रभाव से युक्त) सेतु के आदि स्थल पर शोभित हैं, मानो संसार सागर के जहाज के मल्लाह हैं।

अलंकार—रूपक से पुष्ट गम्योत्प्रेक्षा।

मूल—तारक छंद—सुक सारन रावन दूत पठायो। कपिराज सों एक सँदेस सुनायो॥ अपने घर जैयहु रे तुम भाई। जमहूँ पहुँ लंक लई नहिं जाई॥ ३६॥

शब्दार्थ—कपिराज=सुग्रीव। भाई=सुग्रीव (बालि से रावण की मित्रता थी, सुग्रीव बालिके भाई हैं। अतः रावण भी भाई कहता है)।

भावार्थ—रावण ने शुक और सारण नामक दो राक्षसों को दूत बनाकर रामदल देखने को भेजा। उन्होंने सुग्रीव से रावण का यह संदेसा सुनाया कि—"हे भाई सुग्रीव! तुम अपने घर लौट जाओ, जमराज भी मेरी लंका नहीं जीत सकते"।

मूल—(सुग्रीव)तारक छंद—भाजि जैहौ कहाँ न कहूँ थल देखौं। जलहू थलहू रघुनायक पेखौं॥ तुम बालि समान सहोदर मेरे। इतिहौं कुल स्यों तिनु प्रानन तेरे॥ ३७॥

शब्दार्थ—तुम बालि . . . . मेरे=तुम बालि समान मेरे हो अर्थात् मेरे संबंध से जो गति बालि की हुई है वही

तुम्हारी भी होगी। तिनु=तृण समान।

भावार्थ—(सुग्रीव ने जवाब दिया) हे शुक और सारन! रावन से कह देना कि भाग कर कहाँ जाओगे, मैं तो कहीं ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ तुम बच सकोगे, क्योंकि मैं जल तथा थल में सर्वत्र राम जी को देखता हूँ। हाँ बेशक तुम बालि के ही समान मेरे भाई हो (अर्थात् जहाँ बालि गया है वहीं तुम भी जाओगे) वंश सहित तेरे तृण समान प्राणों को मैं ही मारूंगा—तेरे पापों के कारण तेरे प्राण तृण समान हलके और कमजोर हो गये हैं, अब तुझ में महाप्राणता नहीं रह गई।

अलंकार—उपमा।

मूल—(कवि वचन) तारक छंद—सब राम चमू तरि सिंधुहि आई। छवि ऋक्षन की धर अंबर छाई॥ यहुधा सुक सारन को सु बताई। फिरि लंक मनो बरषा ऋतु आई॥३८॥

शब्दार्थ—चमू=सेना। धर=पृथ्वी। अंबर=आकाश। फिर=फिर कर, लौट कर (अर्थात् शरद के बाद लौट कर फिर वर्षा आगई)। बताई=दिखलाई।

भावार्थ—राम की समस्त सेना सिंधु को पार करके लंका में आगई, वहाँ काले काले रीछों की शोभा जमीन और आकाश में छागई, वह सब सेना का विस्तार सुग्रीव ने शुक सारन को दिखलाया। वह सब सेना लंका को ऐसे घेरे है मानो फिर

शब्दार्थ—जहाज= नौका। करिया=केवट, खेवक, मल्लाह।

भावार्थ—शिव जी अपने परम प्रकाश से (पूर्ण शक्ति और प्रभाव से युक्त) सेतु के आदि स्थल पर शोभित हैं, मानो संसार सागर के जहाज के मल्लाह हैं।

अलंकार—रूपक से पुष्ट गम्योत्प्रेक्षा।

मूल—तारक छंद—सुक सारन रावन दूत पठायो। कपिराज सों एक सँदेस सुनायो॥ अपने घर जैयहु रे तुम भाई। जमहूँ पहँ लंक लई नहिं जाई॥ ३६॥

शब्दार्थ—कपिराज=सुग्रीव। भाई=सुग्रीव (बालि से रावण की मित्रता थी, सुग्रीव बालिके भाई हैं। अतः रावण भी भाई कहता है)।

भावार्थ—रावण ने शुक और सारण नामक दो राक्षसों को दूत बनाकर रामदल देखने को भेजा। उन्होंने सुग्रीव से रावण का यह संदेसा सुनाया कि—"हे भाई सुग्रीव! तुम अपने घर लौट जाओ, जमराज भी मेरी लंका नहीं जीत सकते"।

मूल—(सुग्रीव)तारक छंद—भाजि जैहौ कहाँ न कहूँ थल देखौं। जलहू थलहू रघुनायक पेखौं॥ तुम बालि समान सहोदर मेरे। हतिहौं कुल स्यों तिनु प्रानन तेरे॥ ३७॥

तुम बालि . . . . मेरे=तुम बालि समान मेरे हो अर्थात् मेरे संबंध से जो गति बालि की हुई है वही

तुम्हारी भी होगी। तिनु=तृण समान।

भावार्थ—(सुग्रीव ने जवाब दिया) हे शुक और सारन! रावन से कह देना कि भाग कर कहाँ जाओगे, मैं तो कहीं ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ तुम बच सकोगे, क्योंकि मैं जल तथा थल में सर्वत्र राम जी को देखता हूँ। हाँ बेशक तुम बालि के ही समान मेरे भाई हो (अर्थात् जहाँ बालि गया है वहीं तुम भी जाओगे) वंश सहित तेरे तृण समान प्राणों को मैं हीं मारूंगा—तेरे पापों के कारण तेरे प्राण तृण समान हलके और कमजोर हो गये हैं, अब तुझ में महाप्राणता नहीं रह गई।

अलंकार—उपमा।

मूल—(कवि वचन) तारक छंद—सब राम चमू तरि सिंधुहि आई। छवि ऋक्षन की धर अंबर छाई॥ बहुधा सुक सारन को सु बताई। फिरि लंक मनो बरषा ऋतु आई॥३८॥

शब्दार्थ—चमू=सेना। धर=पृथ्वी। अंबर=आकाश। फिर=फिर कर, लौट कर (अर्थात् शरद के बाद लौट कर फिर वर्षा आगई)। बताई=दिखलाई।

भावार्थ—राम की समस्त सेना सिंधु को पार करके लंका में आगई, वहाँ काले काले रीछों की शोभा जमीन और आकाश में छागई, वह सब सेना का विस्तार सुग्रीव ने शुक सारन को दिखलाया। वह सब सेना लंका को ऐसे घेरे है मानो फिर

लौट कर लंका में वर्षा ऋतु आगई है ।

नोट—हेमंत ऋतु में चढ़ाई हुई थी । वर्षा का आना अकाल ऋतु परिवर्तन कह कर कवि लंका का अमंगल सूचित करता है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—दंडक छंद—कुंतल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है । सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषनन मध्य देश केशरी सुगज गति भाई है । विग्रहानुकूल सब लक्ष लक्ष ऋक्षबल ऋक्षराज मुखी मुख केशौदास गाई है । रामचन्द्र जूकी चमू, राजश्री विभीषणकी, रावण की मीचु दरकूच चलि आई है ॥ ३९ ॥

नोट—इस छंद का अर्थ तीन तरह से लगेगा । (१) राम जी की सेना का (२) विभीषण की राजश्री का (३) रावण की मीच का ।

शब्दार्थ—(प्रथम अर्थ के लिये)=कुंतल, ललित, नील, भ्रकुटि, धनुष, नयन, कुमुद कटाक्ष, बाण=ये सब यूथप वानरों के नाम हैं । सबल=बलवंत । सदाई=सदैव । सुग्रीव, तार और अंगद=बड़े सरदारों के नाम हैं । भूषनन=सेना में भूषणवत् हैं । मध्यदेश=ये लोग सेना के मध्यभाग के सरदार हैं । केशरी, गज=वानरों की जातियों के नाम हैं । गति भाई है=जिनकी चाल बड़ी सुन्दर है । विग्रह, अनुकूल=

रीछ सेना के यूथपों के नाम हैं। लक्ष लक्ष ऋक्षबल=लाखलाख रीछों की सेना जिनकी सेवा में है। ऋक्षराज मुखी=जिन सब मुखियों में जामवंत जी मुख्य सरदार हैं। मुखगाई है= ये वीर रीछ सेना के मुखभाग (अग्रभाग) में वर्णित हैं। चमू=सेना। दरकूच=कूच दरकूच मंज़िलें तै करती हुई। कई जगह कूचमुकाम करती हुई।

भावार्थ—(कवि अनुमान करता है कि यह राम की सेना है, वा विभीषण की राज्यश्री है, वा रावण की मृत्यु है। प्रथम अर्थ में राम सेना का रूप कैसा है)—कुंतल, नील, भ्रकुटि, धनुष, कटाक्ष, नयन, और बाण नामा वानरों से सदा बलवान है (जो सेना) और जिस सेना में सुग्रीव, तार अंगदादि वीर भूषणवत हैं और यही वीर सेना के मध्य भागके (जिस भाग में श्रीराम और लक्ष्मण स्थित रहते हैं) संचालक हैं। और केशरी तथा गज जाति के वानर भी हैं जिनकी चाल बड़ी सुन्दर है। विग्रह और अनुकूल नामक जिस सेना में रीछ सरदार हैं, जिन सरदारों में से एक एक के पास लाखों रीछों की सेना है 'और जिन सरदारों में जामवंत जी मुख्य हैं (राम जी के ४ प्रधान मंत्रियों में हैं) यह रीछसेना समस्त सेना के मुखभागमें (अग्रभागमें) रहती है। ऐसी राम चन्द्रजी की सेना है।

शब्दार्थ—(दूसरे अर्थ के लिये) कुंतल=केश। ललित=

सुन्दर। नील=काले। भ्रकुटी=भौंहें। नैन=नेत्र। लाल कमल। कटाक्ष=बाँकी चितवन। बल=सौन्दर्य। सुग्रीव=सुन्दर गर्दन। तार=मोती। अंगद=बाजूबंद। मध्यदेश=कमर। केशरी=सिंह। गज गति=हाथी की सी चाल। विग्रहानुकूल=सब शरीर के अंग यथायोग्य हैं। लक्ष लक्ष ऋक्षबल ऋक्षराजमुखी=लाखों नक्षत्रगण सहित चंद्रमा के समान मुखवाली। मुख केशवदास गाई है=केशव के दासों के मुख से प्रशंसित है (सब राम-भक्त जिसकी प्रशंसा करते हैं)।

भावार्थ—(विभीषण की राजश्री का) जिसके सुन्दर काले केश है, भौंहें धनुष समान हैं, नेत्र लाल कमल सम हैं, बाँकी चितवन बाणसम है और जिसका सौन्दर्य (बल) सदा रहनेवाला है। जिसकी सुन्दर ग्रीवा मोतियों से युक्त है, बाजूबंद विजायठ आदि भूषणों से अलंकृत है, कमर सिंह की सी है, चाल गज की सी है जो मन को भाती है। शरीर के और सब अंग भी (कुच, कर, पद, नासा, कपोलादि) यथायोग्य हैं, लाखों नक्षत्रों के सौन्दर्य को लेकर यदि चन्द्रमा निकले तो, जो छवि उस चन्द्रमा की होगी, वैसी ही इसकी मुख छवि है, सब रामभक्त जिसकी प्रशंसा करते हैं (निष्पाप है—बहुधा राजलक्ष्मी सकलंक होती है, वह रामभक्तों से प्रशंसित नहीं होती। पर यह रामभक्तों से प्रशंसित है, अतः निष्पाप

है)-ऐसी होने से यह अनुमान होता है कि यह विभीषण की राजश्री है।

शब्दार्थ—(रावण की मीच के लिये) कुंतल=भाला। ललित=तीक्षण। नील=काले रंगकी। भ्रुकुटी=भौंहें चढ़ाये। धनुष=धनुष लिये हुए। नैन=(नय+न) अन्याय युक्त, विवेक हीन, क्योंकि मृत्यु विवेकरहित होती है। कुमुद=आनन्द रहित, क्रुद्ध। कटाक्ष वाण=चितवन वाण सम कराल है। सवल =वहुत वलवती। सुग्रीव=गर्दन में सुन्दरता यह है कि। सहित तार=(तार=उच्च स्वर) वड़े उच्च स्वर से गरजती है। अंगदादि भूषन न=विजायठ आदि भूषण नहीं धारण किये है, वरन् मुंडमालादि क्रूर और भयानक भूषण धारण किये है। मध्य=मध्यम, असुन्दर। देश=अंग। केशरी सु गज गति भाई है=जिसकी ऐसी तेज गति है जैसे सिंह हाथी पर टूटता है, घातक गतिवाली है (जैसे सिंह हाथी के मारने को चलता है वैसे यह रावण को मारने चली है)। विग्रहानुकूल =(विग्रह=विरोध) रामजी का विरोध-राम वैरही जिसके लिये अनुकूल समय है। लक्ष लक्ष ऋक्ष वल=लाखो रीछों का वल है जिसमें। ऋक्षराज मुखी=रीछ का सा भयंकर मुख है जिसका। मुख . . . . गाई है=जिसका मुख सज्जनों ने ऐसा ही भयंकर कहा है।

भावार्थ—(रावण की मीचुका) तीक्षण भाला लिये, काली

कलूटी, भौंहें चढ़ाये, धनुष लिये, अत्याचारिणी, क्रुद्ध, चितवन बाण सम कराल है और जो सदा ही बलवती है। गले से उच्च स्वर से गरजती है, भूषण रहित मुंडमालादि भयंकर भूषण धारण किये, अंगोंवाली है और जैसे सिंह हाथी के मारने को झपटता वैसी चालवाली है। रावण के मारने के लिये राम वैर जिसे अनुकूल हेतु मिल गया है, जिसमें लाखों रीछों का है (रीछ पेड़ पर चढ़ जाता है—यदि रावण ब्रह्मादि शरण जाय तो भी यह वहाँ तक चढ़ कर मारेगी है), जिसका बड़े रीछ का सा भयंकर मुख है, सज्जनों ने ऐसा ही जिसका वर्णन किया है। इस रूपवाली होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह रावण की मृत्यु है क्या!

अलंकार—छेप से पुष्ट संदेह।

मूल—हीरक छंद—

रावण सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो।
मानहु दस शृंग युत कलिंद गिरि बिमोहियो॥
राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसु सहित मानहु उड़ि कै गयो॥ ४०॥

शब्दार्थ—सुभ स्यामल तनु=अति काले शरीरवाला। शृंग=शिखर। कलिंदगिरि=काले शृंगोंवाला पर्वत (जिससे यमुना निकली हैं)। लाघवगति=शीघ्रता से। हयो=(हन्यो) गिरा दिये। हंस=सूर्य। अंसु=(अंशु) किरण।

भावार्थ—(राम सेना देखने को) काले शरीर वाला रावण अट्टालिका पर यों शोभित हुआ, मानो दस शिखरों सहित कलिंदगिरि सोहता हो। रामजी के बाण ने अति शीघ्र उसके छत्र मुकुटादि गिरा दिये तब वह ऐसा मालूम हुआ मानो किरण सहित सूर्य दूर स्थान को उड़ गया हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—हीरक—लज्जित खल तजि सुथल भजि भवन में गयो।
लक्षण-प्रभु तत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो॥
लंक निरखि अंक हरषि मर्म सकल जो लह्यो।
जाहु सुमति रावण पहँ अंगद सन यों कह्यो॥ ४१॥

शब्दार्थ—सोभयो=शोभित हुए। अंक हरषि=मनसे आनंदित होकर।

भावार्थ—इस बात से लज्जित होकर खल रावण उस स्थान को छोड़ कर घर के भीतर भाग गया। तब राम और लक्ष्मण दोनो वीर लंका के दक्षिण की ओर वाले पहाड़ पर सुख पूर्वक जा बैठे। लंका को देख कर आनंदित हुए। और लंका के दुर्गों का सब भेद जानने के निमित्त राम जी ने अंगद से कहा कि हे सुमति! तुम लंका को जाओ (रावण को समझाओ। यदि वह अब भी मान जाय तो व्यर्थ युद्ध क्यों करना पड़े)।

नोट—यह राजनीति है कि युद्ध की समस्त तैयारी करके

कलूटी, भौंहें चढ़ाये, धनुष लिये, अत्याचारिणी, क्रुद्ध, चितवन बाण सम कराल है और जो सदा ही बलवती है। गले से उच्च स्वर से गरजती है, अंगदादि भूषण रहित मुंडमालादि भयंकर भूषण धारण किये, अंगोंवाली है और जैसे सिंह हाथी के मारने को झपटता है वैसी चालवाली है। रावण के मारने के लिये राम वैर जिसे अनुकूल हेतु मिल गया है, जिसमें लाखों रीछों का है (रीछ पेड़ पर चढ़ जाता है—यदि रावण ब्रह्मादि के शरण जाय तो भी यह वहाँ तक चढ़ कर मारेगी यह भाव है), जिसका बड़े रीछ का सा भयंकर मुख है, सज्जनों ने ऐसा ही जिसका वर्णन किया है। इस रूपवाली होने से ऐसा अनुमान होता है कि यह रावण की मृत्यु है क्या?

अलंकार—श्लेष से पुष्ट संदेह।

मूल—हीरक छंद—

रावण सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो।
मानहु दस शृंग युत कलिंद गिरि बिमोहियो॥
राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसु सहित मानहु उड़ि कै गयो॥ ४०॥

शब्दार्थ—सुभ स्यामल तनु=अति काले शरीरवाला। शृंग=शिखर। कलिंदगिरि=काले शृंगोंवाला पर्वत (जिससे यमुना निकली है)। लाघवगति=शीघ्रता से। हयो=(हन्यो) गिरा दिये। हंस=सूर्य। अंसु=(अंशु) किरण।

भावार्थ—(राम सेना देखने को) काले शरीर वाला रावण अट्टालिका पर यों शोभित हुआ, मानो दस शिखरों सहित कलिंदगिरि सोहता हो। रामजी के बाण ने अति शीघ्र उसके छत्र मुकुटादि गिरा दिये तब वह ऐसा मालूम हुआ मानो किरण सहित सूर्य दूर स्थान को उड़ गया हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—हीरक—लज्जित खल तजि सुथल भजि भवन में गयो।
लक्षण-प्रभु तत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो॥
लंक निरखि अंक हरषि मर्म सकल जो लह्यो।
जाहु सुमति रावण पहँ अंगद सन यों कह्यो॥ ४१॥

शब्दार्थ—सोभयो=शोभित हुए। अंक हरषि=मनसे आनंदित होकर।

भावार्थ—इस बात से लज्जित होकर खल रावण उस स्थान को छोड़ कर घर के भीतर भाग गया। तब राम और लक्ष्मण दोनो वीर लंका के दक्षिण की ओर वाले पहाड़ पर सुख पूर्वक जा बैठे। लंका को देख कर आनंदित हुए। और लंका के दुर्गों का सब भेद जानने के निमित्त राम जी ने अंगद से कहा कि हे सुमति! तुम लंका को जाओ (रावण को समझाओ। यदि वह अब भी मान जाय तो व्यर्थ युद्ध क्यों करना पड़े)।

नोट—यह राजनीति है कि युद्ध की समस्त तैयारी करके

एकबार मेलके लिये अंतिम उद्योग कर लेना चाहिये। अंतिम उद्योग भी असफल हो, तब युद्ध छेड़ना चाहिये।

मूल—चंचला छंद—रामचंद्र जू कहंत स्वर्ण लंक देखि देखि।
ऋक्ष वानरालि घोर ओर चारिहू विशेखि॥
मंजु कंज गंध लुब्ध भौंर भीर सी विशाल।
केशोदास आस पास शोभिजै मनो मराल॥४२॥

शब्दार्थ—कहंत=कहते हैं। ऋक्ष वानरालि=रीछ और वानरों की सेना। गंधलुब्ध=सुगंध के लोभी। शोभिजै=शोभा देते हैं। मराल=हंस (इस उत्प्रेक्षा से जान पड़ती है कि दक्षिण की ओर कहीं पीले और काले रंग के भी हंस होते हैं)।

नोट—चौथे चरण में 'केशोदास' शब्द का 'शो' ह्रस्व उच्चारण युक्त माना जायगा।

भावार्थ—स्वर्ण-लंका को चारो ओर से रीछ वानरों की सेना से विशेष प्रकार से घिरी हुई देख देख कर रामचंद्र जी कहते हैं कि यह लंका कमल सम है और उस में जो काले काले राक्षस हैं वे सुन्दर कमल के अंदर सुगंधलोभी भौंरों के समान हैं, और चारो ओर से रीछ वानरों की घोर सेना जो उसे घेरे हुए है, वे रीछ वानर ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमल के आस पास हंस शोभा देरहे हों।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

सोलहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—यह वर्णन है षोड़शो केशवदास प्रकास
रावण अंगद सों विविध शोभित वचन विलास

मूल—दोहा—अंगद कूदि गये जहाँ आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर शोभित श्यामल वेष॥१

शब्दार्थ—आसनगत=सिंहासन पर बैठा हुआ। कमल की छतरी, जो पहले पीली होती है, फिर बीज पर हरी हो जाती है।

भावार्थ—अंगद छलाँग मारते वहाँ गये जहाँ रावण। पर बैठा था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो कमल छतरी पर भौंरा बैठा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—(प्रतिहार)—नागराज छंद—

पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव सोर छाँ
कुबेर बेर कै कहो न यक्ष भीर
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि
न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र को

शब्दार्थ—जीव=बृहस्पति। सोर=बकवाद। बेर=बार, यक्ष भीर मंडिरे=यक्षों की भीर न लगाओ।

भावार्थ—(अंगद ने रावण का यह विभव देखा कि

दरवान देवताओं से कहता है कि) हे ब्रह्मा धीरे धीरे वेद पढ़ो, हे वृहस्पति बकवाद छोड़ो, हे कुबेर तुझसे कितनी बार कहा कि तू यहाँ यक्षों की भीड़ न लाया कर, हे सूर्य तुम दूर पर नारदादि मुनियों के साथ जा बैठो, और हे मूर्ख चंद्र तू इतना मत बोल यह इन्द्र की सभा नहीं है ।

अलंकार—उदात्त ।

नोट—एक संस्कृत श्लोक भी ऐसाही हमने सुना है:—

ब्रह्मन्न ध्ययनस्य नैप समयः तूष्णीं बहिः स्थीयतां ।
स्वल्पं जल्प वृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः ॥
वीणां संहर नारद स्तुति कथालापैरलं तुम्बुरो ।
सीता रक्षक भक्ष भग्न हृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः ॥

मूल—चित्रपदाछंद—

अंगद यों सुनि बानी । चित्त महा रिस आनी ॥
ठेलि कै लोग अनैसे । जाय सभा महँ बैसे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—ठेलि कै=धक्का देदे कर किनारे करके । लोग अनैसे=(अनिष्ट लोग) निश्चर (रावण के नौकर चाकर) । बैसे=बैठे, जाकर बैठगये ।

भावार्थ—अंगद प्रतिहार की यह (अविवेक भरी) वाणी सुनकर, हृदय में अत्यन्त क्रुद्ध हुए । तब रावण के दरवानों को धकिया कर अलग करके जाकर सभा में बैठ गये ।

भावार्थ—(रावण पूछता है कि) जिस लंकानायक तुमने अपने को बताया है, वह लंकानायक कौन है। छंद नंबर ४) ? (अंगद) वह विभीषण है जो शत्रु को जलाता है (तुम भी देव-शत्रु हो, अतः तुम्हें जलावेगा—अंगद का यह कथन निदान सत्य हुआ, क्या रावण की दाह-क्रिया विभीषण ने ही की) (रावण) जीते वह लंकानायक कैसे होगा ? (अंगद) संसार में जीवित कौन कहेगा (तू तो मृतक ही है)। (रावण) इस संसार में कौन मार सकता है ? (अंगद)—वेरी ही तुझे मारेगी। (रावण) अच्छा वीर ! अब यह बतलाओ कि तुमको उसने किस काम से भेजा है।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

मूल—(अंगद)—सवैया—

श्री रघुनाथ को दानव केशव आयो हो एक न काहू हयोऽ।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि गयोऽ।
सीय निहारि संहारि के राक्षस शोक अशोकवनीहि दयोऽ।
अक्ष कुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयोऽ।।

शब्दार्थ—आयो हो=आया था। हयो=हन्यो; मारा। सागर को मद झारि=समुद्र का अनुल्लंघनीयता का अहंकार गिरा कर। चिकारि=गरज गरज कर (चुपचाप चोरी से नहीं)। त्रिकूट=वह पर्वत जिस पर लंकापुरी स्थित थी। विहारि गयो=सर्वत्र घूम गया। अशोकवनी=अशोक वाटिका।

नीकेहि=सही सलामत (विना किसी हानि के)।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि हे रावण तुझको अबभी अपनी हीन वैभवता नहीं सूझी) श्री राम जी का एक अकेला वानर आया था, उसे तुम न मार सके, समुद्र को अपनी अनुलंघनयिता का घंमड था, उसे गिरागया (लाँघ आया और लाँघ गया) गरज गरज कर त्रिकूट भर में विहार करगया (तेरे महलों में घुसकर तेरी सब स्त्रियों को देख गया)। सीता का पता लगा, राक्षसों को मार, अशोकवाटिका को उजाड़, अक्षय कुमार को मार और लंका को जलाकर सही सलामत लौट गया। तुम उसका कुछ भी न कर सके। क्या इन बातों से तुझे यह नहीं सूझता कि तेरा बल बैभव अब कुछ काम नहीं कर सकता ? अतः अब भी चेत जा।

मूल—(अंगद)--गंगोदक छंद—राम राजान के राज आये इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अवै। देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै मित्र मंत्री जिते पूँछि देखो सबै॥ राखिये जाति को पाँति को वंसको गोतको साधिये लोक पर्लोक को। आनि के पाँ परो, देस लै कोप लै, आसुही ईश सीता चलैं ओकको॥ ९।

शब्दार्थ—देवि=पटरानी (जिसके साथ राज्याभिषेक हो उस स्त्रीकी संज्ञा 'देवी' होती है)। कुंभकर्णादि दै=कुंभकर्ण [illegible]

मूल—हरिगीतिका छंद—

(रावण)—कौन हो पठये सो कौने हाँ तुम्हें कह काम है
(अंगद)—जाति वानर, लंकनायक दूत, अंगद नामहै
(रावण)—कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सब दही
(अंगद)—लंक जारि सँहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही? ४

भावार्थ—(रावण का प्रश्न)—तुम कौन हो, किसने यहाँ भेजा है, क्या काम है ? (अंगद का उत्तर)—हम जाति के वानर हैं, लंका-नरेश के दूत हैं, अंगद हमारा नाम है। (रावणका प्रश्न)—हाँ ! यह तो बतलाओ, वह कौन है जिसको बाँधकर हमने देह पूंछ सब जलादी थी। (अंगद का उत्तर)—तो क्या उसका यह कथन बिल्कुल असत्य है कि उसने लंका को जलाया और अक्षय कुमार को मारा है ?

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

मूल—(महोदर)—

कौनभाँति रहो तहाँ तुम ? (अंगद) राज प्रेषक जानिये।
(महोदर)—लंक लाइ गयो जो वानर कौन नाम बखानिये।
मेघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
[अंगद]—लोक लाज दुन्यौ रहै अति जानिये न कहाँ अबै॥ ५॥

भावार्थ—महोदर नामक मंत्री ने पूंछा कि तुम वहाँ (अपने मालिक के दरबार में) किस पद पर हो। (अंगद उत्तर) हम राजदूत हैं। (महोदर का प्रश्न) हाँ ! जो वानर लंका जला गया उसका क्या नाम है बतलाइये तो।

ना देशकोश ले-अपने पास रख (अर्थात् रामजी तेरा कोष लेने नहीं आये)। आसुही=शीघ्रही (सीता को ही)। ईश=हमारे मालिक (रामजी)। ओक=देश,

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) हे रावण ! अब भी जा। देख, राजाओं के राजा श्री राम जी यहाँ तेरे नगर आगये हैं, मानो तेरा भाग्य ही जगमगा उठा है। पटरानी और भाई कुंभकर्ण इत्यादि जितने तेरे हितैषी मंत्री हैं उनसे पूंछले (कि मेरी सलाह अच्छी है कि नहीं अपनी जातिपाँति, वंश और गोत्रके लोगों को अब भी बच और लोक परलोक भी बनाले। मेरे कहनेसे तू केवल ना कर कि राम जीको सादर अपने घर लाकर सत्कार कर और अपना राजपाट तथा खजाना तू ले रख (वे तेरा राजपाट और खजाना लेने नहीं आये हैं) सीता उनको देदे, वे (हमारे मालिक) केवल सीता को पाकर तुरंत अपने घर को लौट जायँगे।

मूल—(रावण) गंगोदक—लोक लोकेश स्यों जो जु ब्रह्मा रचे आपनी आपनी सींव सों सो रहैं चारि बाहैं धरे विष्णु रक्षाकरैं बात साँची यह वेद बानी कहै। ताहि भ्रूभंगही देवदेवश स्यों विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै। ताहि हौं छोड़ि कै पाँय काक परौं आजु संसार तो पाँय मेरे परै॥ १०॥

शब्दार्थ—स्यों=सहित। जो जु=जो जो। सींव=सीमा,

मर्यादा। भ्रूभंगही=ज़रा टेढ़ी नजर करते ही, तनिक क्रोध से। देवेश=इन्द्र। हौं=मैं।

भावार्थ—(रावण कहता है) सब लोक और लोकपालों सहित जो जो वस्तु ब्रह्मा ने बनाई है, वे सब वस्तुएँ (सबही जीव) अपनी अपनी मर्यादा में रहते हैं। चार भुजावाले विष्णु इस सृष्टि की रक्षा करते हैं यह वेद कहते हैं। उन सब को तथा देवताओं, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि को ज़रा से क्रोध से रुद्र जी नष्ट कर देते हैं। उन रुद्र को छोड़ कर अब मैं किसके पैर पड़ूँ, आज तो संसार मेरे ही पैर पड़ता है (अर्थात् जो होना हो सो हो, मैं अपने इष्टदेव शंकर को छोड़ राम के पैर न पड़ूँगा)।

मूल—मदिरा सवैया—

राम को काम कहा? रिपुजीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ?
बालिबली, छल सों, भृगुनंदन गर्व हर्‍यो, द्विज दीन महा।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्राणन हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्‍यो जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो ११॥

शब्दार्थ—भृगुनंदन=परशुराम। छिति छत्र हत्यो=पृथ्वी भरके सब क्षत्री मार डाले। हैहयराज=कार्तवीर्य सहस्रार्जुन (मंडलाधिपति)।

भावार्थ—(रावण)-राम ने कौन सी करतूत की है? (जो तू मुझे उनके पैर पड़ने को कहता है)। (अंगद)

वे शत्रुओं को जीत लेते हैं। (रावण) कब और शत्रु को कहाँ जीताहै ? (अंगद) बली बालि को जीता है (रावण) छलसे, (अंगद) परशुराम का गर्व हरण किया (रावण) वह तो बेचारा कमजोर तपस्वी ब्राह्मण था (अंगद) वह दीन कैसे था, उसने सब क्षत्रियों को मार किया था और हैहयराज को मारा था। (रावण) कौ राज ? (अंगद) भूल गया, वही हैहयराज जि... खेल ही खेल में तुझको बाँध लिया था।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

मूल—(अंगद) मदिरा सवैया—

सिंधु तर्‍यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो उन बारिध बाँधि कै बाट करी।
श्रीरघुनाथ प्रतापकी बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ जरी ॥१२॥

शब्दार्थ—तुम पै=तुमसे (यह रूप बुंदेलखंडी है)। गई तरी=लाँघी न गई। बाट=रास्ता। जरी=जड़ीहुई, युक्त। जरी=जली। जराइ जरी=नग जटित (सोने और रत्नों की बनी)।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) हे रावण देख! उनका बंदर (एक लघु सेवक) समुद्र लाँघ आया, और तुम से (खुद) उनकी बनाई धनुष रेखा लाँघी नहीं गई। तुमने सेवक वानर को बाँधना चाहा, सो न बाँध सके, उन्हों ने

समुद्र को बाँधकर रास्ता बनाली। हे रावण! राम के प्रताप की बात तुम्हें अब भी नहीं जान पड़ी। तेल और रुई से जटित (युक्त) पूँछ तो न जली और सोने की रत्न जटित लंका जल गई, (अर्थात् अनहोनी घटनाएँ हो रही हैं और। तुम्हें सूझतीं नहीं)।

अलंकार--यमक।

मूल—(मेघनाद)--मदिरा सवैया—

छाँड़ि दियो हमही बनरा वह पूँछ की आगिन लंक जरी।
भीर में अक्ष मर्यो चपि बालक बादिहि जाय प्रशस्ति करी॥
ताल बिंधे अरु सिंधु बँध्यो यह चेटक विक्रम कौन कियो।
वानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो॥१३॥

शब्दार्थ—आगिन=अग्नि। चपि=दबकर। बादिहि=व्यर्थ ही। प्रशस्ति=प्रशंसा, बड़ाई। बिंधे=नाथे। चेटक=धोखे का चमत्कार। विक्रम=बलप्रदर्शक करतूत। बपुरा=दीन हीन। सुरनायक=इन्द्र।

भावार्थ—(मेघनाद कहता है) उस वानर को हम ही ने छोड़ दिया था, पूंछ की अग्नि से लंका में आग लग गई, भीड़ भाड़ के कारण बेचारा छोटा बालक अक्षय कुमार दब कर मर गया, इसी पर वानर ने वहाँ जाकर व्यर्थ ही अपनी बड़ाई की धूम मचादी (कि मैंने ऐसा किया)। सप्तताल नाथे और समुद्र बाँधा सो तो धोखे का चमत्कार

है, इसमें राम ने कौनसी करतूत कर दिखाई। दीन ो नर वानर की कौन बड़ी बात है, मैंने तो एक में इन्द्रको बाँध लिया था।

अलंकार—काव्यर्थापत्ति।

मूल—(अंगद) सवैया—

चेटक सों धनु भंग कियो, तन रावन के अति ही बलु हो।
बाण समेत रहे पचिकै तहँ जा सँग पै न तज्यो थलु हो॥
बाण सु कौन? बली बलि को सुत, वै बलि बामन बाँधि।
वेई सु तौ जिनकी चिर चेरिन नाच नचाइ कै छाँड़ि दियो॥१४

शब्दार्थ—बलु हो=बल था। रहे पचि कै=हैरान हो गये, परिश्रम करते करते हार गये थे। चिर=बूढ़ी।

(अंगद व्यंग से कहते हैं कि) हाँ ठीक है, राम ने चेटक करके धनुष भंग किया था। रावण के तन में तो बड़ा बल था (इन्होंने क्यों न भंग किया?)। प्रत्युत उस धनुष के साथ बाणासुर सहित परिश्रम करके हार गये, पर वह धनुष अपने स्थान से टसकाया न टसका। (तब रावण ने पूछा) कौन बाणासुर? (अंगद) बलवान दैत्यराज बलि का पुत्र। (रावण) हाँ हाँ वेही बलि न जिनको बामन ने बाँध लिया था। (अंगद) हाँ हाँ वेही बलि तो, जिन की बूढ़ी दासियों ने तुम्हें नाच नचाकर छोड़ दिया था।

अलंकार—गूढोत्तर ।

मूल—(रावण) मत्तगयंद सवैया—
नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे ।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदुलै, पितु जालगि मारे ॥
तोसे सपूतहि जाय कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे ।
अंगद संगलै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतै बपुमारे॥१५॥

शब्दार्थ—आठहु=नील, सुखेन, हनुमान, नल, सुग्रीव, जामवन्त और राम तथा लक्ष्मण । पदु=उचित हक़ (बदला)। जाय कै=पैदा करके । अपूतन की पदवी=निपुत्री की गति । पगु धारे=गये, प्राप्त हुए । बपुमारे=बाप को मारनेवाले को (राम को) ।

भावार्थ—(रावण भेदनीति से काम लेता है, अंगद को फोड़ना चाहता है)-हे अंगद ! नील, सुखेन, हनुमान और नल चार ही वीर न उनके पक्षपाती हैं ? और समस्त कपि सेना तो तेरी ही है । अतः आठों को आठो ओर बलिदान करके (मारकर) तू अपने बाप के मारने का बदला ले । तुझसा सपूत पैदा करके बालि निपुत्री की सी गति को प्राप्त हो (धिक्कार है तुझको), अरे अंगद ! अगर तू अकेला डरता है तो ले मेरी समस्त सेना ले जाकर आज ही अपने बाप के हत्यारे को क्यों नहीं मारता ।

मूल—दोहा—जो सुत अपने बापको बैर न लेइ प्रकास ।
तासों जीवत ही मर्यो लोग कहैं तजि त्रास ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो पुत्र खुल्लम खुल्ला ललकार कर अपने बाप के से बदला नहीं लेता उसे लोग निःसंकोच जीवित ही समझते हैं।

मूल—(अंगद) दोहा—

इनको बिलगु न मानिये कहि केशव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु॥ १७॥

शब्दार्थ—बिलगु मानना=बुरा मानना। साधु = भला आदमी।

भावार्थ—जल, अग्नि, पवन और ईश्वर भले और बुरे लोगों के साथ एक सा बर्ताव करते हैं (सम दृष्टि होते हैं) अतः इनके कार्य से बुरा न मानना चाहिये (तात्पर्य यह है कि राम को तुम मेरे बाप का शत्रु बतलाते हो सो झूठ है) वे तो समदर्शी हैं, उनके लिये न कोई शत्रु है न मित्र।

अलंकार— चौथी तुल्ययोगिता।

मूल—(रावण)—द्रुतविलंबित छंद—

हँसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक बात वृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल वानरराज तुम्हैं करौं॥१८॥

शब्दार्थ—बात वृथा कहौ=व्यर्थ बड़ाई करते हो।

मूल—(अंगद)निद्रापालिका छंद—शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं। दूत विधिनूत कबहूँ न उर आनहीं॥ आप मुख दोखि अभिलाष अभिलाषहू। राखिभुज सीस तब और कहँ राखहू

र्थ—सम=उदासीन् (न शत्रु न मित्र)। दूत विधि नूत=तुम्हारी यह नवीन दूतविधि (तुम्हारी यह तोड़ फोड़ की नवीन भेद नीति)।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं) हे रावण ! हम अपने शत्रु मित्र और उदासीन लोगों को अपने मन में अच्छी तरह समझते हैं। तुम्हारी यह नवीन भेदनीति को मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। अपना मुँह देख कर तब राम को मारने की अभिलाषा करो, पहले अपने सिरों और भुजाओं की रक्षा करलो तब और की रक्षा करना।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

मूल—(रावण)—इन्द्रवज्रा छंद—मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे। तेरो कह्यौ दूत सबै सहौं रे॥ वै जो सबै चाहत तोहि मार्‍यौ। मारौं कहा तोहिं जो दैव मार्‍यौ॥ २०॥

भावार्थ—यह मेरी बड़ी भूल है (जो अबतक तुझको मार नहीं डाला) सो क्या कहूँ, भूल तो हो गई। दूत समझ कर तेरी सब बातें सह रहा हूँ। वे लोग (राम सुग्रीवादि) तुझे मरवाना ही चाहते हैं (इसी लिये तुझको दूत बनाकर यहाँ भेजा है कि मेरे हाथों तू मारा जाय) सो अब मैं तुझे क्या मारूँ, तुझे तो दैवही ने मार रक्खा है (शत्रुओं के बीच रहता है तो किसी न किसी दिन अवश्यही मारा जायगा)

मूल—(अंगद)—उपेन्द्रवज्रा छंद—

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। अशेष माथे कटि भू परैंगे॥
शिवा शिवा स्यान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरै विहारी।

शब्दार्थ—नराच=(नाराच) बाण। अशेष=सब। शिवा=शृगाली, स्यारनी। निरौविहारी=(रावण प्रति संबोधन) हे नरक विहारी रावण, हे पापी रावण!

भावार्थ—हे पापी रावण! श्रीराम जी जिस समय धारण करेंगे, उस समय तेरे सब मस्तक कट कट कर में गिरेंगे। और स्यारनी तथा कुत्ते तेरी चोटी पकड़े ओर घसीटते फिरेंगे।

मूल—(रावण)—भुजंगप्रयात छंद—

महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै। प्रतीहार है कै कृपा सूर जोवै॥
कृपानाथ लीन्हे रहैं छत्र जाको। करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको

शब्दार्थ—प्रतिहार=द्वारपाल। सूर=सूर्य। कृपा जोवै=कृपा का अभिलाषी रहता है। कृपानाथ=चंद्रमा।

भावार्थ—(रावण कहता है कि) हे अंगद! महामृत्यु दासी होकर जिसके पैर धोया करती है, सूर्य दरवान होकर जिसकी कृपा का अभिलाषी रहता है, चंद्रमा जिसका छत्र लिये रहता है, उसका शत्रु सुग्रीव क्या अनभला कर सकता है?

अलंकार—उदात्त।

—सका मेघमाला शिखी पाककारी। करै कोतवाली महा री॥ पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो शत्रु सुग्राव ताके॥ २३॥

शब्दार्थ—सका=(फारसी शब्द सक्का) भिश्ती, पानी भरने वाला। शिखी=अग्नि। पाककारी, रसोइया=बावरची। कोतवाली=पहरेदारी। महादण्डधारी=यमराज। बापुरो=बेचारा, दीन हीन।

भावार्थ—(रावण कहता है) मेघसमूह जिसके यहाँ पानी भरते हैं, अग्निदेव जिसके यहाँ रसोइया का काम करते हैं, यमराज जिसके यहाँ चौकीदारी करते हैं, और ब्रह्मा जिस के दरवाजे वेद पढ़ते हैं, ऐसे रावण को बेचारे सुग्रीव की शत्रुता की क्या परवाह है।

अलंकार—उदात्त।

मूल—(अंगद) मत्तगयन्द सवैया—पेट चढ़्यौ पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे। चौक चढ़्यौ चित्रसारि चढ़्यौ गज बाजि चढ़्यौ गढ़ गर्व चढ़्यौ रे॥ व्योम विमान चढ़्योई रह्यौ कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यौ रे। चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे॥ २४॥

शब्दार्थ—पेट चढ़्यौ=गर्भ में आकर माता के पेट पर चढ़ा। पलका=पलंग। पाल की चढ़ा=(विवाह समय में)। चौक चढ़्यौ=विवाह चौक। चित्रसारी=रंगमहल। व्योमविमान=पुष्पक विमान। सो कबहूँ न पढ़्यौ=उस ईश्वर का नाम कभी न जपा। चित

चढ़ि रह्यौ=मन में अहंकार भर रहा है। चिता=सरा। हू चढ्यौ चाहत=मरने का समय आगया (तिस पर

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) रे मूढ़ रावण ! तू के पेट पर चढ़ा, पलना पर चढ़ा, पलंग पर चढ़ा विवाह समय पालकी पर चढ़ा और अबतक मोह ही में रहा। फिर विवाह चौक पर चढ़ा, तदनन्तर स्त्री रंगमहल पर चढ़ा, पुनः हाथी घोड़ा पर चढ़ा और गढ़ पर चढ़ा। पुष्पक विमान पर चढ़ कर घूमता फिरा (इतने भोग विलास सब कर लिये, तब तुष्टि न हुई) पर उस ईश्वर का नाम न जपा (जो है) तू अब भी चेतता नहीं, अब मरने का समय तब भी तेरा चित्त अभिमान ही पर चढ़ा है (आश्चर्य है

अलंकार—सार और पदार्थावृत्त दीपक।

मूल—(रावण) भुजंगप्रयात छंद—निकाऱ्यो जु भैया राज जाको। दियो काढ़ि के जू कहा त्रास ताको॥ राली कहौं बात तोसों। सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों॥ २

शब्दार्थ—निकाऱ्यो=घर से दूर भेजा हुआ। दियो काढ़ि (बुँदेलखंडी बोल-चाल) निकाल दिया। वानराली= की सेना। जुरै=सामने आवै।

भावार्थ—घर से दूर भेजे हुए भाई (भरत) ने बिना ही बाप का दिया हुआ राज जिस राम से छीन लिया

जिसे देस से निकाल दिया, उस राम से मुझे क्या डर है (अर्थात् जो अपने बाप का दिया राज्य नहीं रख सका वह दूसरे का राज्य क्या छीनेगा), तिस पर अच्छे सुभट योद्धाओं की सेना भी साथ नहीं है केवल वानरों की सेना साथ है। हे अंगद! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ, वह राम (जो ऐसा निर्बल है) मुझ से कैसे युद्ध कर सकेगा।

मूल—(अंगद)—मत्तगयंद सवैया—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ सँग रैहैं॥
केशव काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलोई जैहैं॥२६॥

शब्दार्थ—न=और। कुठाउँ बिलैहैं=इसी बुरे ठाम (संसार) में विलीन हो जायँगे। वित्त=धन। कहूँ=कभी। काम के=अपने हितैषी। काम न ऐहै=कुछ भलाई न कर सकेंगे। चित अंतर=चित्त में। अंतक लोक=यमलोक।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) हे रावण! चेत कर, हाथी घोड़े, साथी, चाकर, और गाउँठाउँ ये सब यहीं संसार में विनाश हो जायँगे। पिता, माता, पुत्र मित्र, धन स्त्री ये सब कभी भी तेरे साथ सदैव न रहेंगे। केशव कहते हैं कि अपने हितैषी केवल एक राम हैं, सो तू उनको भुलाये देता है, अन्य सब तो निकम्मे हैं, वे कुछ भलाई न कर सकेंगे। अब भी चेत जा, चित्त में समझले कि यमपुरी को अकेला

ही जाना पड़ेगा।

मूल—(रावण)—भुजंगप्रयात—

डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै। पर द्रव्य छोंड़े परस्त्रीहि लाजै।
पर द्रोह जासों न होवै रतीको। सो कैसे लरै वेष कीन्हे जती को॥२७

भावार्थ—जो गाय और ब्राह्मण से डरता है, अनाथ (अति निर्बल) को देख कर भागता है, पर द्रव्य ग्रहण नहीं करता, परस्त्री के सामने लज्जित होकर मुख नीचा कर लेताहै, जिससे एक रत्ती भर भी पर द्रोह नहीं हो सकता, वह यती-वेष धारी राम मुझसे क्या लड़ सकता है ?

अलंकार—व्याजस्तुति।

मूल—दोहा—गेंद कन्यों मैं खेल को, हरगिरि केशोदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥२८॥

शब्दार्थ—हरगिरि=कैलास। सहास=प्रसन्नतापूर्वक।

मूल—(अंगद) दंडक—जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं। काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ भगर के खेल क्यों सुभट पद पावहीं॥ जीत्यो जो सुरेश रण शाप ऋषिनारि हीको समझहु हम द्विज नाते समझावहीं। गहौ राम पायँ, सुख पाय करै तपी तप, सीता जू को देहि, देव दुंदुभी बजावहीं॥ २९॥

शब्दार्थ—हरगिरि=कैलाश। घनेरे=बहुत से। घाघ=बाजीगर, इन्द्रजालिक। भगर=बालकों का एक खेल जिसमें दो दल होते हैं। पहले दल का एक बालक दौड़ता हुआ दूसरे दल के किसी बालक को छूने का उद्योग करता है

यदि उसने किसीको छूलिया और उसने उसे पकड़ न लिया, तो वह छुवा हुआ बालक 'मृत' कहा जाता है। इस खेल को इस देश में साधारणतः 'कबड्डी' वा 'बैजला' कहते हैं। सुरेश=इन्द्र। ऋषि नारि=अहल्या। द्विज नाते=तुझे ब्राह्मण और विद्वान् समझकर। करै तपी तप=हे तपस्वी! अब तुम तप करो (बूढ़े हो चुके अब तपस्या करने का समय है)।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) जैसे कैलास पर्वत तुमने उठा लिया—जैसा कि तुमकहते हो—ऐसे करोड़ों वानर-बालक उठाया करते हैं (इस से वे वीर नहीं कहलाते); सिर काटने की बात तुम कहते हो, सो इस तरह तो अनेक बाजीगर काटा ही करते हैं (वे धीर वीर नही कहलाते); कबड्डी का खिलाड़ी जो बहुतों को मारता है वह सुभट नहीं कहलाता। तुमने जो इन्द्र को जीत लिया, सो उस को तो अहल्या का शाप ही ऐसा था (तुम्हारी कुछ करतूत नहीं)। अब भी समझ जाओ, हम तुम्हें ब्राह्मण समझ कर समझाते हैं। तुम रामजी के पैरों पड़ो और सुख पूर्वक तपस्या करो, सीता राम जी को दे दो, तो सब देवता प्रसन्न होकर दुंदुभी बजावें और तुम्हारा यशोगान करें।

मूल—(रावण)—वंशस्थ छंद—

तपी जपी विप्रन छिप्रही हरौं। अदेष द्वेषी सब देव संहरौं॥
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥३०॥

शब्दार्थ—छिप्र=शीघ्र । अदेव द्वेषी=निश्चरों के शत्रु। अमानुषी=मनुष्यों से रहित । अवानरी=वानर विहीन ।

भावार्थ—रावण बोला, हे अंगद मैं तप जप करनेवाले ब्राह्मणों को शीघ्र ही मार डालूँगा, निश्चरों के शत्रु सब देवों को भी मारूँगा । मैंने यह सङ्कल्प कर लिया है कि सीता न दूँगा और समस्त भूमि को नर वानर से रहित कर दूँगा (नर तथा वानर जातियों का विनाश कर दूँगा) ।

मूल—(अंगद) मत्तगयंद सवैया—

पाहन ते पतिनी करि पावन टूक कियो धनुहू हर को रे
छत्र विहीन करी छन में छिति गर्व हर्‌यो तिनके बल को रे।
पर्वत पुंज पुरैन के पात समान तरे अजहूँ घरको रे
होयँ नरायन हू पै न ये गुन कौन यहाँ नर वानर को रे

शब्दार्थ—पुरैन=पुरइन (कमल) । अजहूँ=इतने पर भी। घरका=धड़का, शङ्का । गुन=काम । नर वानर — वानर की सन्तान ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) जिसने पत्थर से सुन्दर बनादी, महादेव का धनुष भी तोड़ डाला, और जिसने में पृथ्वी को क्षत्री रहित कर दिया था उनके बल के गर्व को हरण किया, जिनके प्रभाव से पत्थर कमल पत्र समान पर उतराने लगे उनके विषय में अब भी तुझे शङ्का है । कार्य ऐसे हैं जो नारायण से भी नहीं हो सकते, तू या

(राम दल में) नर वानर की सन्तान किसको समझता है ?

अलंकार—काकुवक्रोक्ति ।

मूल—(रावण)—चंचरी छंद—

देहिं अंगद राज तोकहँ मारि वानरराज को ।
बाँधि देहिं विभीषणै अरु फोरि सेतु समाज को ॥
पूँछ जारहिं अक्षरिपु की पायँ लागहिं रुद्र के ।
सीय को तब देहुँ रामहिं पार जायँ समुद्र के ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—वानरराज=सुग्रीव । अक्षरिपु=हनुमान ।

भावार्थ—(रावण सुलहनामे के लिये अपनी शर्तें पेश करता है) हे अंगद ! यदि राम सुग्रीव को मार कर तुझे राजा बनादें, विभीषण को बाँध कर मेरे हवाले करें, समुद्र-सेतु को तोड़ दें, हनुमान की पूँछ जलवादें और शिव के पैरों पड़ें तो मैं सीता दे दूँ और वे समुद्र उतर कर अपने घर चले जायँ ।

अलंकार—सम्भावना ।

मूल—(अंगद) चंचरी छंद—

लंक लाय दियो बली हनुमंत संतन गाइयो ।
सिंधु बाँधत सोधि कै नल छीर छाँट बहाइयो ॥
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं ।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं तेहि ते डरौं ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—लाय दियो=जला गया है । सोधि कै=अच्छी तरह से । छीर=पानी । अन्ध=मूर्ख । हौं=मैं ।

भावार्थ—(अंगद कहते हैं कि) जिस लङ्का को हनुमान ने जला डाला, और जिसको सेतु बाँधते नल ने पानी से अच्छी तरह बहा दिया, उसे (जली-बही लङ्का को) हे मूर्ख! तुझ समेत मैं उखाड़ कर उलट दे सकता हूँ। पर डरता इस बात से हूँ कि बेचारे विभीषण राज्य कहाँ करेंगे (वे कहेंगे कि अंगद ने जली बही लङ्का भी हमारे लिये न छोड़ी-इससे मैं डरता हूँ नहीं तो अभी उलट देता)।

अलंकार—अत्युक्ति।

मूल—दोहा—अंगद रावण को मुकुट लै करि उड़ो सुजान।
मनो चल्यो यमलोक को दससिर को प्रस्थान॥ ३४॥

शब्दार्थ—दससिर=रावण। प्रस्थान=वह वस्तु जो यात्रा दोष निवारणार्थ शुभ मुहूर्त में स्थानान्तर में रखा दी जाती है।

भावार्थ—अंगद रावण का मुकुट लेकर शीघ्रता से चले, मानो यमलोक के लिये रावण का प्रस्थान रखने जाते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सोलहवाँ प्रकाश समाप्त

सत्रहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या सत्रहें प्रकाश में लंका को अवरोधु।
शत्रु चमू वर्णन समर लक्ष्मण को परमोधु॥

शब्दार्थ—अवरोधु=घिराव, चारो ओर से आक्रमण। परमोध=(प्रमुग्ध)बेहोश होना, मूर्च्छित होना। लक्ष्मण को परमोधु=लक्ष्मण का शक्ति से घायल होकर मूर्च्छित होना।

मूल—दोहा—अंगद लै घा मुकुट को परे राम के पाइ।
राम विभीषण के शिरसि भूषित कियो बनाइ॥ १॥

शब्दार्थ—शिरसि=सिरपर। बनाइ=अच्छी तरह से।

मूल—पद्धटिका छंद—

दिसि दक्षिण अंगद पूर्व नील। पुनि हनुमत पच्छिम शत्रुशील॥
दिसि उत्तर लक्ष्मण सहित राम। सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम॥२॥
सँग युत्थप युत्थप बल विलास। पुर फिरत विभीषण आस पास।
निसि वासर सब को लेत सोधु। यहि भाँति भयो लंका निरोधु॥३॥
जब रावण सुनि लंका निरोधु। तब उपजो तन मन परम क्रोधु॥
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि। दक्षिणहि महोदर गयो दौरि॥४॥
भयो इन्द्रजीत पच्छिम दुवार। है उत्तर रावण बल उदार।
कियो विरूपाक्ष थित मध्यदेश। करै नारान्तक चहुँधा प्रवेश॥५॥

शब्दार्थ—(२)शत्रुशील=शत्रुभाव से परिपूर्ण। विराम=स्थित। सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम=सुग्रीव एक केन्द्रस्थान

में अवस्थित हैं।

(३)युत्थप=यूथपति, कप्तान। युत्थप बल बिलास=एक कप्तान के साथ जितनी सेना रहती है ठीक उतनी ही। सँग बिलास=एक कप्तान की मातहती में ठीक उतनी ही सेना दी गई है जितनी का संचालन ठीक रीति से हो सके। सोधु लेत=खबर लेते रहते हैं, जिसे वस्तु की जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ वह वस्तु पहुँचाते हैं। निरोधु=घिराव, चारो ओर से घेर लेना। (४)पौरि=द्वार। (५)इन्द्रजीत=मेघनाद। बल उदार=बहुत बली। मध्यदेश=सेना का केन्द्रस्थल (हेडकार्टर्स)। थित कियो=नियुक्त किया गया, रक्खा गया। चहुँघाँ=चारो ओर।

मूल—प्रमिताक्षरा छंद—

अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये। बहु कपि कँगूरनि लागि गये॥
तब स्वर्ण लंक महँ शोभ भई। जनु अग्नि ज्वाल महँ धूम मई॥

शब्दार्थ—कँगूरनि लागि गये=कँगूरों पर चढ़ गये।

भावार्थ—चारो दरवाजों पर घोर युद्ध हुए। बहुत से रीछ कोट के कँगूरों पर चढ़ गये, उस समय सोने की लंका में ऐसी शोभा हुई मानो अग्नि की ज्वालाओं पर धुवाँ है (स्वर्ण कँगूरे अग्निज्वालावत्, रीछ धूमवत्)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—मरकत मणि से शोभिजैं सबै कगूँरा चारु।
आय गयो जनु घात को पातक को परिवारु ॥७॥

शब्दार्थ—मरकत मणि=मर्कत मणि समान काले रीछ। घातको=मारने के लिये। पातक=पाप (पापका रंग काला है)।

भावार्थ—सब सुन्दर स्वर्ण कंगूरे नीलमणि समान लिपटे हुए रीछों से ऐसे जान पड़ने लगे मानो रावण को विनष्ट करने के लिये पापों का समूह ही एकत्र हो गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—कुसुमविचित्रा छंद (चौपाई)—
तब निकसो रावण-सुत सूरो। जेइ रण जीत्यो हरि बल पूरो॥
तप बल माया तम उपजायो। कपिदल के मन संभ्रम छायो॥८॥

शब्दार्थ—हरि=इन्द्र। बलपूरो=बली। संभ्रम=बड़ा भारी भ्रम (धोखा)।

भावार्थ—तब युद्ध करने के लिये बली इन्द्र को भी जीत लेने वाला रावणपुत्र मेघनाद कोट से बाहर आया और उसने अपने तपबल से माया का अंधकार पैदा कर दिया जिससे वानरों को बड़ा भारी धोखा हुआ।

अलंकार—निदर्शना से पुष्ट हेतु।

मूल—दोधक छंद—
काहु न देखि परै वह योधा। यद्यपि हैं सिगरे बुधि बोधा॥
सायक सो अहिनायक साँध्यो। सोदर स्यों रघुनायक बाँध्यो॥९॥

शब्दार्थ—बुधिबोधा=दूसरों को बुद्धि देनेवाले अर्थात् अति बुद्धिमान। सो=उसने। अहि नायक सायक=सर्पबाण, नागपाश। साँध्यो=संधान किया। स्यों=सहित।

भावार्थ—अंधकार के कारण वह योद्धा किसी को दिखलाई नहीं पड़ता, यद्यपि सबही वीर बड़े बुद्धिमान हैं (पर कोई उपाय नहीं चलता)। उसने नागपाश का संधान किया और लक्ष्मण सहित श्रीराजी को बाँध लिया।

मूल—रामहि बांधि गयो जब लंका। रावण की सिगरी गई शंका॥
देखि बँधे तब सोदर दोऊ। यूथप यूथ त्रसे सब कोऊ॥१०॥

मूल—स्वागता छंद—
इन्द्रजीत तेइ लै उरलायो। आजु काज सब मो मन भायो॥
कै विमान अधिरूढ़ित धायो। जानकीहि रघुनाथ दिखायो॥११॥

भावार्थ—(जब मेघनाद राम को नागफाँस में बाँधकर उन्हें रणभूमि में छोड़कर, रावण के पास आया तब) रावण ने मेघनाद को छाती से लगा लिया और कहा कि वाह बेटा! शाबाश! आज सब काम मेरे मन का हुआ। तदनन्तर उसी दशा में दिखलाने के लिये सीता को विमान पर सवार कराकर रावण शीघ्रता पूर्वक राम के पास लेगया और उन्हें दिखलाया कि देखो हमने राम की यह गति कर डाली।

मूल—राजपुत्र युत नागनि देख्यौ। भूमि पुत्रि तरु चंदन लेख्यौ॥
पन्नगारिप्रभु पन्नगसाई। काल चाल कछु जानि न जाई॥१२॥

शब्दार्थ—राजपुत्र=राम और लक्ष्मण को । भूमिपुत्रि= सीता जी ने । पन्नगारिप्रभु=गरुड़ के स्वामी, गरुड़गामी विष्णु । पन्नगसाई=शेष की शय्या पर सोनेवाले नारायण । काल चाल=समय का हेर फेर ।

भावार्थ—जानकी ने राम लक्ष्मण को नागफाँस में बँधा देखा, वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पवेष्टित चन्दन वृक्ष हैं । (कवि कहता है कि) आश्चर्य है, समय का हेर फेर कुछ जाना नहीं जाता, देखो तो जो राम विष्णु और नारायण ही हैं (जो गरुड़गामी और शेषशायी हैं) वे ही राम आज नागफाँस में बँधे हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (पूर्वार्द्ध में) ।

मूल—दोहा—कालसर्प के कवल तें छोरत जिनको नाम ।
बँधे ते ब्राह्मण वचनवश, माया सर्पहिं राम ॥१३॥

भावार्थ—(कवि का कथन है कि) जिनका नाम लेने से जीव काल सर्प के फँदे से छूट जाता है (अमर हो जाता है वा मुक्त हो जाता है) वे ही राम, ब्राह्मण के वचन के वशीभूत होकर माया की नागफाँस में बँधे हैं ।

अलंकार—रूपक से पुष्ट निदर्शना ।

मूल—स्वागता छंद—

पन्नगारि तबही तहँ आये । ब्याल जाल सब मारि भगाये ॥
लंकमाँझ तबही गई सीता । सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥१

शब्दार्थ—पन्नगारि=गरुड़। सुभ्र देह अवलोकि=राम लक्ष्मण के शरीरों को नागफाँस से मुक्त देख कर। सुगीता=प्रशंसित (सती पतिव्रताओं में प्रशंसित—यह शब्द सीता का विशेषण है)।

भावार्थ—इसी समय (जब सीताजी राम लक्ष्मण के शरीर को देख रही थीं) गरुड़ जी वहाँ आये और नागफाँस के सब सर्पों को मार भगाया। जब शुभगीता सीता ने राम लक्ष्मण के शरीरों को नागफाँस के कष्ट से मुक्त देख लिया तब लंका को (निज निवासस्थान को) लौट गईं। (भाव यह कि सती पतिव्रता सीता के दृष्टिपात मात्र से उनके पति और देवर की भारी मुसीबत कट गई—माता सीता की कृपा-कोर क्या नहीं कर सकती)।

मूल—(गरुड़)—इंद्रवज्रा छंद—

श्रीराम नारायण लोककर्ता। ब्रह्मादि रुद्रादिक दुःख हर्ता॥
सीतेश मोको कछु देहु शिक्षा। नान्ही बड़ी ईश जु होइ इच्छा॥१५॥

भावार्थ—(गरुड़ जी विनती करते हैं) हे राम! आप लोक रचना कारक नारायण ही हैं, आप ब्रह्मा और रुद्रादि देवताओं के दुःखहर्ता हैं (मैं आपका दुःख क्या निवारण करूँगा)। हे सीता-पति! मुझे निज इच्छानुसार छोटी बड़ी कोई आज्ञा दीजिये वैसा मैं करूं (तात्पर्य यह कि आज्ञा हो तो आपकी सेवा हित मैं यहीं रहूँ, शायद फिर ऐसा ही कोई

काम आ पड़े)।

मूल—(राम)—

कीवे हुतो काज सबै सु कीन्हो। आये इते मो कहँ सुक्ख दीन्हो॥
पाँ लागि बैकुंठ प्रभा विहारी। स्वर्लोक गो तत्क्षण विष्णुधारी॥१६॥

शब्दार्थ—कीवे हुतो=जो करना था। इते=यहाँ। सुक्ख—(छन्द के गण के निर्वाह के कारण केशव ने 'सुख' शब्द को कई जगह इस रूप से लिखा है)। पाँ लागि=चरण छूकर। बैकुंठ प्रभाविहारी=बैकुंठ में रहनेवाले। स्वर्लोक=बैकुंठ। विष्णुधारी=विष्णु वाहन (गरुड़)।

भावार्थ—रामजी ने कहा, हे गरुड़ जो कुछ तुम्हें करना था सो सब तुम कर चुके (तुम्हारी इतनी ही सहायता दरकार थी, अब कभी जरूरत न पड़ेगी) तुम यहाँ आये और मुझ को बड़ा सुख दिया (अब तुम निज स्थान को जाओ) यह सुन बैकुंठ में रहने वाले गरुड़ श्रीरामजी के पैर छूकर तुरंत बैकुंठ को चले गये।

मूल—इन्द्रवज्रा छंद—

धूम्राक्ष आयो जनु दंडधारी। ताको हनूमंत भयो प्रहारी।
जिते अकंपादि बलिष्ट भारे। संग्राम में अंगद वीर मारे। १७॥

शब्दार्थ—दंडधारी=यमराज। प्रहारी भयो=मार डाला।

मूल—उपेन्द्र वज्रा छंद—

अकंप धूम्राक्षहि जानि जूझ्यो। महोदरे रावण मंत्र बूझ्यो॥
सदा हमारे तुम मंत्र वादी। रहे कहा है अतिही विवादी॥

मूल—(महोदर)—

कहै जो कोऊ हितवंत बानी। कहौ सो तासों अति दुःखदानी॥
गुनौ न दावै बहुधा कुदावै। सुधी तबै साधत मौन भावै॥१९॥

भावार्थ—महोदर ने उत्तर दिया कि जो कोई हितकी बात कहता है उसे तुम दुःखद बात कहते हो, (गालियाँ देते हो)। तुम्हारी मति ऐसी हो गई है कि बहुधा दाव कुदाव (मौका-बेमौका) नहीं समझती, इसी से बुद्धिमान (सुधी) जन मौनभाव ग्रहण करते हैं (इसी से मैं भी चुप हूँ)।

(राजनीति वर्णन)

मूल—उपेन्द्र वज्रा—कह्यौ शुकाचार्य सु हौं कहौं जू। सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू॥ नृपाल भू में विधि चारि जानो। सुनौ महाराज सबै बखानौं॥ २०॥

भावार्थ—श्री शुक्राचार्य जी ने जो कुछ कहा है वही मैं कहता हूँ, क्योंकि मैं सदा तुम्हारा हित चाहता हूँ। सुनिये मैं बखान करता हूँ। पृथ्वी में चार प्रकार के राजा होते हैं।

मूल—भुजँगप्रयात छंद—

यहै लोक एकै सदा साधि जानै। बली वेनु ज्यों आपु ही ईश मानै॥
करैं साधना एक परलोकही को। हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को २१॥

भावार्थ—एक प्रकार के राजा इसलोक को ही सर्वस्व समझ कर इसी की साधना करना जानते हैं, जैसे बली वेणु जो अपने को ईश्वर मानता था। एक प्रकार के राजा परलोक

ही की साधना करते हैं, जैसे राजा हरिश्चन्द्र जी, जिन्होंने सारी पृथ्वी ही दान कर दी थी।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

दुहूँ लोक को एक साधैं सयाने। विदेहीन ज्यों वेद वानी बखाने॥
नहैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे। त्रिशंकै हँसै ज्यों भलेऊ अनैसे॥२२॥

भावार्थ—एक ऐसे सयाने होते हैं कि दोनो लोक साधते हैं, जैसे वेद में वर्णित विदेही राजा (मिथिला के राजा जनक इत्यादि) हुए हैं। और एक ऐसे हठी होते हैं कि दोनो लोक नष्ट करते हैं, जैसे त्रिशंकु राजा जिसे भले बुरे सब लोग हँसते हैं।

मूल—दोहा—चहूँ राज को मैं कह्यौ तुमसो राज चरित्र।
रुचै सु कीजै चित्त में चितहु मित्र अमित्र॥२३॥

भावार्थ—चारो प्रकार के राजाओं का चरित्र मैंने कह दिया, अब जो तुम्हें रुचे सो करो, और मन में समझ बूझ कर चाहे मुझे मित्र समझिये चाहे अमित्र।

(मंत्री वर्णन)

मूल—दोहा—चारि भाँति मन्त्री कहे चारि भाँति के मन्त्र।
मोहिं सुनायो शुक्र जू सोधि सोधि सब तन्त्र२४॥

शब्दार्थ—तंत्र=ग्रंथ।

मूल—छप्पय—एक राज के काज हतै निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मन्त्री सुख साजे॥ एक राज के काज आपने काज बिगारत। जैसे लोचन हानि सही कवि बलिहि

निवारत ॥ इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यों। इक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥२५॥

शब्दार्थ—हर्तैं=नष्ट करते हैं। सुरथ= राजा सुरथ की कथा मार्कंडेय पुराण में देखो। कवि=शुक्राचार्य। दासरथिदूत= (रामदूत) हनुमान जी। रावरो पूत=(आपका पुत्र) मेघनाद-(हनुमान को बाँध लाया जिससे लंका जली)।

भावार्थ—एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपनी भलाई के लिये राज्य की भलाई नष्ट करदेते हैं। जैसे राजा सुरथ को निकाल कर मंत्री ने अपना सुख साधन किया (देखो प्रकाश २३ छंद नं० १६)। एक ऐसे होते हैं कि राजा की भलाई के लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं जैसे राजा बलि को निवारण करते हुए शुक्राचार्य ने अपना एक नेत्र तक खो दिया। एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपना और अपने मालिक दूनोंका भला करते हैं, जैसे हनुमान। और एक ऐसे होते हैं कि अपना और अपने राजा दूनों का बुरा करते हैं जैसे आप का पुत्र मेघनाद।

मूल—दोहा—मन्त्र जु चारि प्रकार के मंत्रिन के जे प्रमान।
विष से दाड़िम बीज से गुड़ से नीम समान२६॥

भावार्थ—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं यह निश्चय जानो। एक विष समान, एक अनार बीज समान, एक गुड़ सा और एक नीम सा। विषसा=खाने में कटु और

मारक, सुनने में कटु और नष्टकारक भी। दाड़िम बीजसा=खाने में मधुर और पुष्टिकारक–सुनने में मधुर और गुण में पुष्टिप्रद। गुड़ सा=सुनने में मधुर पर प्रभाव में गर्म अर्थात् दस्तावर (दुखद)। नींब सा=सुनने में कटु पर गुण में रोगहारी (सुखद)।

अलंकार—धर्मलुप्ता उपमा।

मूल—चन्द्रवर्त्म छंद—

राजनीति मत तत्त्व समझिये। देस काल गुनि युद्ध अरुझिये॥
मंत्रि मित्र अरि को गुण गहिये। लोक लोक अपलोक न वहिये२७

शब्दार्थ—युद्ध अरुझिये=युद्ध में फँसिये। अपलोक=अपकीर्ति, अपयश।

भावार्थ—हे प्रभु! राजनीति–मत का सार समझ लीजिये, तब देश और काल को अच्छी तरह विचार कर (यदि देश और काल अपने अनुकूल हों तो) युद्ध आरंभ कीजिये। मंत्री, मित्र अथवा शत्रु की कही अच्छी बात को ग्रहण करना चाहिये। लोक लोकान्तर में अपयश न होना चाहिये।

मूल—(रावण)—चन्द्रवर्त्म छन्द—

चारि भाँति नृप जो तुम कहियो। चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो।
राम मारि सुर एक न बचिहैं। इन्द्रलोक बसोवास हिं रचिहैं

शब्दार्थ—बसोवास=निवासस्थान।

नियारत ॥ इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यों। इक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥२५॥

शब्दार्थ—हतैं=नष्ट करते हैं। सुरथ= राजा सुरथ की कथा मार्कंडेय पुराण में देखो। कवि=शुक्राचार्य। दासरथिदूत= (रामदूत) हनुमान जी। रावरो पूत=(आपका पुत्र) मेघनाद-(हनुमान को बाँध लाया जिससे लंका जली)।

भावार्थ—एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपनी भलाई के लिये राज्य की भलाई नष्ट करदेते हैं। जैसे राजा सुरथ को निकाल कर मंत्री ने अपना सुख साधन किया (देखो प्रकाश २३ छंद नं० १६)। एक ऐसे होते हैं कि राजा की भलाई के लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं जैसे राजा बलि को निवारण करते हुए शुक्राचार्य ने अपना एक नेत्र तक खो दिया। एक मंत्री ऐसे होते हैं कि अपना और अपने मालिक दूनोंका भला करते हैं, जैसे हनुमान। और एक ऐसे होते हैं कि अपना और अपने राजा दूनों का बुरा करते हैं जैसे आप का पुत्र मेघनाद।

मूल—दोहा—मन्त्र जु चारि प्रकार के मंत्रिन के जे प्रमान।
विष से दाड़िम बीज से गुड़ से नींब समान२६॥

भावार्थ—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं यह निश्चय जानो। एक विष समान, एक अनार बीज समान, एक गुड़ सा और एक नींब सा। विषसा=खाने में कटु और

घूँसा मारा जिस से मरकर वह गिर पड़ा और उसका सिर (सुन्दर मुकुट सहित) धूल में लत पत होगया।

मूल—वंशस्थ छंद—महाबली जूझतही प्रहस्त को। चल्यो तहीं रावण भीड़ि हस्त को॥ अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजैं। गयंद क्रोधान्ध जहाँ तहाँ गजैं॥ ३०॥

भावार्थ—महाबली प्रहस्त को मरा हुआ सुनकर, हाथ मलते (पश्चात्ताप करते) हुए तुरंत रावण स्वयं लड़ने को चला। उसके चलते ही अनेक ढोल और नगारे बजने लगे और क्रुद्ध हाथी जहाँ तहाँ गरजने लगे।

मूल—सनीर जीमूत-निकास सोभहीं। विलोकि जाको सुर सिद्ध छोभहीं॥ प्रचंड नैऋत्य समेत देखिये। सप्रेत मानो महकाल लेखिये॥ ३१॥

शब्दार्थ—जीमूत=बादल। निकास=(सं० निकाश) सदृश, समान। छोभहीं=डरते हैं। नैऋत्य=निश्चर। महकाल=महाकाल।

भावार्थ—लंकापति रावण रणभूमि को आते समय खूब जलभरे बादल के समान सघन नीलवर्ण शोभा को धारण किये हुए हैं, जिसको देखकर देवता और सिद्धगण डरते हैं। बलवान राक्षस भी साथ में हैं अतः ऐसा जान पड़ता है मानों प्रेतगण सहित महाकाल ही हैं।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

(समर भूमि में रावण की ओर के योद्धाओं का वीर परिचय)

मूल—(विभीषण)—वसंततिलका छंद—कोदंड महारथवंत जो है। सिंहध्वजा समर-पंडित-वृन्द मोहै, जोधा बली प्रबल काल कराल नेता। सो युद्ध जेता ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—महाकोदंड मंडित=बड़ा धनुष लिये हुए रथवंत=रथ पर सवार। नेता=शासक। जेता=जीतने वाला।

भावार्थ—जो बड़ा धनुष लिये हुए है और रथ पर सवार है जिसकी ध्वजा पर सिंह का चिह्न है, जिस को देख कर बड़े चतुर योद्धाओं के समूहों के छक्के छूट जाते हैं, जो महाबली है और कराल काल का भी शासक है, वही युद्ध इन्द्र को भी जीतनेवाला मेघनाद है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—जो व्याघ्र वेष रथ व्याघ्रहि केतुधारी। कुबेर विपत्ति कारी ॥ लीन्हें त्रिशूल सुरसूल समूल मानो श्री राघवेंद्र अतिकाय वहै सु जानो ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—आरक्त=खूब लाल। सुरसूल=देवताओं की मृत्यु समूल=पूर्ण।

भावार्थ—जो बाघमुँहा रथ पर सवार है और जिसकी में बाघ ही का चिह्न है, जिसके नेत्र खूब लाल हैं, जिसने पर विपत्ति ढाही थी, जो हाथ में ऐसा त्रिशूल लिये हुए

मानो देवताओं की पूर्ण मृत्यु ही है, हे राम जी, उसीको अतिकाय जानिये (वही अतिकाय नामा योद्धा है)।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—जो कांचनीय रथ शृंगमयूरमाली। जाकी उदार उर षण्मुख शक्तिशाली॥ स्वर्धामहर, कीरति कैं न जानी। सोई महोदर वृकोदर बंधु मानी॥ ३४॥

शब्दार्थ—काञ्चनीय=सोने का बना। शृंङ्ग मयूर-माली= जिसकी चोटी पर अनेक मोर-चित्र हैं। जाकी=(इसका अन्वय 'शक्ति' के साथ करो)। शाली=लगी। स्वः=स्वर्ग। हर=लूटनेवाला। कैं=कौन।

भावार्थ—जो सोने के रथ पर सवार है और जो मयूरध्वजी है, जिसकी बरछी षट्मुख के चौड़े सीने में घुस गई थी, जिसने स्वर्गके प्रत्येक घर को लूट लिया है, जिसकी कीर्ति कौन नहीं जानता, वही वृकोदर का अभिमानी भाई महोदर नामा वीर है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा विराजै। श्री सूर्यमंडल विडंबन ज्योति साजै॥ आखंडलीय वपु जो तनत्राण धारी। दंपांतकै सु सुरलोक विपत्तिकारी॥ ३५॥

शब्दार्थ—सूर्य मण्डल विडम्बन=सूर्य मण्डल को जलाने वाली। आखण्डलीय=इन्द्र का। तनत्राण=कवच (इसका

अन्वय आखण्डलीय शब्द के साथ है)।

भावार्थ—जिस के रथ के अग्रभाग पर सर्पध्वजा है, जिसकी कांति सूर्य-मण्डल को लजाती है, जो इन्द्र का कवच अपने शरीर पर धारण किये है, वही देवताओं को विपत्ति डालनेवाला देवांतक नामक वीर है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—जो हंसकेतु भुजदंड निषंगधारी। संग्राम सिंधु अवगाहकारी॥ लीन्ही छँड़ाय जेहि देव अदेव वामा। खरात्मज वली मकराक्ष नामा॥ ३६॥

शब्दार्थ—निषङ्ग=तरकस। अवगाहकारी=मंथन करनेवाला। अदेव=दैत्य।

भावार्थ—जो हंसध्वज है, भुजदण्ड पर तरकस धारण किये हुए है, जो बहुधा समर सिन्धु को मथ डालता है, जिसने देवों और दैत्यों की स्त्रियाँ छीन ली हैं, वही खर का पुत्र मकराक्ष नामा वीर है।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—लगी स्यंदनै वाजिराजी विराजै। जिन्हैं देखिकै पौन को वेग लाजै॥ भले स्वर्ण के किंकिनी यूथ बाजैं। मिले दामिनी सों मनो मेघ गाजै॥ ३७॥ पताका बन्यो शुभ्र शार्दूल सोभै। सुरेन्द्रादि रुद्रादि को चित्त छोभै॥ लसै छत्रमाला हँसै सोमसा को। रमानाथ जानो दशग्रीव ताको॥ ३८॥

भावार्थ—जिसके रथ में घोड़ों की पङ्क्ति जुती हुई है, जिन्हें देख कर पवन का वेग भी लज्जित होता है। अच्छे सोने की बनी घंटियों के समूह जिसमें बजते हैं, मानो बिजली युक्त मेघराज गरजते हों ३७ ॥ जिसकी पताका में स्वेत शार्दूल शोभता है, जिसे देख कर इन्द्र रुद्रादि के मन क्षुब्ध होते हैं (व्याकुल होते हैं) जिसके सिरों पर ऐसी छत्र-पंक्ति है जो चन्द्र-प्रभा की हँसी उड़ाती है, हे रमापति राम जी ! वही रावण है।

अलंकार—ललितोपमा, उत्प्रेक्षा(३७)ललितोपमा निदर्शना(३८)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

पुरद्वार छाँड़्यौ सबै आपु आयो। मनो द्वादशादित्य को राहु धायो
गिरिग्राम लैलै हरिग्राम मारैं। मनो पद्मिनीपद्म दंती विहारैं॥३९॥

शब्दार्थ—गिरि ग्राम=पहाड़ों के समूह। हरिग्राम=बन्दरों के समूह।

भावार्थ—रावण सब वीरों को लङ्कापुरी के द्वार पर छोड़ रणभूमि में आप अकेला आया, मानो बारहो आदित्यों को पकड़ने के लिये राहु अकेला दौड़ा है। रावण को रणभूमि में पाकर सब वानर समूह पर्वत समूहों से उसे मारते हैं, पर वह (रावण) इधर उधर इस प्रकार विचरता है मानो कमल और कमलिनियों के साथ हाथी खेल कर रहा हो (अर्थात् वे पर्वत रावण के शरीर में वैसे ही लगते हैं जैसे

हाथी के शरीर में कमलादि पुष्प)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

(लक्ष्मण को शक्ति लगना)

मूल—सवैया छंद—

देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोप रई है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूँछ लपेटि के डारि दई है॥
दूसरि ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि के फूल सी ओड़िलई है॥४०॥

शब्दार्थ—रोप रई=क्रुद्ध होकर। डारि दई है=भूमि में फेंक दी है। अमोघ=जो कभी निष्फल न हो। हाइ हाइ भई है=लोगों ने हा हा कार मचाया। फूलि के=हर्ष और उत्साह सहित। ओड़ि लई=रोक ली।

भावार्थ—रणभूमि में विभीषण को देख कर, क्रुद्ध होकर रावण ने बरछी उठाई और विभीषण को लक्ष्य करके चलाई। रावण के हाथ से छूटते ही हनुमान ने उसको बीच ही में पूँछ से पकड़ कर रोक लिया और अन्यत्र फेंक दिया। तब रावण ने दूसरी ब्रह्मदत्त अमोघ शक्ति चलाई जिसे देख कर सब लोगों ने हा हा कार मचाया (कि अब विभीषण न बचेगा) पर लक्ष्मण जी ने शरणागत की अच्छी रक्षा की और हर्षपूर्वक फूल की तरह उस बरछी को अपनी छाती से रोक लिया (और मूर्च्छित होकर गिर पड़े)।

अलंकार—लोकोक्ति, उपमा।

मूल—स्रग्विनी छंद—जोर ही लक्ष्मणै लेन लाग्यो जहीं। मुष्टि छाती हनूमंत मार्‍यो तहीं॥ आसुही प्राण को नाश सो है गयो। दंड द्वै तीनि में चेत ताको भयो॥ ४१॥

भावार्थ—जोर लगा कर जब रावण लक्ष्मण को उठाने लगा तब हनुमान ने रावण को एक घूँसा मारा। घूँसे के लगते ही शीघ्र ही रावण के प्राण निकल से गये (मूर्च्छित हो गया) और दो तीन दण्ड बाद उसे चेत हुआ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा—('नाश सो है गयो' में)।

मूल—मरहट्टा छंद—

आयो डर प्राणन, लै धनु बाणन, कपि दल दियो भगाय।
चढ़ि हनूमंत पर, रामचंद्र तब, रावण रोक्यौ जाय॥
धरि एक बाण तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाय।
लागे दूजो सर, छूटि गयो घर, लंक गयो अकुलाय॥ ४२॥

शब्दार्थ—आयो डर प्राणन=रावण हनुमान से डर गया (अतः उनसे तो न बोला, पर औरों को मारने लगा)। घर=बल, हिम्मत। बनाय=अच्छी तरह से।

भावार्थ—रावण जब हनुमान से डर गया, तब उसने धनुष बाण लेकर कपिदल को भगा दिया, (गड़बड़ी मची) तब राम जी ने हनुमान के कंधे पर सवार होकर जाकर रावण को रोका। एकही बाण से सारथी, छत्र, ध्वजा और मुकुटों को अच्छी

तरह से काट दिया। दूसरा बाण लगते ही, रावण की हिम्मत छूट गई और व्याकुल होकर लंका को लौट गया।

अलंकार—दूसरी विभावना (हेतु अपूरण ते जहाँ कारज पूरण होय)।

मूल—दोधक छंद—

यद्यपि है अति निर्गुणताई। मानुष देह धरे रघुराई॥
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो॥४३॥

भावार्थ—यद्यपि राम जी गुणातीत हैं, तो भी राम जी जब मानव शरीर धरे हैं तब मनुष्य की सी लीला करनी ही चाहिये (यह सोच कर) जब राम जी ने लक्ष्मण को मूर्च्छित देखा, तब नेत्रों से आँसू न रोक सके और वे फूट फूट कर रोने लगे (और कहने लगे कि):—

—(राम) दोधक छंद—

लक्ष्मण मोहिं विलोको। मोकहँ प्राण चले तजि, रोको॥
हौं सुमिरौं गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे॥४४॥

भावार्थ—राम जी विलाप करने लगे कि हे लक्ष्मण एक बार मेरी ओर ताको, मुझको छोड़ कर प्राण जाया चाहते हैं, उन्हें रोको। मैं तुम्हारे कौन कौन गुण याद करूँ, तुम तो मेरे भाई, पुत्र और मित्र ही थे।

अलंकार—तुल्ययोगिता (तीसरी)

मूल—लोचन प्रान तुहीं धनु मेरो। तू बल विक्रम पारक हेरो॥
तू बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूठ न भाखौं॥४५॥

चौदहो यम और आठो वसुओं को नष्ट कर दूँगा। ग्यारहो रुद्रों को समुद्र में डुबाकर सब गन्धर्वों को पशु की भाँति बलिदान कर दूँगा तथा अभी तुरन्त बिना विलम्ब कुबेर और इन्द्र को पकड़ कर राजा बलि के हवाले कर दूँगा। विद्याधरों को अविद्यमान कर दूँगा, सब सिद्धों की सिद्धताई छीन लूँगा। अदिति (देवमाता-सूर्य की माता) निश्चय ही दिति की दासी होगी और पवन, अग्नि और जल सब मिटा दूँगा (प्रलय उपस्थित कर दूँगा)। हे सुग्रीव! सुनो, यदि सूर्य उदय होगा तो सारी सृष्टि को असुरों के अधिकार में कर दूँगा (देवताओं को नष्ट कर दूँगा)।

अलंकार—प्रतिज्ञावद्ध स्वभावोक्ति।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

हन्यौ विघ्नकारी बली बीर बामैं। गयो शीघ्रगामी गये एक यामैं॥
चल्यौ लै सबै पर्वतै कै प्रणामैं। न जान्यो विशल्यौषधी कौन तामैं॥४०

शब्दार्थ—विशल्यौषधी=विशल्यकरणी जड़ी।

शेष—द्रोणगिरि पर चार जड़ियाँ थीं। १-विशल्य करणी=तुरन्त भर देनेवाली। २-साँवरणी=तुरन्त चमड़ा ३-सञ्जीवनी=मूर्च्छित को सचेत कर देने हुए अङ्गों के पृथक् पृथक् टुकड़ों

समय) रास्ता

सब (जितने वीर आज मरे हैं) एक साथही जीवित हो उठें। अथवा हम सब जो मृतवत् हैं जी उठें—आनंदित हो जायँ।

अलंकार—सम्भावना।

मूल—सोदर सुर को देखत ही मुख। रावण के सिगरे पुरवै सुख। बोल सुने हनुमंत कन्यो प्रभु। कूदि गयो जहँ औषधि को बनु॥४८॥

भावार्थ—(विभीषण कहते हैं कि) हे राम जी ! तुम्हारा भाई सूर्य का मुख देखते ही—सूर्योदय होते ही—रावण के सब सुख पूरे कर देगा (मर जायगा)। यह बात सुन कर हनुमान ने औषधि लाने की प्रतिज्ञा की और कूद कर औषधि के वन में (द्रोणपर्वत पर) जा पहुँचे।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज निबंधना)।

मूल—(राम) षट्पदी—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट सम करौं अष्ट वसु। रुद्रन घोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥ बलित अबेर कुबेर बलिहिं गहि देउँ इन्द्र अब। विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥ निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल। सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥ ४९॥

शब्दार्थ—बलित अबेर=अति शीघ्र, बिना विलंब। निजु= निश्चय ही। सूरज= (सूर्यपुत्र) सुग्रीव। करौं असुर संसार बल=संसार में असुरों का बल (अधिकार) कर दूँगा।

भावार्थ—(जब विभीषण ने कहा कि सूर्योदय होते ही मर जायँगे, तब राम जी क्रुद्ध हो कर कहते हैं कि

रोकनेवाले बली और कुटिल वीर (कालनेमि) को मारा, और पहर भर रात बीतते बीतते वहाँ पहुँच गये। परन्तु चूंकि स्वयं विशल्यादि औषधियों को नहीं पहचानते थे अतः प्रणाम करके समस्त पर्वत ही उठाकर ले चले।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—लसैं औषधी चारु भो व्योमचारी। कहै देखि यों देव देवाधिकारी॥ पुरी भीम की सी लिये सीस राजै। महामंगलार्थी हनूमंत गाजै॥ ५१॥

शब्दार्थ—भो व्योम चारी=आकाश मार्ग से चले। देवाधिकारी=इन्द्र।

भावार्थ—पर्वत को लेकर हनुमान जी आकाश मार्ग से चले तो उसमें वे दिव्य औषधियाँ चमचमाती थीं। इस तरह जाते हुए देखकर देवता लोग और इन्द्र यों कहने लगे कि महामंगल के चाहनेवाले हनुमान गरजते हुए जा रहे हैं और द्रोणगिरि पर्वत उनके सिर पर मङ्गल मण्डल सा शोभा दे रहा है।

अलंकार—उपमा।

मूल—(इन्द्र) भुजंगप्रयात छंद—लगी शक्ति रामानुजै साथौ। जड़े ह्वै गये ज्यों गिरे हेम हाथी॥ तिन्हैं ज्याइबे सुनो प्रेमपाली। चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली॥ ५२

शब्दार्थ—प्रेमपाली=प्रेममय। ज्वालमाली=दिव्य औषधि से झलझलाता हुआ द्रोणपर्वत। कीर्तिमाली=यशी, कीर्ति (हनुमान)।

भावार्थ—(देवगण परस्पर बातें करते हैं)—राम के

रहनेवाले राम के छोटे भाई लक्ष्मण को शक्ति लगी है और वे मूर्च्छित हो कर गिर गये हैं, ऐसे जान पड़ते हैं जैसे सुवर्ण रंग का हाथी हो। उन्हीं को जिलाने के हेतु, हे प्रेम-पालन करनेवाले देवताओ ! सुनो, ये कीर्तिमान हनुमान दिव्य औषधियों से देदीप्यमान इस पर्वत को लिये जा रहे हैं।

नोट—कुबेर के नियुक्त किये यक्षगण हनुमान को रोकना चाहते थे। इसपर इन्द्र ने उन्हें इस प्रकार समझाया है। 'प्रेमपाली' शब्द इस अभिप्राय से कहा गया है कि हमी सब देवताओं की भलाई के लिये राम-रावण का युद्ध हो रहा है। तुमभी अपना प्रेम दिखलाओ—(रोकना न चाहिये, वरन् इनकी सहायता करो)।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—किधौं प्रात ही काल जी में विचार्यो। चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहार्यो॥ किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हें। महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हे॥२३॥

शब्दार्थ—अंशु=किरण। अंशुमाली=सूर्य। ज्वालामुखी=ज्वालामुखी अग्नि।

भावार्थ—(यह छंद कवि-कृत अनुमान है) किधौं यह विचार कर कि सूर्योदय होते ही प्रातःकाल लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग कहा गया है (अतः जिससे सूर्योदय हो ही न सकै) सूर्य को मार कर हनुमान उनकी किरणों को ही समेट लिये जा रहे हैं। अथवा अग्निदेव को ही जबरदस्ती पकड़े

लिये जा रहे हैं, जिसमें होम करने से लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग ही मिट जाय (हवनादि सुकर्मों से अल्पायु दोष का मिटना हमारे सनातन धर्म में माना गया है)।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

बिना पत्र हैं यत्र पालाश फूले। रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूले।
सदानंद रामैं महानंद कों लै। हनूमंत आये बसंतै मनो लै॥

शब्दार्थ—सदानंद=(यह राम का विशेषण है) सदैव आनन्द रूप। महानंद कों=और अधिक आनंदित होने के लिये।

भावार्थ—(दिव्य औषधियों से झलझलाता हुआ हनुमान जी लाये हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो सदैव आनन्द स्वरूप श्री राम जी को अधिक [illegible] करने के हेतु साक्षात् बसंत ही को हनुमान जी [illegible] लाये हैं (क्योंकि यह घटना शिशिर ऋतु में हुई थी) क्योंकि जैसे बसंत में पत्ररहित पलाश फूलते हैं, भौंर कोकिल निनाद करते हैं, वैसे ही इस पर्वत में सब ही मौजूद हैं (ज्वलंत औषधियाँ पलास पुष्प सम हैं, भौंर कोकिलादि पक्षी उसमें थे ही)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मोटनक छंद—

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये। दूनी सुभ सोभ शरीर लिये॥
कोदंड लिये यह बात रटै। लंकेश न जीवत जाइ घटै॥ ५५॥

शब्दार्थ—छिये=छूकर (बुन्देलखण्ड में 'छूना' का उच्चारण 'छीना' करते हैं और 'खूब' को 'खीब' भी बोलते हैं)। रटै=रटते हैं।

भावार्थ—ज्योंही विशल्यकरणी इत्यादि औषधियाँ लक्ष्मण के शरीर से छुवाई गईं त्योंही लक्ष्मण जी दुगुणित हृष्ट-पुष्ट हो कर उठ खड़े हुए और धनुष लिये हुए ललकारने लगे कि हाँ हाँ! सावधान! खबरदार! जीते जी रावण लङ्का को लौट न जाने पावे (तात्पर्य यह कि यह सब कष्ट उन्हें स्वप्नवत् हुआ)।

मूल-श्रीराम तहीं उर लाइ लियो। सूँघ्यो सिर आशिष कोटि दियो
कोलाहल यूथप यूथ कियो। लंका दहल्यो दसकंठ हिय्यो॥५६॥

भावार्थ—ज्योंहीं लक्ष्मण उठ खड़े हुए त्योंही राम जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सिर सूँघ कर अनेक असीसें दीं। राम सेना में आनन्दमय कोलाहल मच गया और लङ्का में रावण का हृदय दहल उठा।

सत्रहवाँ प्रकाश समाप्त

लिये जा रहे हैं, जिसमें होम करने से लक्ष्मण की मृत्यु का संयोग ही मिट जाय (हवनादि सुकर्मों से अल्पायु दोष का मिटना हमारे सनातन धर्म में माना गया है)।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

बिना पत्र हैं यत्र पालाश फूले। रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूले।
सदानंद रामैं महानंद को लै। हनूमंत आये बसंतै मनो लै।

शब्दार्थ—सदानंद=(यह राम का विशेषण है) सदैव आनन्द रूप। महानंद को=और अधिक होने के लिये।

भावार्थ—(दिव्य औषधियों से झलझलाता हुआ हनुमान जी लाये हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो सदैव आनन्द स्वरूप श्री राम जी को अधिक करने के हेतु साक्षात् बसंत ही को हनुमान जी आप लाये हैं (क्योंकि यह घटना शिशिर ऋतु में हुई थी) क्योंकि जैसे बसंत में पत्ररहित पलाश फूलते हैं, भौंर कोकिल निनाद करते हैं, वैसे ही इस पर्वत में सब ही मौजूद हैं (ज्वलंत औषधियाँ पलास पुष्प सम हैं, भौंर कोकिलादि पक्षी उसमें थे ही)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मोटनक छंद—

ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये। दूनी सुभ सोभ शरीर लिये
कोदंड लिये यह बात ररै। लंकेश न जीवत जाइ घरै॥५

शब्दार्थ—छिये=छूकर (बुन्देलखण्ड में 'छूना' उच्चारण 'छीना' करते हैं और 'खूब' को 'खीब' भी बोल हैं)। ररै=रटते हैं।

भावार्थ—ज्योंही विशल्यकरणी इत्यादि औषधियाँ लक्ष्मण के शरीर से छुवाई गईं त्योंही लक्ष्मण जी दुगुणित हृष्ट-पुष्ट हो कर उठ खड़े हुए और धनुष लिये हुए ललकारने लगे कि हाँ हाँ! सावधान! खबरदार! जीते जी रावण लङ्का को लौट न जाने पावे (तात्पर्य यह कि यह सब कष्ट उन्हें स्वप्नवत् हुआ)।

मूल—श्रीराम तहीं उर लाइ लियो। सूँघ्यो सिर आशिष कोटि दियो
कोलाहल यूथप यूथ कियो। लंका दहल्यो दसकंठ हियो॥५६॥

भावार्थ—ज्योंहीं लक्ष्मण उठ खड़े हुए त्योंही राम जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सिर सूँघ कर अनेक असीसें दीं। राम सेना में आनन्दमय कोलाहल मच गया और लङ्का में रावण का हृदय दहल उठा।

सत्रहवाँ प्रकाश समाप्त

अठारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—अष्टादशों प्रकाश में केशवदा
कुंभकर्ण को वर्णिवो मेघनाद

मूल—दोधक छंद—
रावण लक्ष्मण को सुनि नीके। छूटि गये ...
रे सुत मंत्रि विलंब न लावो। कुंभ करहाँ जाइ

भावार्थ—जब रावण ने सुना कि लक्ष्मण (शक्ति के घाव से मरे नहीं) तब उसको आर जीने की सब आशा जाती रही (उसने कि जब ब्रह्मशक्ति भी इनके उपर असर नहीं इनसे कैसे जीत सकूँगा)। तब आज्ञा दी और हे मंत्रियो! अब देर न करो और को जगाने की चेष्टा करो।

मूल—राक्षस लाखन साधन कीने। दुंदुभि दी
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजरपुंज ...

भावार्थ—राक्षसों ने कुंभकर्ण को जगाने के उपाय किये। बड़े बड़े नवीन नगाड़े (कानों बजवाये गये और छोटे बड़े अनेक मस्त उसको रौंदते रौंदते हार गये तब भी वह न

अलंकार—विशेषोक्ति ।

मूल—आइ जहीं सुरनारि समागीं । गावन वीन बजावन लागीं ॥ जागि उठो तबहीं सुरदोषी । छुद्र छुधा बहु भक्षण पोषी ॥३॥

भावार्थ—पर जब सौभाग्यवती देवांगनायें आकर वीणा बजाकर उसके निकट गाने लगीं तब वह देवताओं का शत्रु (कुंभकर्ण) जाग उठा और अपनी कलेवावाली (जलपान वाली) छोटी भूख को बहुत सी सामग्री से शान्त किया ।

अलंकार—विभावना (दूसरी) ।

मूल—नराच छंद—अमत्त मत्त दंति पंक्ति एक कौर को करै । भुजा पसारि आस पास मेघ ओप संहरै ॥ विमान आसमान के जहाँ तहाँ भगाइयो । अमान मान सों दिवान कुंभकर्ण आइयो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ओप=प्रभा । अमान=अपरिमित, बहुत अधिक । मान=घमंड; शानशौकत । दिवान=(फारसी शब्द) राजसभा; अथवा राजा का छोटा भाई (बुँदेलखंड में राजा के छोटे भाई को 'दिवान' कहते हैं) ।

भावार्थ—मस्त और गैरमस्त हाथियों के झुण्ड के झुण्ड एक एक कौर में उड़ा जाता है, इधर उधर हाथ फैलाता है तो मेघों की प्रभा को मात करता है (फैलाने से उसकी भुजाएँ मेघों की उँचाइ तक पहुँचती हैं जिनकी कालिमा देख कर मेघ भी लजाते हैं)—आसमान में विचरनेवाले देवताओं

अठारहवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—अष्टादशें प्रकाश में केशवदास कराल
कुंभकर्ण को वर्णिबो मेघनाद को काल

मूल—दोधक छंद—
रावण लक्ष्मण को सुनि नीके। छूटि गये सब साधन जी
रे सुत मंत्रि विलंब न लावो। कुंभ करश्राहिं जाइ ॥१॥

भावार्थ—जब रावण ने सुना कि लक्ष्मण अच्छे हो गये (शक्ति के घाव से मरे नहीं) तब उसको अपने जीतने आर जीने की सब आशा जाती रही (उसने समझ लिया कि जब ब्रह्मशक्ति भी इनके उपर असर नहीं करती तब मैं इनसे कैसे जीत सकूँगा)। तब आज्ञा दी कि हे पुत्रो और हे मंत्रियो! अब देर न करो और जाकर कुंभकर्ण को जगाने की चेष्टा करो।

मूल—राक्षस लाखन साधन कीने। दुंदुभि दीह बजाइ नवीने॥
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजरपुंज जगावत हारे॥२॥

भावार्थ—राक्षसों ने कुंभकर्ण को जगाने के लिये लाखों उपाय किये। बड़े बड़े नवीन नगाड़े (कानों के निकट) बजवाये गये और छोटे बड़े अनेक मस्त और साधारण हाथी उसको रौंदते रौंदते हार गये तब भी वह नहीं जागा।

अलंकार—विशेषोक्ति ।

मूल—आइ जहीं सुरनारि सभागीं । गावन वीन बजावन लागीं ॥ जागि उठो तवहीं सुरदोषी । छुद्र छुधा बहु भक्षण पोषी ॥३॥

भावार्थ—पर जब सौभाग्यवती देवांगनायें आकर वीणा बजाकर उसके निकट गाने लगीं तब वह देवताओं का शत्रु (कुंभकर्ण) जाग उठा और अपनी कलेवावाली (जलपान वाली) छोटी भूख को बहुत सी सामग्री से शान्त किया ।

अलंकार—विभावना (दूसरी) ।

मूल—नराच छंद—अमत्त मत्त दंति पंक्ति एक कौर को करै । भुजा पसारि आस पास मेघ ओप संहरै ॥ विमान आसमान के जहाँ तहाँ भगाइयो । अमान मान सों दिवान कुंभकर्ण आइयो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—ओप=प्रभा । अमान=अपरिमित, बहुत अधिक । मान=घमंड; शानशौकत । दिवान=(फारसी शब्द) राजसभा; अथवा राजा का छोटा भाई (बुँदेलखंड में राजा के छोटे भाई को 'दिवान' कहते हैं) ।

भावार्थ—मस्त और गैरमस्त हाथियों के झुण्ड के झुण्ड एक एक कौर में उड़ा जाता है, इधर उधर हाथ फैलाता है तो मेघों की प्रभा को मात करता है (फैलाने से उसकी भुजाएँ मेघों की उँचाइ तक पहुँचती हैं जिनकी कालिमा देख कर मेघ भी लजाते हैं)—आसमान में विचरनेवाले देवताओं

के विमानों को जहाँ तहाँ भगा दिया (देवता डर भाग गये)—इस प्रकार बड़ी शानवान से कुम्भकर्ण के पास राज-सभा में आया (अथवा) दीवान रावण के पास आये।

मूल—(रावण)—समुद्र सेतु बाँधि कै मनुष्य दोय लिये कुचालि वानरालि लंक आगि लाइयो॥ मिल्यो न मोहिं तोहिं नेकहू डर्यो। प्रहस्त आदि दै अनेक मंत्रि संहर्यो॥ ५॥

शब्दार्थ—कुचाली=शरारती, दुष्ट।

भावार्थ—(रावण कुम्भकर्ण से सब हाल सुनाता है) समुद्र में सेतु बाँध कर दो मनुष्य शरारती वानर लिये हुए आए हैं और उन्होंने लङ्का में आग लगवा दी। विभीषण भी उनसे जाकर मिल गया है, मुझको और को भी जरा नहीं डरा। उन नर वानरों ने प्रहस्तादि मन्त्री और मित्रों को मार डाला है(अब तुम उनसे कर

मूल—करौ सु काज आसु आज चित्त में जु भावई। होय जीव-जीव शुक्र सुःख पावई॥ समेत राम लक्ष्मणै वानरालि भक्षिये। सकोश मंत्रि मित्र पुत्र धाम ग्राम राखिये

शब्दार्थ—जीव=बृहस्पति। सकोश=खजाना सहित।

भावार्थ—(रावण कहता है) हे भाई ! आज शीघ्र वह शुभ काम करो जो मेरे चित्त को भाता है, [illegible] के जी में दुःख हो और आचार्य शुक्र जी

सुख हो। वह कार्य यह है कि राम-लक्ष्मण सहित वानर समूह को भक्षण करो और खजाना, मन्त्री, मित्र, घर और लङ्कापुरी की रक्षा करो।

अलंकार—कारज निबन्धना अप्रस्तुत प्रंशसा (पूर्वार्द्ध में) और प्रथम तुल्ययोगिता (उत्तरार्द्ध में)।

मूल—(कुंभकर्ण) मनोरमा छंद*—सुनिये कुल-भूषण देव विदूषण। बहु आजिविराजिन के तम पूषण। भुव भूप ते चारि पदारथ साधत। तिनको कबहूँ नहिं बाधक बाधत ॥७

शब्दार्थ—देव विदूषण=देवताओं के विनाशकर्ता। आजि विराजी=युद्ध में शोभा पानेवाले अर्थात् शूरवीर भट। तम= अन्धकार। पूषण=सूर्य। चारि पदारथ=अर्थ,धर्म,काम, मोक्ष

भावार्थ—(कुम्भकर्ण रावण से कहता है) हे कुल के मण्डनकर्ता और देवताओं के विनाशक! मेरी एक बात सुनो। यद्यपि आप अनेक शूरवीर योद्धाओं के युद्ध सम्बन्धी तुमुल तम को हटाने में सूर्य के समान सामर्थ्यवान हो, तो भी इस पृथ्वी पर जो राजा क्रम से चारो पदार्थों का साधन करते हैं उन्हें कोई बाधक बाधा नहीं पहुँचा सकता (तात्पर्य यह कि आप तीन पदार्थ साधन कर चुके अब आपको मुक्ति साधन की फिक्र करनी चाहिये—युद्ध नहीं)—साधन का क्रम आगे के छन्द में देखिये।

* इस का रूप है (४ सगण, २ लघु), पर अन्य पिङ्गलों में ऐसा नहीं पाया जाता।

मूल—पंकजवाटिका छंद—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत संतति हित रति कोविद गावत ॥ संतति उपजत ही, पासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अर्थ=धन-सम्पत्ति । सन्तति=औलाद । काम-साधन, स्त्री-सुख । कोविद=पण्डित, ज्ञानी । =राजा ।

भावार्थ—चारो पदार्थों के साधन का क्रम यह है कि प्रथम धर्म साधन करे, तदनन्तर अर्थ को बढ़ावे, तब के लिये स्त्री-सुख भोग, और सन्तान हो जाने पर राजा चाहिये कि रातोदिन तन मन से लगकर मुक्ति का करे (तात्पर्य यह कि आप तीन पदार्थ-धर्म, अर्थ और साधन कर चुके, अब पुत्र को राज-भार देकर साधन कीजिये) ।

मूल—दोहा—राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र
कामी कुटिल न सेइये, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥

शब्दार्थ—कृपण=लोभी, धन-लोलुप ।

भावार्थ—कामी राजा, कुटिल युवराज, लोभी पुरोहित मन्त्री और हित-विरोधी मित्र का सेवन न करना चाहिये

अलंकार—क्रम ।

मूल—घनाक्षरी छन्द—कामी, वामी, झूँठ, क्रोधी, काढ़ी, द्वेषी, चलु, कातर, कृतघ्नी, मित्र-द्वेषी, द्विज द्रोहिये। किंपुरुष, काहली, कलही, क्रूर, कुटिल कुमंत्री कुलहीने

टोहिये ॥ पापी लोभी शठ अंध बावरो बधिर गूँगो बौना अविवेकी हठी छली निरमोहिये । सूम सर्वभक्षी दैववादी जो कुवादी जड़ अपवशी ऐसो भूमि भूपति न सोहिये ॥ १० ॥

शब्दार्थ—वामी=वाममार्गी । कुपुरुष=कम-पुरुषार्थवाला । किंपुरुष=पुरुषार्थहीन । टोहिये=खूब जाँच लेना चाहिये । शठ=जो समझाने से भी न समझे । हठी=जो किसी का कहना न माने । दैववादी=दैव वा किस्मत के भरोसे पर रहनेवाला । कुवादी=कटुभाषी ।

भावार्थ—सरल है-(तात्पर्य यह कि तुम में इतने दोष हैं, ये तुम्हें शोभा नहीं देते । इन्हें छोड़ो और मोक्ष साधन करो तो भला है) ।

मूल—निशिपालिका छंद—वानर न जानु सुर जानु शुभगाथ हैं । मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं ॥ जानकिहि देहु करि नेहु कुल देह सों । आजु रण साजि पुनि गाजि हाँसि मेह सो॥११॥

भावार्थ—वानरों को वानर मत समझो, वे यशस्वी देवता हैं, रघुनाथ को केवल मनुष्य मत जानो वे संसार के नाथ साक्षात् विष्णु भगवान् हैं । अतः अन्याय पक्ष को छोड़ कर अपने कुल और अपने शरीर पर कृपा करके पहले उन्हें सीता दे दो (यदि सीता को पाकर फिर भी वे युद्ध करने ही पर तत्पर हों तो) फिर मेघ की तरह गरज कर हँसते हुए (प्रसन्नता पूर्वक) वीरों की तरह रण करो (तब तुम्हारा

मूल—पंकजवाटिका छंद—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत
संतति हित रति कोविद गावत ॥ संतति उपजत ही,
बासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अर्थ=धन-सम्पत्ति । सन्तति=औलाद ।
काम-साधन, स्त्री-सुख । कोविद=पण्डित, ज्ञानी ।
=राजा ।

भावार्थ—चारो पदार्थों के साधन का क्रम यह है कि
प्रथम धर्म साधन करे, तदनन्तर अर्थ को बढ़ावे, तब
के लिये स्त्री-सुख भोग, और सन्तान हो जाने पर राजा
चाहिये कि रातोदिन तन मन से लगकर मुक्ति का
करे (तात्पर्य यह कि आप तीन पदार्थ-धर्म, अर्थ और
साधन कर चुके, अब पुत्र को राज-भार देकर
साधन कीजिये) ।

मूल—दोहा—राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र ।
कामी कुटिल न सेइये, कृपण कृतघ्न अमित्र ॥ ९

शब्दार्थ—कृपण=लोभी, धन-लोलुप ।

भावार्थ—कामी राजा, कुटिल युवराज, लोभी पुरोहित
मन्त्री और हित-विरोधी मित्र का सेवन न करना चाहिये

अलंकार—क्रम ।

मूल—घनाक्षरी छन्द—कामी, वामी, झूँट, क्रोधी, काढ़ी,
द्वेषी, खलु, कातर, कृतघ्नी, मित्र-द्वेषी, द्विज द्रोहिये ।
किंपुरुष, काहली, कलही, क्रूर, कुटिल कुमंत्री कुलहीन

न्याय पक्ष होगा और तुम विजयी होगे)।

अलंकार—अपह्नुति।

मूल—(रावण)—दोहा—

कुंभकरण ! करि युद्ध के सोइ रहौ घर जाय।
बेगि विभीषण ज्यों मिल्यो, गहौ शत्रु के पाय ॥ १२ ॥

भावार्थ—(रावण डाँटता है) हे कुम्भकर्ण ! तुम बड़ी बड़ी बातें मत करो, ये सब बातें मैं जानता हूँ—तुम या तो जाकर युद्ध करो, या वापस जाकर अपने घर में सो रहो, या विभीषण की तरह तुम भी जाकर शत्रु के पैरों पड़ो।

अलंकार—विकल्प।

मूल—(मंदोदरी)—दोहा—

इन्द्रजीत अतिकाय सुनि, नारान्तक सुखदाइ।
भैयन सों प्रभु झुकत हैं, क्यों न कहौ समुझाय ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—झुकत हैं=खफ़ा होते हैं, रिस करते हैं।

भावार्थ—हे इन्द्रजीत, अतिकाय, और सुखदायी नारान्तक! सुनते हो ? राजा जी भाई पर खफ़ा हो रहे हैं, तुम समझाते क्यों नहीं (कि भाइयों से बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं है—शत्रु के आक्रमण के समय भाइयों से अनबन करना बुरी बात है, समझाते समय विभीषण को लात मारी सो वह शत्रु से जा मिला, अब इन्हें भी डाँटते हैं। यदि ये भी शत्रु की ओर चले जायँ तो कैसी विपत्ति की सम्भावना है)।

मूल—(मंदोदरी) चंचला छंद—देव ! कुंभकर्ण को समान जानिये न आन। इंद्र चंद्र विष्णु रुद्र ब्रह्म को हरै गुमान॥ राजकाज को कहै जो, मानिये सो प्रेमपालि। कैं चली न, को चलै न, काल की कुचाल, चालि॥ १४॥

शब्दार्थ—देव=रावण के लिये संबोधन है (गद्दीधर राजा की देव संज्ञा है)। राजकाज को=राज्य की भलाई के लिये। प्रेमपालि=प्रेमपूर्वक। काल की कुचाल=समय प्रतिकूल होने पर। चालि=निज हितसाधक कार्य करना।

भावार्थ—(मंदोदरी रावण को समझाती है) हे राजन् ! कुंभकर्ण को अन्य सामान्य वीरों की तरह मत समझिये, ये इन्द्र, चन्द्र, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा के भी घमंड तोड़ सकते हैं। जो बात ये राज्य की भलाई के लिये कहते हैं, उसे प्रेमपूर्वक मान लेना चाहिये। समय प्रतिकूल होने पर, निजहित-साधक चाल कौन नहीं चला और कौन नहीं चलता—आगे भी लोग ऐसा ही करते आये हैं और अब भी चतुर लोग ऐसा ही करते हैं (तात्पर्य यह कि इस समय काल तुम्हारे प्रतिकूल है अतः हठ छोड़ कर थोड़ा दब जाओ और जैसा वे कहते हैं वैसा करो—सीता वापस कर दो, सीता लौटा देने से युद्ध बंद हो जायगा)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

विशेष—आगे के छंद में मंदोदरी उदाहरण देकर दिखलाती है कि समय प्रतिकूल होने पर निज कार्य-साधन-हित बड़े

बड़े लोग भी दब गये हैं और जो नहीं दबे वे मारे गये हैं।

मूल—(मंदोदरी) चंचला छंद—विष्णु भाजि भाजि जात छोड़ि देवता अशेष। जामदग्न्य देखि देखि कैं न कीन्ह नारि वेष॥ ईश! राम ते बचे, बचे कि वानरेश बालि। कैं चलीं न, को चलै न, काल की कुचाल, चालि॥ १५॥

शब्दार्थ—अशेष=सब। जामदग्न्य=परशुराम। कैं=किसने। ईश=रावण के लिये संबोधन शब्द है। राम ते बचे=वे राम (परशुराम) समयानुकूल चाल चल कर ही दाशरथी राम से बचे। कि=न। बचे कि वानरेश बालि=समयानुकूल चाल न चलने से वानरेश बालि न बचे। काल की कुचाल=कालकी कुचाल के समय (अर्थात् समय प्रतिकूल होने पर)।

भावार्थ—(मंदोदरी कहती है—देखिये,समय प्रतिकूल होने पर) देव दानवों के युद्ध में बहुधा विष्णु महाराज सब देवताओंको छोड़ कर भाग जाया करते हैं, जिन परशुराम को देख देख कर बड़े बड़े वीर क्षत्री नारि वेष धारण करते थे, वही परशुराम, हे राजन्! (समय प्रतिकूल होने पर) जरा सा दबकर (अपना धनुष और बाण देकर) राम से बचे, और वानरेश बालि (नहीं दबा, इस कारण) नहीं बच सका। अतः समय प्रतिकूल होने पर निज-हित-साधक चाल कौन नहीं चला और कौन नहीं चलता!

अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

मूल—(मंदोदरी) मत्तगयंद सवैया—रामहिं चोरन दीन्ही तिया जेहिको दुख तो तप लीलि लियो है। रामहिं मारन दीन्हों सहोदर रामहिं आवन जान दियो है॥ देह धरी तुमही लगि, आजु लौं रामहिं के पिय ज्याये जियो है। दूरि करी द्विजता द्विजदेव हरे ई हरे आततई कियो है॥ १६॥

शब्दार्थ—चोरन दीन्ही=चुरा लाने का समय (मौका) दिया। सहोदर=विभीषण। द्विजता=ब्राह्मणत्व। द्विजदेव=हे ब्राह्मण (रावण का संबोधन है)। हरे ई हरे=धीरे धीरे। आततई=पापी। छः में से एक प्रकार के पापी को आततई कहते हैं, यथा—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्र दारा पहश्चैव षडेते आततायिनः।

१-गाँव में आग लगानेवाला २-ज़हर देनेवाला। ३-निर्दोष को शस्त्र से मारनेवाला ४-पर-धन-हर्ता ५-पर भूमि-हर्ता ६-परस्त्री-हर्ता। शास्त्र की आज्ञा है कि ब्राह्मण यदि आततई हो जाय तो उसके मारने से ब्रह्महत्या नहीं लगती।

भावार्थ—मंदोदरी कहती है कि राम मनुष्य नहीं हैं, वे सर्वशक्तिमान् ईश्वर के अवतार हैं, उन्हीं राम ने जानबूझ कर तुम्हें अपनी स्त्री चुरा लाने दी (मौका दिया कि तुम चुरा लाओ) जिसके दुःख वे तुम्हारे तप-बल को नष्ट कर

दिया है। रामही ने तुम्हें निर्दोष विभीषण को लात मारने का मौका ला दिया। राम ही ने तुम्हें रणभूमि तक जाने का और पुनः वहाँ से भाग आने का मौका दिया है (अर्थात् यदि वे चाहते तो तुम्हें पहले ही दिन के रण में मार डालते)। राम ने तुम्हारे ही वधके लिये अवतार लिया है, और आज तक तुम उन्हीं के जिलाने से जिये हो। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस तरह पर तरह देदेकर राम ने तुम्हारा ब्राह्मणत्व दूर करके तुमको धीरे धीरे आततायी बना डाला है (मर्यादा पुरुषोत्तम होने से ब्राह्मण समझ कर तुम्हें अब तक नहीं मारा, पर अब तुम पूरे आततायी हो चुके हो अतः अब अवश्य मारेंगे)।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कारण मिस कारज कथन)।

मूल—दोहा—संधि करो विग्रह करो सीता को तो देह।
गनो न पिय देहीन में पतिव्रता की देह॥ १७॥

शब्दार्थ—विग्रह=युद्ध। देह=(१)देदो (२)शरीर।

भावार्थ—सीता को लौटा दो, फिर चाहे युद्ध करो (मुझे कुछ सोच न होगा) हे प्रियतम! पतिव्रता स्त्री की देह को साधारण शरीरधारियों की देह मत समझो (उसके शरीर को दुःख पहुँचाने से महान् अनिष्ट होता है)।

मूल—(रावण)—मदिरा सवैया—
हौं सतु छाँड़ि मिलौं मृगलोचनि क्यों छमिहैं अपराध नये।
नारि हरी, सुत बाँध्यो तिहारे, हौं कालिहि सोदर साँग हये॥

वामन माँग्यो त्रिपैग धरा दछिना कलि चौदह लोक दये।
रंचक वैर हुतो, हरि वंचक बाँधि पताल तऊ पठये ॥१८॥

शब्दार्थ—नये=अनोखे, ताज़े। हरि=विष्णु (बामनावतार से)।

विशेष—मन्दोदरी ने राम को विष्णु का अवतार बताया है इस पर रावण का उत्तर यह है।

भावार्थ—हे मृगलोचनी! तेरे कहने से यदि मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़ कर उनसे मेल भी करना चाहूँ तो वे मेरे ये ताज़े और अनोखे अपराध—स्त्री हरण, तुम्हारे पुत्र द्वारा नाग फाँस में बाँधा जाना, कल्ह ही उनके भाई को शक्ति से मारना—क्यों क्षमा करेंगे, क्योंकि उनकी आदत बड़ी मँसीली है। देखो न, इन्हीं विष्णु ने वामनरूप से (छल से) तीन पग पृथ्वी माँगी थी, और बलि ने चौदहो लोक दे दिये तो भी पुरानी गाँस से ज़रा से वैर के बदले इस छलिया विष्णु ने उसे बाँधकर पाताल में भेज दिया (अतः मैं इस छली का विश्वास नहीं करता कि यह मेरे अपराध क्षमा कर देगा)—इस लिये मैं संधि करना उचित नहीं समझता, युद्ध ही होना चाहिये।

मूल—दोहा—देवर कुम्भकरन्न सो, हरि-अरि सो सुत पाइ।
रावण सो प्रभु, कौन को, मंदोदरी डराइ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—हरि अरि=इन्द्र का शत्रु, इन्द्रजीत (मेघनाद)। प्रभु=पति।

भावार्थ—कुंभकर्ण के समान बली देवर, इन्द्रजीत समान बली पुत्र तथा रावण (जो सबको रुलावै) सा महान् प्रतापी और बली पति पाकर मंदोदरी को किससे भय हो सकता है (तू डर मत)।

(कुंभकर्ण वध)

मूल—चामर छंद—कुंभकर्ण रावणै प्रदक्षिणा सु दै चल्यो।
हाय हाय ह्वै रह्यो अकास आसु ही हल्यो॥
मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट सीस सोभनो।
लक्ष पक्ष सो कलिन्द इन्द्र पै चढ्यो मनो॥२०॥

भावार्थ—कुंभकर्ण रावण को प्रदक्षिणा देकर रणभूमि को चल दिया। चारो ओर हाहाकार मच गया और आकाश शीघ्र ही हिल गया (आकाशचारी देवगण इत्यादि डर से विचलित होकर इधर उधर भागने लगे)। कुंभकर्ण कमर में करधनी और सीस पर सुन्दर मुकुट धारण किये है, अतः ऐसा जान पड़ता है मानो लाखों पक्ष धारण करके कलिंद पर्वत इन्द्र पर चढ़ दौड़ा हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—नराचछंद—उड़ैं दिसा दिसा कपीस कोटि कोटि स्वाँस ही। चपैं चपेट बाहु जानु जंघ सों जहाँ तहीं॥ लिये लपेटि पेंचि पेंचि बीर बाहु बात ही। भखे ते अन्तरिक्ष ऋक्ष लक्ष लक्ष जातही॥ २१॥

भावार्थ—कुंभकर्ण जब रणभूमि में आया तब चारो ओर

करोड़ों वानर उसकी स्वाँस की वायु से उड़ने लगे, उसके बाहु, जानु, जंघा की चपेट से जहाँ तहाँ दबने उसने बड़े बड़े वीरों को बात की बात में (अति शीघ्र खींच खींच कर भुजाओं में दबा लिया, और लाखों रीछ जो आकाश को उड़े उन्हें वहीं पकड़ कर खा गया।

मूल—(कुंभकर्ण) भुजंगप्रयातछंद—न हौं ताड़का, हौं सुबाहौ न मानो। न हौं शंभुकोदंड साँची बखानों॥ न हौं ताल, वाली, खरै, जाहि मारो। न हौं दूषणै सिंधु सुधे निहारो॥२२॥

भावार्थ—(कुंभकर्ण ललकार कर रामप्रति कहता है) हे राम ! ज़रा इधर सूधी दृष्टि से देखो—बड़े वीर हो तो सामने आकर मैदान में युद्ध करो—मुझे ताड़का और सुबाहु न समझना, न मैं शिव का धनुष ही हूँ। न मैं सप्ततात, खर और वालिही हूँ जिन्हें तुमने मार लिया। न मैं दूषण ही और न सिंधु ही हूँ (जिसे तुमने सहज ही बाँध लिया)

अलंकार—प्रतिषेध।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—सुरीआसुरी सुन्दरी भोग कर्णै। महाकाल को काल हौं कुंभकर्णै॥ सुनौ राम संग्राम को तोहि बोलौं। बढ़ो गर्व लंकाहि आये सु खोलौं॥ २३॥

भावार्थ—मैं सुरनारी तथा असुरनारियों से भोग करनेवाला, महाकाल का भी काल कुंभकर्ण हूँ। हे राम ! मैं तुम्हें समर के लिये ललकारता हूँ, तुम लंका तक चले आये, इस बात का

तुम्हें अहंकार हो गया है, सो आज मैं प्रकट कर दूँगा कि तुम कैसे बली हो।

मूल—भुजंग प्रयात—उठो केसरी केसरी जोर छायो। बली बालि को पूत लै नील धायो॥ हनूमंत सुग्रीव सोमैं सभागे। डसैं डाँस से अंग मातंग लागे॥ २४॥

भावार्थ—(कुंभकर्ण की ललकार सुनकर) एक ओर से केशरी नामक वानर सिंह की सी झपेट से उठदौड़ा, एक ओर से अंगद नील को लेकर दौड़ पड़े, एक ओर से भाग्यवान हनुमान और सुग्रीव आगये (सबों ने मिल कर उसे तीन तरफ से घेर लिया और मारने काटने लगे। इनका मारना काटना ऐसा ही जान पड़ा मानो मस्त हाथी के अंग में मसा लगे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो। चल्यो लंक लैकै भले अंक लायो हनूमंत लातैं हत्यो देह भूल्यो। छुट्यो कर्ण नासाहि लै, इन्द्र फूल्यो

भावार्थ—कुंभकर्ण ने सुग्रीव को पकड़ पाया तो उसको गोद में चिपका कर लंका को ले चला। तब हनुमान ने कुंभकर्ण को ऐसी लातें मारी कि वह देह की सुधि भूल गया (मूर्च्छित होगया) तब सुग्रीव उसकी पकड़ से छूट गये और उसके नाक-कान काट लिये, जिसे देख कर इन्द्र को

बड़ा आनन्द हुआ।

अलंकार—हेतु।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सँभार्यौ घरी एक दू में मरू कै। फिर्यौ रामही सामुहें सो गदा लै ॥ हनूमंत सो पूंछ सों लाइ लीन्हों। न जान्यो कबै सिंधु में डारि दीन्हों ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—सँभार्यौ=होश सँभाला (चैतन्य हुआ)। मरू कै=मुशकिल से, बड़ी कठिनाई से। लाइ लीन्हो= लपेट लिया।

भावार्थ—मुशकिल से दो एक घड़ी में जब कुंभकर्ण को पुनः चेत हुआ तब गदा ले कर राम के सम्मुख चला। यह देख कर हनुमानजी ने उस गदा को पूछ में लपेट लिया और ऐसी शीघ्रता से समुद्र में फेंक दिया कि कुंभकर्ण भी न जान सका कि कब क्या हुआ।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—जहीं काल के केतु सो ताल लीनो। कर्यौ राम जू हस्त पादादि हीनो ॥ चल्यो लोटतै बाइबकै कुचाली। उड़्यौ मुंड लै बाण त्यों मुंडमाली ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—काल के केतु सो=काल की ध्वजा के समान। ताल=ताड़वृक्ष। बाइ बकै=प्रलाप वचन कहता हुआ (जैसे कोई बाई में बकता है)। त्यों=तरफ। मुंडमाली=महादेव।

भावार्थ—(गदाहीन होने पर) जब कुंभकर्ण पुनः काल

की ध्वजा के समान ताड़वृक्ष लेकर लड़ने को चला, तब तुरंत रामजी ने उसके हाथ पैर काट दिये, तब लुंडपिंड होकर भूमि में लोटता हुआ तथा अंडबंड बातें कहता हुआ वह कुचाली रामकी ओर बढ़ा, तब राम जी ने एक बाण ऐसा मारा कि वह उस का सिर काट कर महादेव की ओर (कैलाश की ओर) उड़ गया।

मूल—भुजंगप्रयात—तहीं स्वर्ग के दुंदुभी दीह बाजे। करी पुष्प की वृष्टि जै देव गाजे॥ दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोक-हारी। भयो लंक के मध्य आतंक भारी॥ २८॥

शब्दार्थ—आतंक=हाहाकार (विलाप)। लोकहारी=लोकों को सतानेवाला।

मूल—दोहा—जबहीं गयो निकुंभिला होम हेत इन्द्रजीत। कह्यो तहीं रघुनाथ सों मतो विभीषण मीत॥ २९॥

शब्दार्थ—निकुंभिला=वह स्थान जहाँ रावण की यज्ञशाला थी। इन्द्रजीत=मेघनाद। मतो=मंत्र (सलाह)।

मूल—चंचरी छंद—जोरि अंजुलि को विभीषण राम सों विनती करी। इन्द्रजीत निकुंभिला गयो होम को, रिस जी भरी॥ सिद्ध होम न होय जौलगि ईश तौलगि मारिये। सिद्ध होहि प्रसिद्ध है यह सर्वथा हम हारिये॥ ३०॥

शब्दार्थ—जोरि अंजुलि=हाथ जोड़ कर। रिस जी भरी=मन में रिस भर कर।

अलंकार— संभावना।

मूल—दोहा—सोइ वाहि हतै कि नर वानर रीछ जो कोइ।
बारह वर्ष छुधा, त्रिया, निद्रा जीते होइ॥ ३१॥

भावार्थ—वही व्यक्ति उस इन्द्रजीत को मार सकता है जो बारह वर्ष तक अन्न, स्त्री और निद्रा को त्यागे रहा हो, चाहे वह नर हो चाहे वानर वा रीछ हो। कामाक्षा देवी का वरदान था कि—दोहा—

जो त्यागी द्वादश बरस नींद नारि अरु अन्न।
सो सुत मारी तोहि जग अपर न मारी जन्न॥—(विश्रामसागर)

मूल—चंचरी छंद—
रामचंद्र विदा कर्‍यो तब वेगि लक्ष्मण वीर को।
त्यों विभीषण जामवंतहिं संग अंगद धीर को॥
नील लै नल केशरी हनुमंत अंतक ज्यों चले।
वेगि जाय निकुंभिला थल यज्ञ के सिगरे दले॥ ३२॥

शब्दार्थ—अंतक=यमराज। सिगरे=सब। दले=नष्ट कर दिये।

मूल—जामवंतहि मारि द्वै सर तीनि अंगद छेदियो। चारि मारि विभीषणै हनुमंत पंच सु भेदियो॥ एक एक अनेक वानर जाइ लक्ष्मण सों भिर्‍यौ। अंध अंधक युद्ध ज्यों भव सों जुर्‍यो भव ही हर्‍यौ॥ ३३॥

शब्दार्थ—अंध=मूर्ख। अंधक=दैत्य विशेष। भव=महादेव। भव=भय, डर। भव ही हर्‍यौ=भय को हृदय से निकाल

कर, निर्भय।

भावार्थ—(अंतिम चरण का) मेघनाद ऐसी निर्भयता से लक्ष्मण से भिड़ गया जैसे मूर्ख अंधकासुर हृदय से डर छोड़ कर महादेव के साथ युद्ध में भिड़ गया था।

अलंकार—उपमा।

मूल—हरिगीतिका—

रण इन्द्रजीत अजीत लक्ष्मण अस्त्र सस्त्रनि संहरै।
सर एक एक अनेक मारत बुंद मंदर ज्यों परै॥
तब कोपि राघव सत्रु को सिर बाण तीक्षण उड़न्यो।
दसकंध संध्या करत हो सिर जाय अंजुलि में पर्‍यो॥ ३४॥

शब्दार्थ—राघव=रघुवंशजात लक्ष्मण। उड़न्यो=(उड़+धर) धड़ से भिन्न कर दिया, धड़ से काट दिया।

भावार्थ—रण में मेघनाद और अजित लक्ष्मण परस्पर अस्त्र शस्त्र संहार करते हैं एक एक वीर अनेक बाण मारता है पर वे दूसरे पर ऐसे पड़ते हैं। जैसे पर्वत पर वर्षाबुंद (कुछ भी हानि नहीं पहुँचाते)। तब रघुवंश के विकट वीर लक्ष्मण ने शत्रु के सिर को एक अति तीक्ष्ण बाण से धड़ से उड़ा दिया। उस समय रावण संध्या कर रहा था, वह सिर उसकी अँजुली में जा गिरा।

मूल—रण मारि लक्ष्मण मेघनादहिं स्वच्छ संख बजाइयो।
कहि साधु साधु समेत इंद्रहिं देवता सब आइयो॥

कछु माँगिये वर वीर सत्वर, भक्ति श्री रघुनाथ की।
पैंहिराय माल विशाल अर्चहि कै गये शुभगाथ की ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—साधु साधु=शाबाश। सत्वर=शीघ्र। शुभगाथ=प्रशंसित।

भावार्थ—लक्ष्मण ने रणमें मेघनाद को मार कर विजय शंख बजाया। शाबाश शाबास कहते इन्द्रसहित सब देवता आये और कहा कि हे वीर शीघ्र ही कुछ वर माँगो। लक्ष्मण ने कहा मुझे राम-भक्ति दीजिये। तब सब देवता उन प्रशंसित वीर लक्ष्मण की पूजा करके और विशाल विजयमाला पहना कर अपने लोक को चले गये।

मूल—कलहंस छंद—हति इन्द्रजीत कहँ लक्ष्मण आये। हँसि रामचंद्र बहुधा उर लाये ॥ सुनि मित्र पुत्र सुभ सोदर मेरे। कहि कौन कौन सुमिरौं गुन तेरे ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—बहुधा=बहुत प्रकार से। उर लाये=छाती से लगाया। सोदर=भाई। सुमिरौं=स्मरण करूँ।

अलंकार—तुल्ययोगिता (तीसरी)।

मूल—दोहा—नींद भूख अरु काम को ज न साधते वीर।
सीतहि क्यों हम पावते सुनु लक्ष्मण रणधीर ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—न साधते=जीत न लिया होता।

अठारहवाँ प्रकाश समाप्त

उन्नीसवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—उनईसयें प्रकाश में रावण दुःख निदान।
जूझैगो मकराक्ष पुनि ह्वैहै दूत विधान॥
रावण जैहै गूढ़थल रावर लुटै विशाल।
मंदोदरी कढ़ोरिबो अरु रावण को काल॥

शब्दार्थ—दुःख निदान=दुःख का अन्तिम दर्जा अर्थात् बहुत बड़ा दुःख। दूत विधान=सन्धि का प्रस्ताव। गूढ़थल=यज्ञ-स्थल (निकुंभिला)। रावर=रनिवास। कढ़ोरिबो=घिसलाना। काल=मृत्यु।

मूल—मोटनक छंद—
देख्यो सिर अंजुलि में जबहीं। हाहा करि भूमि पर्‍यो तबहीं॥
आये सुत-सोदर मंत्रि तबै। मंदोदरि स्यों तिय आई सबै॥ १॥
कोलाहल मंदिर माँझ भयो। मानो प्रभु को उड़ि प्राण गयो॥
रोवै दसकंठ विलाप करै। कोऊ न कहूँ तन धीर धरै॥ २॥

शब्दार्थ—(१)सुत-सोदर=सोदरसुत (मकराक्षादि)। स्यों =सहित। प्रभु=रावण।

मूल—(रावण)—दंडक छंद (मात्रिक ४० मात्रा का)—
आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल, चंद आनंद मय, त्रास जग को हरौ। गान किन्नर करौ, नृत्य गंधर्व कुल, यक्ष विधि लक्ष उर, यक्षकर्दम धरौ॥ ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहुँ लोक के,

राज को जाय अभिषेक इन्द्रहिं करौ। आजु सिय राम दै, लंक कुलदूषणहिं, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु वरौ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—यक्षकर्दम=एक प्रकार का लेप जो यक्षों को अति प्रिय है और इसे वे शरीर में लगाते हैं (कर्पूर, अगर, कस्तूरी और कङ्कोल एक साथ पीस कर बनता है, यथा—"कर्पूरा गुरु कस्तूरी कङ्कोलै र्यक्षकर्दमः") । कुलदूषण=वंश-नाशक (विभीषण) । यज्ञ ····· वरौ=सर्वज्ञ ब्राह्मण गण यज्ञदेव को वरण करैं, अर्थात् ब्राह्मण गण अब स्वच्छन्दता से यज्ञादि पुण्य अनुष्ठानादि करें ।

भावार्थ—(रावण अति निराश होकर कहता है कि)—लो भाई, अब मैं भी मरता हूँ, अतः सूर्य, जल, पवन और प्रबल अग्नि इत्यादि देवगण तथा चन्द्रमा आनन्दित हों, क्योंकि जगमें जिससे तुम्हें डर था सो तो हरण किया गया (मारा गया) । किन्नर गण खूब आनन्द से गावें, गन्धर्व नृत्य करें, (मैं तो मरता हूँ) । ब्रह्मा रुद्रादि तीनों लोक के देवता जाकर इन्द्र को राज्याभिषेक करें, और आज सीता और राम कुल-नाशक विभीषण को लङ्का का राज्य दें और ब्राह्मणगण अब निडर होकर यज्ञानुष्ठान करें (मेरे भय से जो कार्य न हो सकते थे वे स्वच्छन्दता पूर्वक हों, मैं पुत्र शोक में अपने प्राण देता हूँ) ।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कारज मिस कारण कथन) ।

मूल—(महोदर) तोटक छंद—

प्रभु शोक तजो जिय धीर धरो। सक शत्रु वध्यो सु विचार करौ॥
कुल में अब जीवत जो रहिहै। सब शोक समुद्रहि सो बहिहै॥४॥

शब्दार्थ—सक शत्रु वध्यो=जिससे शत्रु का वध हो सके। सु=सो।

भावार्थ—महोदर समझाता है कि हे प्रभु, शोक को छोड़ो, जी में धीरज धरो (इतने निराश न हो)। अब ऐसी सलाह करो जिससे शत्रु का वध हो सके। कुल में जो जीता बचेगा वह सब के लिये शोक कर लेगा (अर्थात् वीर की तरह उत्साह से समर करो, रणभूमि में प्राण त्यागो, कातर मत हो, जो बचेगा सो रो पीट लेगा)।

मूल—(मंदोदरी)—चौपाई छंद—

सोदर जूझ्यो सुत हितकारी। को गहिहै लंका गढ़ भारी॥
सीतहि दै कै रिपुहिं सँहारौ। मोहति है विक्रम बल भारौ॥५॥

शब्दार्थ—मोहित है=निष्फल करती है। विक्रम=उद्योग।

भावार्थ—मंदोदरी रावण से कहती है कि हितकारी भाई (कुम्भकर्ण) और पुत्र (मेघनाद) जूझ गये तो क्या हुआ, लङ्का ऐसा कठिन गढ़ है कि इसे कोई जीत नहीं सकता। सीता को लौटा दो तब शत्रु को मार सकोगे, क्योंकि वही तुम्हारे भारी बल और अनेक उद्योगों को विफल करती है (पर-स्त्री-हरण के पाप से तुम्हारा उद्योग विफल हो रहा है, उसे लौटा दो तो तुम रण में सफल होगे)।

मूल—(रावण) चौपाई छंद—
तुम अब सीतहि देहु न देहू। बिनु सुत बंधु धरौं नाहिं देहू॥
यहि तन जो तजि लाजहिं रैहौं। बन बसि जाय सबै दुख सैहौं ॥६॥

शब्दार्थ—रैहौं=रहूँगा। सैहौं=सहूँगा।

मूल—(मकराक्ष) भुजंगप्रयात छंद—
कहा कुंभकर्णौं कहा इन्द्रजीतौ। करै सोइबो वा करै युद्ध भीतौ॥
सु जौलौं जियौं हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै लै सुनौ मंत्र मेरो
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं युद्ध मोको बिदा बेगि दीजै॥
हतौं राम स्यों बंधु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहिं लै राजधानी सुधारौं

शब्दार्थ—(७) कहा · · · · इन्द्रजीतौ = मेरे मुकाबले में कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत कौन वस्तु हैं। करै · · · · । भीतौ= वह (कुम्भकर्ण) सोया करता था और वह (मेघनाद) डरता सा लड़ता था।

(मकराक्ष वध)

मूल—(विभीषण) वसंततिलका छंद—कोदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै। भागे सबै समर यूथप दृष्टि दीजै॥ बैठा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो। संहारकाल जनु काल कराल धायो ॥९॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमंत रोक्यो। रोक्यो रह्यो न, रघुबीर जहीं बिलोक्यो॥ मार्‍यो बिभीषण गदा उर जोर ठेली। काली समान भुज लक्ष्मण कंठ मेली ॥ १० ॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंगभारे। काटे कटैं न बहु भाँतिन काटि हारे॥ ब्रह्मा दियो वरहि अस्त्र न शस्त्र लागै। लै ही चल्यो समर सिंहहिं जोर जागै ॥ ११ ॥

रावण पुत्रों और भाइयों सहित कुशल से तो है न ? इस समय वह घर पर क्या काम कर रहा है ?

मूल—(दूत) सवैया—पूजि उठे जबही शिव को तबही विधि शुक्र बृहस्पति आये । कै विनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये ॥ होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाये । हौं इत को पठयो उनको उत लै प्रभु मंदिर माँझ सिधाये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अदेव=देवताओं के अतिरिक्त अन्य सब जीव । बकसाये=क्षमा कराये । प्रभु=रावण ।

भावार्थ—दूत उत्तर देता है कि हे राम ! रावण शिव की पूजा करके उठे ही थे कि ब्रह्मा, शुक्र और बृहस्पति आगये और कश्यप के मिस विनती करके देवता और उनके अलावा सब जीवों को (जिनके मारने का संकल्प रावण ने किया था) क्षमा करा दिया । तब शुक्राचार्य ने यज्ञ की एक नवीन रीति सिखाई और कान में लगकर कुछ मंत्र सिखाया। इसी समय प्रभु ने मुझको यहाँ भेजा और स्वयं उनको लेकर राजमहल के भीतर चले गये (और मेरे द्वारा आपको यह संदेसा भेजा है) ।

मूल—(संदेश) सवैया—

सुपनखा जु विरूप करी तुम ताते कियो हमहू दुख भारो ।
वारिध बंधन कीन्हों हुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो ॥
होइ जु होनी सु हैई रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो ।
दै भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगुधारो ॥१७॥

मायांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्हों । अस्तास्त मानहुँ शशी कहँ राहु कीन्हो ॥ हाहादि शब्द सब लोग जहाँ पुकारे। बाढ़े अशेष अँग राक्षस के विदारे ॥ १२ ॥
श्री रामचन्द्र पग लागत चित्त हर्षे । देवाधि देव मिलि सिद्धन पुष्प वर्षे ॥ मार्यो बलिष्ट मकराक्ष सुवीर भारी । जाके हते रवत रावन गर्वहारी ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—(९) संहार काल=प्रलय काल में । (१०) काली=कालीनाग । उरजोर ठेली=छाती के बल उधर को ठेल दी । (११) ले · · · · · जागे=सिंह की तरह बड़े जोर से लक्ष्मण को पकड़ कर लंका की ओर ले चला । (१२) दिवि=आकाश । अस्तास्त · · · · कीन्हो=मानो राहु असित चन्द्रमा ग्रसे ही ग्रसे अस्त होगया । बाढ़े=लक्ष्मण जी ने मकराक्ष के फंग में पड़े हुए अपने अंग को बढ़ाया । अशेष=सब । (१३) जाके · · · · हारी=जिसके मारे जाने से सबका गर्व हरनेवाला रावन भी रोने लगा ।

मूल—दोहा—जूझत ही मकराक्ष के रावण आते अकुलाय ।
सत्वर श्री रघुनाथ पै दियो बसीठ पठाय ॥१४॥

शब्दार्थ—बसीठ=दूत ।

मूल—मोदक छंद—

दूतहि देखत ही रघुनायक । तापहँ बोलि उठे सुख दायक ॥
रावण के कुशली सुत सोदर । कारज कौन करै अपने घर॥१५॥

भावार्थ—दूत को आया हुआ देख राम जी ने पूछा कि

रावण पुत्रों और भाइयों सहित कुशल से तो है न ? इस समय वह घर पर क्या काम कर रहा है ?

मूल—(दूत) सवैया—पूजि उठे जबही शिव को तबही विधि शुक्र बृहस्पति आये । कै विनती मिस कश्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाये ॥ होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाये । हौं इत को पठयो उनको उत लै प्रभु मंदिर माँझ सिधाये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—अदेव=देवताओं के अतिरिक्त अन्य सब जीव । बकसाये=क्षमा कराये । प्रभु=रावण ।

भावार्थ—दूत उत्तर देता है कि हे राम ! रावण शिव की पूजा करके उठे ही थे कि ब्रह्मा, शुक्र और बृहस्पति आगये और कश्यप के मिस विनती करके देवता और उनके अलावा सब जीवों को (जिनके मारने का संकल्प रावण ने किया था) क्षमा करा दिया । तब शुक्राचार्य ने यज्ञ की एक नवीन रीति सिखाई और कान में लगकर कुछ मंत्र सिखाया। इसी समय प्रभु ने मुझको यहाँ भेजा और स्वयं उनको लेकर राजमहल के भीतर चले गये (और मेरे द्वारा आपको यह संदेसा भेजा है) ।

मूल—(संदेश) सवैया—

सूपनखा जु विरूप करी तुम ताते कियो हमहू दुख भारो ।
वारिध बंधन कीन्हों हुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हों तिहारो ॥
होइ जु होनी सु होई रहै न मिटै जिय कोटि विचार विचारो ।
दै भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगुधारो ॥१७॥

भावार्थ—
शब्दार्थ—विरूप=कुरूप, बदसूरत । होनी=होनहार । बाढ़े चार=उपाय । परसा=परशुराम पर विजय पाने का यश ।

दूतहि दियो यह कहि श्री रघुनाथ ।
ण होहि जय मंदोदरि के साथ ॥ १८ ॥

=प्रस्ताव का जवाब ।

मूल—१८ . युता छंद—

केहि धौं विलंब कहा भयो । रघुनाथ पै जब ही गयो ॥
केहि भाँति तू अवलोकियो । कहु तोहि उत्तर का दियो ॥१९॥

भावार्थ—(दूत के लौट आने पर रावण पूछता है) कहो तुमने देर क्यों की ? जब तुम गये तब राम क्या करते थे ? उन्होंने क्या जवाब दिया है ?

मूल—(दूत) दंडक छंद—भूतल के इन्द्र भूमि पाँड़े हुते रामचन्द्र मारिच कनकमृग छालहिं बिछाये जू । कुंभहर-कुंभकर्ण-नासाहर-गोद सीस चरण अकंप-अक्ष-अरि उर लाये जू । देवान्तक-नारान्तक-अंतक त्यों मुसकात विभीषण बैन तन कानन रुखाये जू । मेघनाद-मकराक्ष-महोदर प्राणहर बाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ॥ २० ॥

शब्दार्थ—कुंभहर=कुंभको मारनेवाला सुग्रीव । कुंभकर्ण-नासाहर=सुग्रीव । अकंप-अक्ष-अरि=अकंपन और अक्षयकुमार को मारनेवाला हनुमान । देवान्तक-नारान्तक-अंतक=अंगद । त्यों=तरफ । तन=तरफ । रुखाये=रुख कियेहुए,

लगाये हुए । मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्राणहर=लक्ष्मण ।

भावार्थ—(दूत कहता है कि) जिस समय मैं गया उस समय भूमि के इन्द्र श्रीरामचन्द्र मारीच का कनक मृगछाला बिछाये हुए लेटे थे । सुग्रीव की गोद में उनका सिर था, हनुमान उनके चरणों को हृदय से लगाये हुए थे । अंगद की ओर देख देख कर मुसकुरा रहे थे, विभीषण की वार्ता की ओर कान लगाये हुए थे, और लक्ष्मण के बाणों की तरफ देख देख कर परम सुख का अनुभव कर रहे थे । (भाव यह है कि राम को मैंने परम तेजस्वी, परम निर्भय, तथा महाबली वीरों से सेवित और परम सुखी देखा, उनके शरीर में तनिक भी थकावट वा मन में तनिक भी खेद वा, भय वा चिंता नहीं झलकती थी । शत्रु के देश में ऐसी निर्भयता और निश्चिंतता पूर्ण विजय का लक्षण है) ।

अलंकार—रूपक और पर्याय से पुष्ट अत्युक्ति

मूल—(राम का प्रत्युत्तर) सवैया छंद—

भूमि दई भुवदेवन को भृगु नंदन भूपन सों बर लैकै ।
बामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठै कै ॥
संधि की बातन को प्रतिउत्तर आपुन ही कहिये हित कै कै ।
दीन्ही है लंक विभीषण को अब देहिं कहा तुमको यह दै कै ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—बर=बलपूर्वक, जबरदस्ती । मघवा=इन्द्र । आपुन ही=आपही (बुँदेलखंडी भाषा में 'आप' के स्थान में 'आपुन' बोलते हैं) । यह दै कै=यह परसा दे कर (परशुराम

विजय का यश जो तुमने मांगा, उसे देकर तुम्हारे रहने के लिये तुम्हें स्थान कहाँ देंगे—अर्थात् तब तो तुम्हारा घमंड त्रिलोक में न समायगा, अतःऐसे घमंडी को मारना ही हमारा परम कर्तव्य है, अतः युद्ध में तुम्हें मारेंगे, संधि करना हमें मंजूर नहीं)।

भावार्थ—परशुराम ने बलपूर्वक राजाओं से भूमि छीन कर ब्राह्मणों को दे दी। वामन ने स्वर्ग लोक इन्द्र को दिया और पाताल बलि को दिया (अर्थात् परशुराम और वामन अवतार से तो हमने त्रिलोक का राज्य पहले ही औरों को दे रक्खा है) अब आपही कृपा कर के बतलाइये कि तुम्हारा संधि-प्रस्ताव मंजूर करके और इस दशा में जब कि लंका भी विभीषण को दे दी है, तो अब तुमको परशु देकर क्या देंगे ?

विशेष—पाठकों को चाहिये कि रावण तथा राम जी के सन्देशों की गूढ़ता खूब समझें:—(रावण के सन्देश की गूढ़ता)—जैसा तुमने किया वैसा हमने किया, हमने कुछ ज्यादती नहीं की, पहले तुम्हींने अत्याचार किया है, हमारी बहिन पर हाथ घाला है। स्त्री पर हाथ चलाना वीरोचित काम नहीं, वह दाम्पत्ति प्रेम चाहती थी, तुम नामर्द हो, एक विधवा ब्राह्मणी ने तुमसे प्रेम करना चाहा सो तुमसे नहीं हुआ, मुझे देखो मैं तुम्हारी स्त्री हर लाया। तुम्हारी ओर से वीरता के कार्य हुए माने जाते हैं वे होनहार के बल हुए, उनसे तुम्हें घमण्ड

करने का कोई हक नहीं हैं अतः अपने हथियार रख दो और अपनी स्त्री लेकर घर चले जाओ।

(रामके संदेश की गूढ़ता) परशुरामावतार लेकर हमने यह भूमि ब्राह्मणों को दे दी, इन्द्र को स्वर्ग और वलि को पाताल दे दिया, और परशुराम होकर हमने उस सहस्रार्जुन को मारा जिसने तुम्हें बाँध रक्खा था, बामन होकर हमने उस बलि को बाँध लिया जिसकी बूढ़ी दासी ने कान पकड़ कर तुम्हें शहर से बाहर निकाल दिया था। अब रामावतार में भारत से बाहर थोड़ी यह जमीन थी सो विभीषण को दे डाली, अब तुझ ब्राह्मणपर दया करके हम परशा क्या दें? तुझे मारकर अपना धाम ही (साकेत) देंगे, अतः युद्ध ही होने दो।

नोट—इन दोनो नं० १७ और न० २१ के छंदों की कैसी गंभीर भाषा है, इसपर पाठक विशेष ध्यान दें।

अलंकार—

मूल—(मंदोदरी) मालिनी छंद—तब सब कहिं हारे राम को दूत आयो। अब समुझ परी जो पुत्र भैया जुझायो॥ दसमुख सुख जीजै राम सों हौं लरौं यों॥ हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों॥ २२॥

शब्दार्थ—जुझायो=युद्ध में मरवा डाला। जीजै=जीते रहो।

भावार्थ—(मंदोदरी रावण को डाँटती है) पहले सब लोग

तुम्हें समझा कर हार गये, पश्चात् रामदूत ने आकर तुम्हें बहुत समझाया पर तुमने नहीं माना। अब जब पुत्र और भाई रण में जूझ गये तब तुम्हें रामवैर की कठिनाई सूझ पड़ी है। लंकेश (दसमुख) आप सुख से जीते रहो, (चैनकरो) अब मैं राम से इस प्रकार युद्ध करूँगी जैसे शिव विष्णु इत्यादि के हार जाने पर शुंभ-निशुंभ से देवी दुर्गा जी लड़ी थीं।

अलंकार—उदाहरण।

मूल—(रावण) मालिनी—छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै। रघुपति बपुरा को धावतो सिंधु पारै॥ इति सुरपति भर्ता विष्णु मायाविलासी। सुनहि सुमुखि तोको ल्यावतो लक्षि दासी॥ २३॥

शब्दार्थ—भर्ता=रक्षक। लक्षि=लक्ष्मी।

भावार्थ—(रावण कहता है) हे सुमुखी! सुन, मैंने दूत भेजकर छल से उनसे परशुराम का आयुध (कुठार) लेना चाहाथा, यदि वह मिल जाता तो राम बेचारा क्या था, मैं सिन्धुपार जाकर इन्द्र के रक्षक मायावी विष्णु को भी मार डालता और लक्ष्मी को पकड़ कर तेरी लौंड़ी बनाकर लाता (भाव यह है कि राम में कुछ भी करतूत नहीं, जो है सो केवल परशुराम के दिये शस्त्रों की शक्ति ही उनमें है, और परशुराम शिव के भक्त हैं, अतः मैं उनके लिहाज़ से राम को नहीं मारता)।

(रावण-मख-भंग)

मूल—चामरछंद—प्रौढ़रूढ़ि को समूढ़ गूढ़गेह में गयो। शुक्र मंत्र शोधि शोधि होम को जहीं भयो॥ वायुपुत्र ॥ जामवंत धाइयो। लंक में निशंक अंक लंकनाथ पाइयो॥२

शब्दार्थ—प्रौढ़=ढीठ, निर्लज्ज। रूढ़ि=पक्की आदत प्रौढ़रूढ़ि=पक्की निर्लज्जता। समूढ़=पुंज, समूह। को समूढ़=पक्की निर्लज्जता का पुंज (अति निर्लज्ज), पक्का बेशरम। गूढ़गेह=यज्ञ-गृह। जहीं यज्ञ को भयो=ज्योंहीं यज्ञ करने को उद्यत हुआ। निशंक अंक=निर्भय हृदय, अत्यन्त निर्भय

भावार्थ—पक्का बेहया रावण (निज स्त्रीद्वारा निरादरित यज्ञस्थल को गया और शुक्रप्रदत्त मंत्र को शुद्धो पढ़ कर ज्योंही यज्ञ को उद्यत हुआ त्योंही, हनुम और जामवंतादि वीर गण दौड़े और लंका नगर जाकर रावण को निशंक मन से यज्ञ करते

अलंकार—वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास।

मूल—चामर छंद—मत्त दंति पंक्ति वाजिराजि छो भाँति भाँति पक्षिराजि भाजि भाजि के गई॥ आसने वितान तान तूरियो। यत्र तत्र छत्र चारु चौंर चारु

शब्दार्थ—तान=रस्सी। चारु=सुन्दर। चारु=बच्छोत

भावार्थ—(बानरों ने लंका में पहुँच ये उपद्रव किये, हाथियों तथा घोड़ों के समूहों को बंधन से छोर दिया।

वे इधर उधर उपद्रव करने लगे) भाँति भाँति के पक्षियों को पिंजड़ों से निकाल दिया (अतः वे जहाँ तहाँ उड़ चले) आसन और बिछावन उलट दिये; वितानों की रस्सियाँ तोड़ दीं। जहाँ तहाँ सुन्दर छत्र और चामरों को अच्छी तरह से चूर चूर कर डाला।

अलंकार—अनुप्रास।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—भगीं देखि कै शंकि लंकेश-बाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला॥ तहाँ दौरि गो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो॥ २६॥

शब्दार्थ—फूल्यो=आनंदित। चित्र की पुत्रिका=रंगमहल में बने हुए स्त्रियों के चित्र।

भावार्थ—(जब बहुत से वानर रावण के महलों में घुसगये तब) रावण की रानियाँ डर कर भागीं और मंदोदरी की चित्रशाला में जा छिपीं। वहाँ आनन्द से दौड़ कर अंगद पहुँचे और वहाँ के चित्रों को देख कर चकित से रह गये (जान न सके कि ये चित्र हैं वा सच्ची स्त्रियाँ हैं)।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—गहै दौरि जाको तजै ता दिसा को। तजै जा दिशा को भजै वाम ताको॥ भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यों दरी को बिहारी॥ २७॥

भावार्थ—(अंगद मंदोदरी को पहचान नहीं सके) अंगद जिस ओर दौड़ कर किसी चित्रपुतली को पकड़ते हैं, उस दिशा को छोड़ मंदोदरी दूसरी ओर भाग जाती है। जिस

दिशा को अंगद छोड़ देते हैं, उसी दिशा को वह भाग जाती है। समस्त चित्रसारी को अच्छी तरह से देख डाला (पर किसी को पकड़ न सके)—बात ठीक ही है, भला पर्वत-गुफा में विहार करनेवाला (वानर) सुन्दरी स्त्रियों को कैसे पा सकता है (आखिर वानर ही तो ठहरे)।

अलंकार—भ्रम। मीलित।

मूल—भुजंगप्रयात छन्द—तजे देखि कै चित्र की श्रेष्ठ धन्या। हँसी एक ताको तहीं देवकन्या ॥ तहीं हाससों देवकन्या दिखाई। गही शङ्कि कै लङ्कारानी बताई ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—धन्या=स्त्री (यहाँ पुतली)। दिखाई=देख पड़ी। लंकरानी=मंदोदरी। बताई=पहचनवा दिया।

भावार्थ—अंगद पहले किसी चित्र की पुतली को स्त्री समझ कर पकड़ते हैं, पुनः अच्छी तरह देखकर उसे छोड़ देते हैं। यह तमाशा देखकर वहाँ छिपी हुई एक देवकन्या हँस पड़ी, उस हँसी से जब अंगद को वह देवकन्या दिखाई पड़ी तब अंगद ने उसी को पकड़ लिया, उसने डर कर मंदोदरी को पहचनवा दिया (बता दिया कि यह मंदोदरी है)।

अलंकार—भ्रम। विशेषकोन्मीलित

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—सु आनो गहे केश लङ्केश रानी तमश्री मनो सूर शोभानि सानी ॥ गहे बाँह ऐंचैं चहू ओर ताको। मनो हंस लीन्हें मृणालीलता को ॥ २९ ॥

वे इधर उधर उपद्रव करने लगे) भाँति भाँति को पिंजड़ों से निकाल दिया (अतः वे जहाँ तहाँ आसन और बिछावन उलट दिये; वितानों को दीं। जहाँ तहाँ सुन्दर छत्र और चामरों को चूर चूर कर डाला।

अलंकार—अनुप्रास।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—भगीं देखि के शंकि दुरी दारि मंदोदरी चित्रशाला॥ तहाँ दौरि पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि

शब्दार्थ—फूल्यो=आनंदित। चित्र की में बने हुए स्त्रियों के चित्र।

भावार्थ—(जब बहुत से वानर रावण के तब) रावण की रानियाँ डर कर भागीं चित्रशाला में जा छिपीं। वहाँ आनन्द से पहुँचे और वहाँ के चित्रों को देख कर (जान न सके कि ये चित्र हैं वा सच्ची

मूल—भुजंगप्रयात छंद—गहै दौरि तजै जा दिशा को भजै याम ताको॥ चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यों दरी को

भावार्थ—(अंगद मंदोदरी को जिस ओर दौड़ कर किसी चित्र दिशा को छोड़ मंदोदरी दूसरी ओर

(मंदोदरी के कंचुकीरहित उरोज)

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राज। किधौं साँचहू श्रीफलै सोभ साज॥ किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे। वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥ ३१॥

शब्दार्थ—वक्षोज=कुच। श्रीफल=बेल फल। लावण्यपूरे= अति सुन्दर। पूरे=भरे हुए।

भावार्थ—मंदोदरी के कंचुकीरहित कुच राजते हैं या सम्मुच बेल फल ही शोभा दे रहे हैं, या सुन्दर सोने के कलश वशीकरण के चूर्ण से लबालब भरे हुए हैं।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

किधौं इष्टदेवै सदा इष्ट ही के। किधौं गुच्छ द्वै काम संजीवनी के
किधौं चित्त चौगान के मूल सो हौं। हिय हेम के हाल गोला विभौ हैं

शब्दार्थ—सदाइष्ट=पति। चित्तचौगान के मूल=(ये शब्द 'हालगोला' के विशेषण हैं) चित्त के चौगान खेल के मूल कारण। हाल गोला=गेंद।

भावार्थ—किधौं मंदोदरी के पति (रावण) के इष्टदेव ही हैं, या काम-संजीवनी लता के दो पुष्पगुच्छ हैं, या देखनेवालों के चितों को चौगान खेल खिलानें के मूलकारण मंदोदरी के कुच सोने के दो गेंद हैं जो देखनेवालों के हृदय को विमोहित करते हैं (जिस प्रकार चौगान खेल में जिस

शब्दार्थ—तमश्री=अंधकार। सूर शोभानिसानी=सूर्य किरणों से जटित (रत्नजटित आभूषणों के कारण)। मृणाली लता =पुरइन।

भावार्थ—अंगद मंदोदरी के बाल पकड़ कर उसे चित्रशाला से बाहर लाये, उस समय वह ऐसी जान पड़ी मानो सूर्य-किरणों से जटित अंधेरी रात हो (काली मंदोदरी, रत्नजटित स्वर्णाभूषण युक्त) पुनः अंगद उसकी बाँह पकड़ कर इधर उधर खींचते हैं, ऐसा जान पड़ता है मानो हंस पुरइन को खींच खाँच कर अस्त व्यस्त कर रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

छुटी कण्ठमाला लुरैं हार टूटे। खसैं फूल फैलैं लसैं केश छूटे
फटी कंचुकी किंकिनी चाव छूटी। पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी

शब्दार्थ—लुरैं=लटकते है। फैलैं=बिखरते हैं।

भावार्थ—इस समय मंदोदरी की यह दशा हुई कि गले की कंठियाँ छूट पड़ीं, हार टूट कर इधर उधर लटकने लगे, वेणी के फूल गिर गिर कर इधर उधर बिखर रहे हैं, बाल छूट गये हैं, कंचुकी फट गई है, किंकिणी भी छूट गई है, ऐसा जान पड़ता है मानो शिव ने कामपुरी को लूट लिया है।

(मंदोदरी के कंचुकीरहित उरोज)

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राज। किधौं साँचहू श्रीफलै सोभ साज॥ किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे। वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥ ३१॥

शब्दार्थ—वक्षोज=कुच। श्रीफल=बेल फल। लावण्यपूरे=अति सुन्दर। पूरे=भरे हुए।

भावार्थ—मंदोदरी के कंचुकीरहित कुच राजते हैं या सममुच बेल फल ही शोभा दे रहे हैं, या सुन्दर सोने के कलश वशीकरण के चूर्ण से लबालब भरे हुए हैं।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

किधौं इष्टदेवै सदा इष्ट ही के। किधौं गुच्छ द्वै काम संजीवनी के
किधौं चित्त चौगान के मूल सो हैं॥ हिय हेम के हाल गोला विभौं हैं

शब्दार्थ—सदाइष्ट=पति। चित्तचौगान के मूल=(ये शब्द 'हालगोला' के विशेषण है) चित्त के चौगान खेल के मूल कारण। हाल गोला=गेंद।

भावार्थ—किधौं मंदोदरी के पति (रावण) के इष्टदेव ही हैं, या काम-संजीवनी लता के दो पुष्पगुच्छ हैं, या देखनेवालों के चितों को चौगान खेल खिलानें के मूलकारण मंदोदरी के कुच सोने के दो गेंद हैं जो देखनेवालों के हृदय को विमोहित करते हैं (जिस प्रकार चौगान खेल में जिस

ओर गेंद जाता है उसी ओर सब खिलाड़ी दौड़ते हैं, इसी प्रकार जिस ओर मंदोदरी के कुच होजाते हैं उसी ओर दर्शकों के चित्त चले जाते हैं)।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजङ्गप्रयात छन्द—

सुनी लङ्कारानीन की दीन बानी। तहीं छाँड़ि दीन्हों महा मौन मानी
उठ्यो सो गदा लै यदा लङ्कबासी। गये भागि कै सर्व साखाबिलासी

शब्दार्थ—महामौन=मंत्र जपते समय का संकल्पित मौनावलम्बन। मानी=अभिमानी रावण। यदा=जब। लंकबासी=रावण। साखाबिलासी=वानर।

भावार्थ—जब रावण ने अपनी रानियों के रोने चिल्लाने की दीन वाणी सुनी तब वह अभिमानी लंकापति रावण संकल्पित मौन छोड़ कर गदा लेकर यज्ञासन से उठ खड़ा हुआ, और वानरों को मारने दौड़ा। यह देख सब वानर भाग खड़े हुए (बस रावण का यज्ञ-भंग होगया, यही तो करना ही था)।

मूल—(मंदोदरी)—दोहा—

सीताहिं दीन्ह्यो दुख वृथा साँचो देखौ आजु।
करै जु जैसी त्यों लहै कहा रंक कह राजु।

भावार्थ—मंदोदरी रावण से कहती है कि तुमने परस्त्री सीता को झूठा दुःख दिया है (जबरदस्ती उसका पातिव्रत भंग करने की चेष्टामात्र की है, व्रत भंग नहीं किया) पर उसका फल

हमारी सच्ची दुर्दशा देख लो, क्योंकि प्रकृति का नियम है कि जो जैसा करता है सो तैसा भोगता है, चाहे वह रंक हो चाहे राजा हो।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास (विशेष से साधारण सिद्धान्त की पुष्टि)।

मूल—(रावण) मत्तगयन्द सवैया—

को बपुरा जो मिल्यो है विभीषण है कुलदूषन जीवैगो कौ लौं।
कुंभकरन्न मर्‍यो मघवारिपु तौ री? कहा न डरौं यम सौ लौं।
श्री रघुनाथ के गातनि सुंदरि? जानै न तू कुशली तनु तौलौं।
शाल सबै दिगपालन को कर रावण के करवाल है जौ लौं॥३५

शब्दार्थ—बपुरा=बेचारा, निकम्मा। कुलदूषन=वंश नाशक। कौलौं=कब तक। यम सौ लौं=सौ यमराजों को भी। कुशली=कुशलपूर्वक। तनु=जरा भी। शाल=दुःखदायी। करवाल=तलवार (करवाल शब्द पुंल्लिंग है)।

भावार्थ—(रावण निज स्त्रियों को धीरज देता है) यदि निकम्मा विभीषण उधर जा मिला तो क्या हुआ, वह कुल-नाशक कब तक जीता रहेगा। कुम्भकर्ण और मेघनाद मारे गये तो क्या हुआ, मैं (एक नहीं) सौ यमराजों से भी नहीं डरता। हे सुन्दरी! तू तब तक राम की कुशल ज़रा भी न समझना जब तक दिग्पालों को सतानेवाली तलवार रावण के हाथ में है। (वाहरे द्विजेन्द्र रावण! शत्रुभाव की

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ। सारथी आज्ञा पाकर अक्षयबाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा।

मूल—कोटि भाँतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै।
बैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यों हँसै॥
रामचंद्र प्रदक्षिणा करि दक्ष है जबहीं चढ़े।
पुष्पवर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े॥ ३८॥

शब्दार्थ—लघुता=(लाघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता अन्तक=यमराज। दक्ष है=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने द्वार से)।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था) पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला था। उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान अट्टहास करते हैं। रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके जब दहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की सहायता करने को आगे आये।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यौ।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल स्यों मढ़्यौ॥
शैल है सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे॥ ३९॥

उपासना ऐसे ही घोर वीर और अहङ्कारी जीव से हो सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वभावोक्ति।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-वध)

मूल—चामर छन्द—रावणै चले चले ते धाम धाम ते सबै।
साजि साजि साज सूर गाजि गाजि कै तबै॥ दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं। युद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति गाजहीं॥ ३६॥

शब्दार्थ—रावणै चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी चले। सबै=सब वीर लोग। दीह दुंदुभी=बड़े बड़े नगाड़े। दंति=हाथी।

मूल—चंचरी छंद—इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखि कै।
बेगि सारथि सों कह्यो रथ साजि जाहि विशेषि कै॥
तूण अक्षय बाण, स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को॥ ३७॥

शब्दार्थ—विशेषिकै=विशेष रूप से। तूण अक्षयबाण के=ऐसा तरकस जिसके बाण कभी कम न हों। अभेद तनत्राण=ऐसा कवच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके। अप्रमेय प्रमाण को करि=रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर (बहुत बड़ा रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से स जाकर)।

भावार्थ—इन्द्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये सज्जित, पर रथहीन, देख कर अति शीघ्र अपने सारथि से

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ। सारथी आज्ञा पाकर अक्षयबाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा।

मूल—कोटि भाँतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै।
बैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यों हँसै॥
रामचंद्र प्रदक्षिणा करि दक्ष ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्पबर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े॥ ३८॥

शब्दार्थ—लघुता=(लाघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता अन्तक=यमराज। दक्ष ह्वै=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने द्वार से)।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था) पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला था। उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान अट्टहास करते हैं। रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके जब दहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की सहायता करने को आगे आये।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यौ।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल स्यों मढ़्यौ॥
शैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे॥ ३९॥

उपासना ऐसे ही धीर वीर और अहङ्कारी जीव से ही सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वभावोक्ति।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-वध)

मूल—चामर छन्द—रावणै चले चले ते धाम धाम ते सबै। साजि साजि साज सूर गाजि गाजि कै तबै॥ दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं। युद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति गाजहीं॥ ३६॥

शब्दार्थ—रावणै चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी चले। सबै=सब वीर लोग। दीह दुंदुभी=बड़े बड़े नगाड़े। दंति=हाथी।

मूल—चंचरी छंद—इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन मूतल देखि कै।
बेगि सारथि सों कह्यो रथ साजि जाहि विशेषि कै॥
तूण अक्षय बाण, स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को॥ ३७॥

[illegible] रूप से। तूण अक्षयबाण के= तरकस जिसके बाण कभी कम न हों। अभेद तनत्राण= कवच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके। अप्रमेय को करि=रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से स जाकर)।

इन्द्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये सज्जित, पर रथहीन, देख कर अति शीघ्र अपने सारथि से

कहा कि विशेष रूप से रथ सजाकर तुम तुरन्त राम की सहायता को जाओ। सारथी आज्ञा पाकर अक्षयबाणवाले तरकस और स्वच्छ अभेद्य कवच और बहुत बड़ा रथ (जिसमें बहुत सी रण-सामग्री अट सके) लेकर रणभूमि में आ पहुँचा।

मूल—कोटि भाँतिन पौन ते मनते महा लघुता लसै।
बैठि कै ध्वजअग्र श्री हनुमंत अंतक ज्यों हँसै॥
रामचंद्र प्रदक्षिणा करि दक्ष ह्वै जबहीं चढ़े।
पुष्पवर्षि बजाय दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े॥ ३८॥

शब्दार्थ—लघुता=(लाघवता) फुर्ती, तेजी, वेग, शीघ्रता अन्तक=यमराज। दक्ष ह्वै=दाहिने ओर से (रथ के दाहिने द्वार से)।

भावार्थ—वह रथ (जो इन्द्र का सारथि मातलि लाया था) पवन से कोटि गुणा और मन से भी अति अधिक वेगवाला था। उस पर हनुमान जी ध्वजा में बैठ कर यमराज समान अट्टहास करते हैं। रामचन्द्र उस रथ की परिक्रमा करके जब दहिने दरवाजे से उस पर सवार हुए तब देवताओं ने फूल बरसाये और नगाड़े बजाते हुए अनेक प्रकार की सहायता करने को आगे आये।

मूल—राम को रथ मध्य देखत क्रोध रावण के बढ़्यौ।
बीस बाहुन की सरावलि व्योम भूतल स्यों मढ़्यौ॥
शैल ह्वै सिकता गये सब दृष्टि के बल संहरे।
ऋक्ष वानर भेदि तत्क्षण लक्षधा छतना करे॥ ३९॥

उपासना ऐसे ही घोर वीर और अहङ्कारी जीव से हो सकती है)।

अलंकार—पुनरुक्तिवदाभास और स्वभावोक्ति।

(राम-रावण-युद्ध और रावण-वध)

मूल—चामर छन्द—रावणै चले चले ते धाम धाम ते सबै। साजि साजि साज सूर गाजि गाजि कै तबै॥ दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीं। युद्धभूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति गाजहीं॥ ३६॥

शब्दार्थ—रावणै चले चले ते = रावण के चलने पर वे भी चले। सबै=सब वीर लोग। दीह दुंदुभी=बड़े बड़े नगाड़े। दंति=हाथी।

मूल—चंचरी छंद—इन्द्र श्रीरघुनाथ को रथहीन भूतल देखि कै।
बेगि सारथि सों कह्यो रथ साजि जाहि विशेषि कै॥
तूण अक्षय बाण, स्वच्छ अभेद लै तनत्राण को।
आइयो रण-भूमि में करि अप्रमेय प्रमाण को॥ ३७॥

—विशेषिकै=विशेष रूप से। तूण अक्षयबाण के=तरकस जिसके बाण कभी कम न हों। अभेद तनत्राण=कवच जो किसी अस्त्र-शस्त्र से भेदा न जासके। अप्रमेय को करि=रथ को बहुत बड़े परिमाण का बनाकर (बड़ा रथ लेकर और बहुत अधिक सामग्री से सजाकर)।

इन्द्र ने श्री रघुनाथ जी को रणभूमि के लिये विजय, पर रथहीन, देख कर अति शीघ्र अपने सारथि से

शब्दार्थ—सरावलि=शर समूह। सिकता=बालू। दृष्टि के बल संहरे=दृष्टि का बल जाता रहा अर्थात् ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पड़ने लगा। छतना करे=शरीरों को छेद कर मधुमक्षिका के छाते की तरह कर दिया।

भावार्थ—श्री राम जी को रथ पर सवार देखकर रावण का क्रोध बढ़ा, बीस भुजाओं के शर-समूह से ज़मीन आसमान को भर दिया। पर्वत बालू होगये, ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पड़ने लगा। रीछों वानरों के शरीर बाणों से छेद कर छतना कर डाले।

अलंकार—अत्युक्ति

मूल—मोदक छंद—

बानन साथ बिधे सब बानर। जाय परे मलया चल की धर॥
सूरज मंडल में इक रोवत। एक अकाशनदी मुख धोवत॥४०॥
एक गये यम लोक सहे दुख। एक कहैं भव-भूतन सों सुख॥
एक ते सागर माँझ परे मरि। एक गये बड़वानल में जरि॥४१॥

शब्दार्थ—(४०)-धर=(धरा) पृथ्वी। आकाशनदी=आकाशगंगा। (४१)-भव-भूत=सांसारिक पंचभूत अर्थात्, पवन अग्नि इत्यादि।

(४०)-रावण ने सब वानरों को बाणों से बेध दिया। बहुत से वानर तो मलयगिरि पर जा गिरे, कुछ सूर्यमंडल में जा पड़े, कुछ आकाशगंगा में मुख धोते हैं। (४१)-कोई

ख सहकर (मरकर) यमलोक को गये, कोई पंचभूतों से
ा मिले, कोई मर कर समुद्र में वहे जाते हैं, कोई वड़वानल
जल गये हैं।

६—मोटनक छंद—श्री लक्ष्मण कोप कन्यो जवहीं। छोड़्यो
शर पावक को तवहीं॥ जान्यो शर पंजर छार कन्यौ।
नैऋत्यन को अति चित्त डन्यौ॥ ४२॥

शब्दार्थ—शरपंजर=शर-कोट (वीर लोग वाण फेंक कर
सेना के चारो ओर दीवार सी वना देते हैं जिससे कोई योद्धा
उससे वाहर न जा सके, इसे शर-पंजर कहते हैं)।
नैऋत्य=राक्षस।

भावार्थ—अपना दल विकल देख कर जव श्री लक्ष्मण जी
ने क्रोध किया तव अग्निवाण छोड़ा और शर-पंजर को
जला कर खाक कर दिया, यह देख कर राक्षसों के चित्त-
वहुत ही भयभीत हुए।

मूल—दौरे हनुमंत वली वल स्यौं। लै अंगद संग सवै दल स्यौं॥
मानों गिरि राज तजे डर को। घेरैं चहुँ ओर पुरंदर को॥४३॥

भावार्थ—इस के वाद श्रीहनुमान और अंगद सेना को समेट
कर वलपूर्वक रावण को घेर लेने के लिये दौड़े। यह
धावा ऐसा मालूम हुआ मानो वड़े वड़े पर्वत निडर होकर
इन्द्र को घेर रहे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ—सरावलि=शर समूह। सिकता=बालू। दृष्टि के बल संहरे=दृष्टि का बल जाता रहा अर्थात् ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पड़ने लगा। छतना करे=शरीरों को छेद कर मधुमक्षिका के छाते की तरह कर दिया।

भावार्थ—श्री राम जी को रथ पर सवार देखकर रावण का क्रोध बढ़ा, बीस भुजाओं के शर-समूह से ज़मीन आसमान को भर दिया। पर्वत बालू होगये, ऐसा अंधकार होगया कि कुछ दिखाई न पड़ने लगा। रीछों वानरों के शरीर बाणों से छेद कर छतना कर डाले।

अलंकार—अत्युक्ति

मूल—मोदक छंद—

बानन साथ बिधे सब बानर। जाय परे मलया चल की धर॥
मंडल में इक रोवत। एक अकाशनदी मुख धोवत॥४०॥
एक गये यम लोक सहे दुख। एक कहैं भव-भूतन सों सुख॥
एक ते सागर माँझ परे मरि। एक गये बड़वानल में जरि॥४१॥

शब्दार्थ—(४०)-धर=(धरा) पृथ्वी। आकाशनदी=आकाशगंगा। (४१)-भव-भूत=सांसारिक पंचभूत अर्थात् पवन अग्नि इत्यादि।

(४०)-रावण ने सब वानरों को बाणों से बेध दिया। से वानर तो मलयगिरि पर जा गिरे, कुछ सूर्यमंडल में जा पड़े, कुछ आकाशगंगा में मुख धोते हैं। (४१)-कोई

ला कर। चर्म=ढाल। वर्म=कवच। अशेष=सम्पूर्ण। अशेष-कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर धनुषबाण तान कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर वीर लक्ष्मण ने एक बाण छोड़दिया। वह बाण ध्वजा को काट कर, रावण के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर, और सब सिरों को काट कर, रसातल को [illegible]।

मूल—दंडक छंद—सूरज [illegible]
जामवंत असि, हनू तोमर [illegible]
केशरी, गवय शूल, विभीषण गदा,
मोगरा द्विविद, तार
गवाक्ष विटप विदारे
शक्ति, बाण तीन

शब्दार्थ—सूर [illegible]
चार हाथ लंबा होता है
तोमर=शापला। [illegible]
मोगरा=मुद्गर। [illegible]
लक्ष्मण। शक्ति=साँग, [illegible]

भावार्थ—रावण ने सुग्रीव को लोहाँगी से, जामवंत [illegible] मारा। सुखेन को फरसा शूल से, विभीषण को

मूल—हीर छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के।
ऋक्षपतिहिं अक्षारिपुहिं लक्ष गति रिझाय के॥
वानर गण वारन सम केशव सबही मुर्यो।
रावण दुखदावन जग पावन समुहें जुर्यो॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि। मुरझायके=शिथिलकरके। ऋक्षपति=जामवंत। अक्षारिपु=हनुमान। लक्ष-गति रिझाइकै=निशानेबाजी से खुश करके अर्थात् बाणों से बेधकर। वारनसम=हाथी समान बलवान। मुर्यो=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये। दुखदावन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी। जगपावन=श्रीराम जी। समुहें=सामने।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशाने बाजी से खुश कर दिया (घायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान वानरों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने आकर उनसे भिड़गया।

छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि रोकियो सु बान। छोंड़ि दीन बीर बान कान के प्रमाण आनि॥ सो काटि चाप चर्म वर्म मर्म छेदि। जात भो रसातलै कंठमाल भेदि॥ ४५॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी। आनि=आकर। आनि=

ला कर। चर्म=ढाल। वर्म=कवच। अशेष=सम्पूर्ण
कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर
कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर
ने एक बाण छोड़दिया। वह बाण ध्वजा को काट
के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर
सिरों को काट कर, रसातल को चला गया।

मूल—दंडक छंद—सूरज मुसल, नील पट्टिश,
जामवंत असि, हनू तोमर सँहारे हैं। परसा
केशरी, गवय शूल, विभीषण गदा, गज भिंदिपाल
मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा,
गवाक्ष विटप विदारे हैं। अंकुश शरभ, चक्र दधिमुख,
शक्ति, बाण तीन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं॥ ४६॥

शब्दार्थ—सूरज=सुग्रीव। पट्टिश=खाँड़ा (दोधारा
चार हाथ लंबा होता है)। परिघ=गँड़ासा वा लोहाँगी
तोमर=शापला। कुंत=बरछी। भिंदिपाल=ढेलवाँस,
मोगरा=मुद्गर। कटरा=कटार। नेजा=भाला। शेष
लक्ष्मण। शक्ति=साँग, बाना।

भावार्थ—रावण ने सुग्रीव को मूसल से, नील को खाँड़े से,
को लोहाँगी से, जामवंत को तलवार से और हनुमान को शापले से
मारा। सुखेन को फरसा से, केशरी को बरछी से, गवय को
शूल से, विभीषण को गदा से, और गज को गोफने से मार

मूल—हीर छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के।
ऋक्षपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्ष गति रिझाय के॥
बानर गण बारन सम केशव सबहीं मुर्यो।
रावण दुखदावन जग पावन समुहें जुर्यो॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि। मुरझायके=शिथिलकरके। ऋक्षपति=जामवंत। अक्षरिपु=हनुमान। लक्ष-गति रिझाइके=निशानेबाजी से खुश करके अर्थात् बाणों से बेधकर। बारनसम=हाथी समान बलवान। मुर्यो=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये। दुखदावन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी। जगपावन=श्रीराम जी। समुहें=सामने।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशाने बाजी से खुश कर दिया (घायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान वानरों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने आकर उनसे भिड़गया।

—चंचला छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि रोकियो सु बान।
छोंड़ि दीन वीर बान कान के प्रमाण आनि॥ सो
काटि चाप चर्म धर्म मर्म छेदि। जात भो रसातलै
कंठमाल भेदि॥ ४५॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी। आनि=आकर। आनि=

ला कर। चर्म=ढाल। वर्म=कवच। अशेष=सम्पूर्ण। अशेष-कंठमाल भेदि=सब सिरों को काटकर।

भावार्थ—तब लक्ष्मण जी ने सामने आकर धनुषबाण तान कर रावण को रोका, और कान तक खींच कर वीर लक्ष्मण ने एक बाण छोड़दिया। वह बाण ध्वजा को काट कर, रावण के धनुष, ढाल, कवच और मर्म स्थान को छेद कर, और सब सिरों को काट कर, रसातल को चला गया।

मूल—दंडक छंद—सूरज मुसल, नील पट्टिश, परिघ नल, जामवंत असि, हनू तोमर सँहारे हैं। परसा सुखेन, कुंत केशरी, गवय शूल, बिभीषण गदा, गज भिंदिपाल टारे हैं॥ मोगरा द्विविद, तार कटरा, कुमुद नेजा, अंगदशिला, गवाक्ष बिटप बिदारे हैं। अंकुश शरभ, चक्र दधिमुख, शेष शक्ति, बाण तीन रावण श्री रामचंद्र मारे हैं॥ ४६॥

शब्दार्थ—सूरज=सुग्रीव। पट्टिश=खाँड़ा (दोधारा और चार हाथ लंबा होता है)। परिघ=गँड़ासा वा लोहाँगी। तोमर=शापला। कुंत=बरछी। भिंदिपाल=ढेलबाँस, गोफना। मोगरा=मुद्गर। कटरा=कटार। नेज़ा=भाला। शेष=लक्ष्मण। शक्ति=साँग, बाना।

भावार्थ—रावण ने सुग्रीव को मूसल से, नील को खाँड़े से, नल को लोहाँगी से, जामवंत को तलवार से और हनुमान को शापले से मारा। सुखेन को फरसा से, केशरी को बरछी से, गवय को शूल से, बिभीषण को गदा से, और गज को गोफने से मार

मूल—हीर छंद—अंगद रणअंगन सब अंगन मुरझाय के।
ऋक्षपतिहिं अक्षरिपुहिं लक्ष गति रिझाय के॥
वानर गण बारन सम केशव सबही मुर्यो।
रावण दुखदावन जग पावन समुहें जुर्यो॥४४॥

शब्दार्थ—रण अंगन=(रणांगण) समरभूमि। मुरझायके=शिथिलकरके। ऋक्षपति=जामवंत। अक्षरिपु=हनुमान। लक्ष गति रिझाइकै=निशानेबाजी से खुश करके अर्थात् बाणों से बेधकर। बारनसम=हाथी समान बलवान। मुर्यो=मोड़ दिये, सामने से हटा दिये। दुखदावन=दुखसे जलानेवाला अर्थात् अत्यंत दुखदायी। जगपावन=श्रीराम जी। समुहें=सामने।

भावार्थ—रावण ने समरभूमि में अंगद को सब अंगों से शिथिल कर डाला, तथा जामवंत और हनुमान को निशाने बाजी से खुश कर दिया (घायल कर दिया) और अन्य हाथी-समान बलवान वानरों को अपने सामने से मोड़ दिया, तब अत्यंत दुखदायी रावण श्री राम जी के सामने उनसे भिड़गया।

छंद—इन्द्रजीत-जीत आनि रोकियो सु बान। छोड़ि दीन धीर बान कान के प्रमाण आनि॥ सो काटि चाप चर्म वर्म मर्म छेदि। जात भो रसातलै कंठमाल भेदि॥ ४५॥

शब्दार्थ—इन्द्रजीत-जीत=लक्ष्मण जी। आनि=आकर। आनि=

कर हटा दिया। द्विविद को मुद्गर से, तारा को कटार से, कुमुद को नेजे से, अंगद को शिला और गवाक्ष को पेड़ से विदीर्ण कर दिया। शरभ को अंकुश, दधिमुख को चक्र, लक्ष्मण को साँग और धनुषसे तीन बाण रामजी को मारे (तात्पर्य यह कि रावण अपने अठारह हाथों से अन्य अठारह वीरों से लड़ता है और दो हाथों से राम से लड़ रहा है)

मूल—दोहा—द्वैभुज श्री रघुनाथ सों विरचे युद्ध विलास
बाहु अठारह यूथपनि मारे केशवदास ॥ ४७॥

शब्दार्थ—युद्ध विलास=युद्ध क्रीड़ा (तात्पर्य यह कि रावण युद्ध को एक खेल समझता है)।

मूल—गंगोदक छंद—
युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै ताहि ताही दिसा रोकि राखैतहीं
आपने अस्त्र लै शस्त्र काटे सबै ताहि केहूँ कहूँ घाव लागै नहीं॥
दौरि सौमित्र ल बाण कोदंड ज्यों खंड खंडी। ध्वजा धीर छत्रावली
दौल शृंगावली छोड़ि मानो उड़ी। एक ही बेर कै हंस वंशावली॥४८॥

शब्दार्थ—सौमित्र=लक्ष्मण। खंडखंडी=खंडखंड कर डाली।
अलंकार—उत्प्रेक्षा।

—त्रिभंगी छंद—
शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण रावण सों रिस छोड़ि दई।
छंडे जे सिर खंडे ते फिरि मंडे शोभ नई॥
यद्यपि रण-पंडित गुन गन मंडित रिपुबल खंडित भूलि रहे।
तजि मन बच कायक, सुरसहायक, रघुनायक सों वचन कहे॥४९॥

शब्दार्थ—रिस=(पंजाबी 'रीस') बराबरी, युद्ध। रावण सों रिस छोड़दई=रावण से युद्धकरना छोड़ दिया अर्थात् बंद कर दिया। रिपुवल खंडित=(ये शब्द लक्ष्मण के विशेषण हैं) रिपुवल द्वारा खंडित हुआ है रणपांडित्य जिनका (अर्थात् लक्ष्मण जी)।भूलि रहे=चकित हो रहे हैं। तजि मन वच कायकै =मन वचन और कर्म से अपने रणापांडित्यका अहंकार छोड़कर। सूरसहायक=(रघुनायक का विशेषण है)।

भावार्थ—जब लक्ष्मण ने देखा कि बहुत से बाण छोंड़ कर जो रावण के सिर हम काटते हैं, वे फिर नवीन शोभा धारण करते हैं (नवीन सिर निकल आते हैं) तब शुभलक्षण तथा बुद्धिमान लक्ष्मण ने रावण से युद्ध करना बंद कर दिया। यद्यपि लक्ष्मण जी बड़े रणपंडित और वीरोचित गुणयुक्त हैं, तथापि रिपुवल से भग्न मनोरथ होकर (मारने में असफल होकर) चकित हो रहे, और मन-वचन कर्म से रणपांडित्य का अभिमान छोड़ कर शूरवीरों के सच्चे सहायक रामजी से यों बोले।

मूल—(लक्ष्मण)—

ठाढो रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्री रघुनंदन मुनि जन वंदन दुष्ट निकंदन सुख दायक॥
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि शायक।
रावणहिं न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक॥५०॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि हे प्रभो —

कर हटा दिया। द्विविद को मुद्गर से, तारा को कटार से, कुमुद को नेजे से, अंगद को शिला और गवाक्ष को पेड़ से विदीर्ण कर दिया। शरभ को अंकुश, दधिमुख को चक्र, लक्ष्मण को साँग और धनुषसे तीन बाण रामजी को मारे (तात्पर्य यह कि रावण अपने अठारह हाथों से अन्य अठारह वीरों से लड़ता है और दो हाथों से राम से लड़ रहा है)

मूल—दोहा—द्वैभुज श्री रघुनाथ सों विरचे युद्ध विलास
बाहु अठारह यूथपनि मारे केशवदास ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—युद्ध विलास=युद्ध क्रीड़ा (तात्पर्य यह कि रावण युद्ध को एक खेल समझता है)।

मूल—गंगोदक छंद—
युद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै ताहि ताही दिसा रोकि राखैतहाँ
आपने अस्त्र लै शस्त्र काटे सबै ताहि केहूँ कहूँ घाव लागै नहीं॥
दौरि सौमित्र लै बाण कोदंड ज्यों खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली
शैल शृंगावली छोड़ि मानो उड़ी एक ही बेर कै हंस वंशावली॥४८॥

शब्दार्थ—सौमित्र=लक्ष्मण। खंडखंडी=खंडखंड कर डाली।
अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—त्रिभंगी छंद—
लक्ष्मण शुभ लक्षण बुद्धि विचक्षण रावण सों रिस छोड़ि दई।
बहु बानन छेदे जे सिर खंडे ते फिरि मंडे शोभ नई॥
यद्यपि रण-पंडित गुन गन मंडित रिपुबल खंडित भूलि रहे।
तजि मन बच कायक, सूरसहायक, रघुनायक सों वचन कहे॥४९॥

शब्दार्थ—रिस=(पंजाबी 'रीस') बराबरी, युद्ध। रावण सों रिस छोड़दई=रावण से युद्धकरना छोड़ दिया अर्थात् बंद कर दिया। रिपुबल खंडित=(ये शब्द लक्ष्मण के विशेषण हैं) रिपुबल द्वारा खंडित हुआ है रणपांडित्य जिनका (अर्थात् लक्ष्मण जी)।भूलि रहे=चकित हो रहे हैं। तजि मन वच कायकं =मन वचन और कर्म से अपने रणपांडित्यका अहंकार छोड़कर। सूरसहायक=(रघुनायक का विशेषण है)।

भावार्थ—जब लक्ष्मण ने देखा कि बहुत से बाण छोड़ कर जो रावण के सिर हम काटते हैं, वे फिर नवीन शोभा धारण करते हैं (नवीन सिर निकल आते हैं) तब बु[illegible] बुद्धिमान लक्ष्मण ने रावण से युद्ध करना बंद कर [illegible] यद्यपि लक्ष्मण जी बड़े रणपंडित और वीरोचित गुणयुक्त हैं, तथापि रिपुबल से भग्न मनोरथ होकर (मारने में असफल होकर) चकित हो रहे, और मन-वचन कर्म से रणपांडित्य का अभिमान छोड़ कर शूरवीरों के सच्चे सहायक रामजी से यों बोले ।

मूल—(लक्ष्मण)—

ठाढो रण गाजत केहुँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्री रघुनंदन मुनि जन वंदन दुष्ट निकंदन सुख दायक॥
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि शायक।
रावणहिं न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक॥५०॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी राम जी से कहते हैं कि देखिये महा-

राज ! रावण खड़ा रण में गरज रहा है, किसी प्रकार भागता नहीं। इस सर्व प्रकार से योग्य योद्धा को देखकर मैं तन मन से लज्जित हो रहा हूँ। हे मुनिवंद्य, दुष्टदलन सुखदायक राम जी सुनिये, यह रावण न टाले टलता है, न मारे मरता है, मैं बराबरी करते करते थक गया हूँ। हे जगनायक ! आप रावण को क्यों नहीं मारते, सुनते नहीं कि सब देवता अति आर्त वाणी से पुकार कर रहे हैं।

मूल—(राम) छप्पयछंद—जेहि शर मधु-मद मरदि महा मुर मर्दन कीनो। मार्‍यो कर्कस नरक शंख हति शंख हु लीनो॥ निष्कंटक सुर कटक कर्‍यो कैटभ वपु खंड्यो। खरदूषण त्रिशिरा कबंध तरु खंड विहंड्यो॥ कुंभकरण जेहि संहर्‍यो पल न प्रतिज्ञा ते टरौं। तेहि बाण प्राण दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं॥ ५१॥

शब्दार्थ—कर्कस=कठोर। मधु, मुर, नरक, शंख, कैटभ= ये सब उन बड़े बड़े दैत्यों के नाम हैं जिन्हें विष्णु ने मारा है। तरुखंड=सातो लाल वृक्ष जिन्हें राम जी ने सुग्रीव के कहने से विद्ध किया था। विहंड्यौ=(विखंड्यौ) विशेष प्रकार से खंडित किया है।

भावार्थ—राम जी लक्ष्मण सरीखे वीर को घबराया हुआ जान कर दिलासा देने हेतु कहते हैं कि घबराओ नहीं, जिस बाण से मैंने ये दैत्य राक्षसादि मारे हैं उसी बाण से रावण को भी मारूँगा और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।

अलंकार--स्वभावोक्ति ।

मूल--दोहा--रघुपति पठयो आसुही असु-हर बुद्धि निधान ।
दससिर दसहू दिसन को बलि दै आयो बान ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ--आसुही=शीघ्रही । असुहर=प्राणनाशक । बुद्धि निधान=राम जी ।

भावार्थ--बुद्धिनिधान राम ने तुरन्त एक प्राणहर बाण छोड़ा जो रावण के दसो सिर काट कर दसो दिशाओं को बलि देकर पुनः तरकस में आगया ।

मूल--सुन्दरी सवैया--

भुवभारहि संयुत राकस को गण जाय रसातल में अनुराग्यो
जग में जय शब्द समेतहि केशव राज विभीषणके सिर जाग्यो
मयदानव नंदिनिके सुख सों मिलिकै सियके हिय को दुख भाग्यो
सुर दुंदुभि-सीस गजा सर राम को रावण के सिर साथहि लाग्यो

शब्दार्थ--मयदानवनंदिनी=मंदोदरी । गजा=(गज) नगाड़े की चोब, वह लकड़ी जिससे नगाड़ा बजाया जाता है ।

भावार्थ--भूमिभार सहित राक्षसों का समूह पाताल को चला गया । राम की जयका शब्द और विभीषण की राज्यप्राप्ति का सौभाग्य एकसाथही उदय हुआ । मंदोदरी का सुख और सीता का दुख साथ ही भाग गये । रावण के सिर में राम का बाण और देव-दुदुंभी पर दंडा एक साथ ही लगे ।

अलंकार--अक्रमाविशयोक्ति, सहोक्ति ।

मूल—(मंदोदरी)—मत्तगयन्द सवैया—

जीति लिये दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी।
बासरहू निसिदेवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी॥
तीनहुँ लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दंडहि दू की।
सेवित स्वान सियार सो रावण सोवत सेज परे अब भूकी॥५४

शब्दार्थ—देवनदी = आकाशगंगा। सूकी = (बुँदेलखंडी उच्चारण) सूख गई। संपति हूकी रहै=संपत्ति को पीड़ा होती थी। दू=दो। भू=पृथ्वी।

भावार्थ—(मंदोदरी विलाप करती है) हे पतिदेव! तुम ने दिगपालों को जीत लिया था, तुम्हारे डर से स्वर्ग से भगे हुए इन्द्र की वियोगिनी पत्नी शची की गर्म साँसों से सारी आकाशगंगा सूख गई थी, तुम्हारे कारण रातोदिन देवताओं और राजाओं की संपत्ति को पीड़ा रहती थी। तीनो लोकों की स्त्रियों की तुम्हारी सेवा करने के लिये दो दो दंड की पारी बँधी हुई थी, वेही तुम आज कुत्तों और सियारों से सेवित भूमि पर सो रहे हो।

अलंकार—निदर्शना।

मूल—(राम)—तारकछंद—अब जाहु विभीषण रावण लैके। सकलत्र सबंधु क्रिया सब फैके॥ जन सेवक संपति कोश सँभारो। मयनंदिनि के सिंगरे दुख टारो॥ ५५॥

शब्दार्थ—सकलत्र=स्त्री-सहित। जन=परिजन, कुटुंबी। कोश=खजाना। मयनंदिनी=मंदोदरी।

भावार्थ—(राम जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि) हे विभीषण ! रावण का शव उठा ले जाओ और स्त्रियों तथा बंधुजनों सहित सब मृतक्रिया यथाविधि करके, सब परिवार, सेवक, सम्पत्ति और खजाने को सँभालो (जाँच कर अपने अधिकार में लो) और मंदोदरी के सब दुःख निवारण करो।

विशेष—'मयनंदिनि के सिगरे दुख टारो'–इस के दो भाव हो सकते हैं:–(१) हमारे तुम्हारे शत्रु की स्त्री समझ कर इसे आजीवन कदापि कोई दुःख न देना, यथाविधि इसकी सेवा–शुश्रूषा करना। (२) इसे अपनी स्त्री बनालो जिससे इसका सौभाग्य बना रहे और यह सीता की तरह पतिवियोग से दुखित न हो।

नोट—इस छंदसे रामजी की नीतिज्ञता, दयालुता सहानुभूति, उदारता आदि क्षत्रियोचित गुण प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं।

उन्नीसवाँ प्रकाश समाप्त

मूल—(मंदोदरी)—मत्तगयन्द सवैया—
जीति लिये दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी।
वासरहू निसिदेवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी॥
तीनहुँ लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दंडहि दू की।
सेषित स्वान सियार सो रावण सोवत सेज परे अब भूकी॥५४

शब्दार्थ—देवनदी = आकाशगंगा। सूकी = (उच्चारण) सूख गई। संपति हूकी रहै=संपत्ति होती थी। दू=दो। भू=पृथ्वी।

भावार्थ—(मंदोदरी विलाप करती है) हे ने दिगपालों को जीत लिया था, तुम्हारे डर हुए इन्द्र की वियोगिनी पत्नी शची की गर्म आकाशगंगा सूख गई थी, तुम्हारे कारण और राजाओं की संपत्ति को पीड़ा रहती थी। की स्त्रियों की तुम्हारी सेवा करने के लिये दो की पारी बँधी हुई थी, वेही तुम आज कुत्तों और सेवित भूमि पर सो रहे हो।

अलंकार—निदर्शना।

—(राम)—तारकछंद—अब जाहु विभीषण लैकै। सकलत्र सबंधु क्रिया सब कैकै॥ जन सेवक कोश सँभारो। मयनंदिनि के सिगरे दुख टारो॥ ६५॥

शब्दार्थ—सकलत्र=स्त्री-सहित। जन=परिजन, कुटुंबी। कोश=खजाना। मयनंदिनी=मंदोदरी।

और नवीन आनंदित अंगों में फूलमालायें धारण कीं। ब्राह्मणों और देवताओं ने प्रशंसासूचक विरुदावली पढ़ी, तदनंतर अग्निदेव की गोद में चढ़कर सीता जी राम की ओर चली।

(सीता की अग्नि-परीक्षा)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सबस्त्रा सबै अंग सिंगार सोहैं। विलोके रमा देव देवी विमोहैं॥ पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता। लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता॥ ४॥

शब्दार्थ—कन्यका=पुत्री। शुभ्रगीता=पवित्राचरणवाली।

भावार्थ—सीता जी वस्त्राभूषणों से शृंगारित हैं, जिनका रूप देख कर लक्ष्मी सहित देव-देवियाँ विमोहित होती हैं। जैसे पिता की गोद में कोई पवित्राचरणी कन्या हो वैसे ही अग्नि की गोद में शुद्ध सीता विराजती हैं।

अलंकार—देहरीदीपकसे पुष्ट उपमा।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—

महादेव के नेत्र की पुत्रिकासी। कि संग्राम की भूमि में चंडिका मनो रत्न सिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी रागपूरे रची।

शब्दार्थ—पुत्रिका=पुतली। सची=इन्द्राणी। राग=अनुराग। रची है=रँगी है।

भावार्थ—(सीताजी उस समय कैसी जान पड़ती हैं) महादेव के नेत्र की पुतली हैं, या रणभूमि की चंडिका हैं,

बीसवाँ प्रकाश

—:०:—

दोहा—या बीसयें प्रकाश में सीता मिलन विशेषि।
ब्रह्मादिक अस्तुति गमन अवधपुरी को लेषि ॥
प्राग बरणि अरु वाटिका भरद्वाज की जानि।
ऋषि रघुनाथ मिलाप कहि पूजा करि सुख मानि ॥

मूल—(श्रीराम) तारक छंद—

जय जाय कहौ हनुमंत हमारो। सुख देवहु दीरघ दुःख विदारो।
सब भूषण भूषित कै शुभगीता। हमको तुम वेगि दिखावहु सीता।

शब्दार्थ—जय=(केशव यहाँ पुंलिंग मानते हैं) जीत। देवहु= दीजिये। शुभगीता=सर्व-प्रशंसित।

मूल—तारक छंद—

हनुमंत गये तहहीं जहँ सीता। अरु जाय कहो जय की सब गीता।
पगलागि कहो जननी पगु धारो। मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो।

शब्दार्थ—गीता=वर्णन। पगुधारो=चलिये। मगचाहत हैं= रास्ता देख रहे हैं, बाट जोहते हैं।

छंद—

[illegible] धरिकै कुसुमावलि अंग नवीने।
[illegible] पढ़ी शुभगीता। तब पावक अंक चली चढ़ि सीता।

[illegible] ने सब शरीर को भूषणों से भूषित किया

और नवीन आनंदित अंगों में फूलमालायें धारण कीं। ब्राह्मणों और देवताओं ने प्रशंसासूचक विरुदावली पढ़ी, तदनंतर अग्निदेव की गोद में चढ़कर सीता जी राम की ओर चलीं।

(सीता की अग्नि-परीक्षा)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—सबस्त्रा सबै अंग सिंगार सोहैं। विलोके रमा देव देवी विमोहैं॥ पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्रगीता। लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता॥ ४॥

शब्दार्थ—कन्यका=पुत्री। शुभ्रगीता=पवित्राचरणवाली।

भावार्थ—सीता जी वस्त्राभूषणों से शृंगारित हैं, जिनका रूप देख कर लक्ष्मी सहित देव-देवियाँ विमोहित होती हैं। पिता की गोद में कोई पवित्राचरणी कन्या हो वैसे ही अग्नि की गोद में शुद्ध सीता विराजती हैं।

अलंकार—देहरीदीपकसे पुष्ट उपमा।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—

महादेव के नेत्र की पुत्रिकासी। किसंग्राम की भूमि में मनो रत्न सिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी रागपूरे रची है॥

शब्दार्थ—पुत्रिका=पुतली। सची=इन्द्राणी। राग—अनुराग। रची है=रँगी है।

भावार्थ—(सीताजी उस समय कैसी जान पड़ती हैं। महादेव के नेत्र की पुतली हैं, या रणभूमि की अति

या मानो रत्न सिंहासन में बैठी हुई इन्द्राणी हैं, या पूरे अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी हैं।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—गिरापूर में है पयोदेवता सी। किधौं कंज की मंजु शोभा प्रकासी। किधौं पद्म ही में सिफाकंद सोहै। किधौं पद्म के कोप पद्मा विमोहै॥ ६॥

शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। पूर=समूह। गिरापूर=सरस्वती नदी का जलसमूह। पयोदेवता=जल-देवी। सिफाकंद=कमल-कंद। कोप=कमल की छतरी, कमल के मध्यभाग का बीज-कोष। पद्मा=लक्ष्मी।

भावार्थ—या सरस्वती के जलसमूह में कोई जलदेवी है, या उसी में कोई सुन्दर कमल खिला हुआ है, या कमल में कमलकंद है, या कमल के बीजकोष पर लक्ष्मी जो बैठी शोभा देरही हैं।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

किधौं सिंदूर शैलाग्र में सिद्धकन्या। किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या॥
सरोजासना है मनो चारु वानी। जपापुष्प के बीच बैठी भवानी॥

भावार्थ—या सिंदूर शैल के अग्रभाग में कोई सिद्ध-कन्या बैठी है, या सूर्य मंडल में कोई कमलिनी है, या सुन्दर सरस्वती ही कमल पर बैठी हैं, या जपापुष्प पर भवानी हैं।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—किधौं औषधी वृन्द में रोहिणी सी। कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी॥ धरा पुत्र ज्यों स्वर्णमाला प्रकासै। किधौं ज्योति सी तक्षकाभोग भासै॥ ८॥

शब्दार्थ—तक्षकाभोग=(तक्षक+आभोग)तक्षक का फण।

भावार्थ—या दिव्यौषधियों के समूह में रोहिणी बैठी है, या दिग्दाह में कोई योगिनी है, या मंगल-मंडल में स्वर्णमाला है, या तक्षक के फण पर मणिज्योति प्रकाशित है।

अलंकार—संदेह।

मूल—उपेन्द्रवज्रा—आसावरी माणिककुंभ सोभै। अशोक लग्ना वन देवता सी॥ पलाशमाला कुसुमालि मध्ये। वसंत लक्ष्मी सुभ लक्षणा सी॥ ९॥

शब्दार्थ—आसावरी=एक रागिनी विशेष। लग्ना=स्थित, बैठी हुई।

भावार्थ—(सीता जी अग्नि पर बैठी कैसी जान पड़ती हैं मानो) आसावरी रागिनी माणिक का कुंभ लिये हो (अग्नि समूह आसावरी रागिनी है, सीता माणिककुंभ हैं) या अशोक वृक्षपर स्थित कोई वनदेवी है, अथवा शुभलक्षणा वसन्तश्री (वसंत की शोभा) पलाश-कुसुम के समूह में शोभित है।

अलंकार—उपमागर्भित संदेह।

मूल—आरक्तपत्रा सुभ चित्रपुत्री। मनो विराजै अति चारु वेषा॥ सपूर्ण सिंदूर प्रभा वसै धौं। गणेश भालस्थल चन्द्ररेखा॥१०॥

शब्दार्थ—आरक्तपत्रा=लाल बेलबूटों से सजाई हुई। चित्र-

पुत्री=चित्रकी पुतली। चन्द्ररेखा=चंद्रमा की कला (जो गणेश के मस्तक पर है)।

भावार्थ—या मानो कोई चित्रपुतली लाल बेलबूटों के मध्य सुन्दर भेष से सजाई गई हो (अग्नि लाल बेलबूटे हैं और सीता जी चित्रपुतरी हैं) या संपूर्ण सिंदूर की प्रभा में गणेश के भाल पर की चन्द्रकला है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

मूल—मत्तगयंद सवैया—

है मणि दर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज प्रताप में कीरति सी तप तेजन में मनु सिद्धि विनीता॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनँद कंद हुतासन मध्य सवासन सीता॥

शब्दार्थ—अनुरक्त अभीता=निश्चल अनुरागी जन। विनीता=अति उत्तम। हुतासन=अग्नि। सवासन=वस्त्रों सहित।

भावार्थ—(सीता जी अग्नि-मध्य में बैठी कैसी शोभित हैं कि) मणिदर्पण में किसी का प्रतिबिंब है, या किसी निश्चल अनुरागी के हृदय में सक्षात् प्रीति ही मूर्तिमान है, या प्रताप के ढेर में कीर्ति है, या तपतेज में उत्तमा सिद्धि है, या जैसे केशव के हृदय में राम-भक्ति बसती है वैसे ही सीता अग्नि में सवस्त्रा विराजी हैं (वस्त्र तक नहीं जलते)।

अलंकार—उपमा से पुष्ट संदेह।

नोट--इस प्रसंग से केशव की उर्वरा प्रतिभा का पता अच्छी भाँति लगता है। अग्नि में बैठी जानकी के लिये कितनी अधिक उपमाएँ धाराप्रवाहवत् कहते चले गये हैं। यह आसान बात नहीं है। केशव में प्रतिभा का ऐसा विकाश इसी पुस्तक में अनेक ठौर देखा जाता है।

मूल—दोहा—इन्द्र वरुण यम सिद्ध सब धर्म सहित धनपाल। ⊗
ब्रह्म रुद्र लै दशरथहिं आय गये तेहि काल ॥१२॥

शब्दार्थ--धर्म=धर्मराज। धनपाल=कुबेर। लै दशरथहिं=दशरथ को लेकर।

भावार्थ—इन्द्र, वरुण, यमराज, सिद्धगण, कुबेर, ब्रह्मा, रुद्र, राजा दशरथ को साथ लिये हुए वहाँ आगये।

मूल—(अग्नि)वसंततिलकाछंद—श्री रामचन्द्र यह सतत शुद्ध ⊗
सीता। ब्रह्मादि देव सब गावत शुभ्रगीता॥ हूजै कृपाल ग-
हिजै जनकात्मजा या। योगीश ईश तुम हौ यह योग माया१३

शब्दार्थ—शुभ्रगीता=प्रशंसा। गहिजै=(गहिये) ग्रहण कीजिये। जनकात्मजा=जानकी। योगीश=(योगी=शङ्कर+ईश=इष्टदेव) राम।

भावार्थ—(अग्निदेव सीता की शुद्धता की साक्षी देते हैं) हे श्रीरामचन्द्र! सुनिये, यह सीता सदैव शुद्ध है, ब्रह्मादि देवता इसकी प्रशंसा करते हैं, अब कृपा कीजिये और इस जनककन्या (जानकी) को ग्रहण कीजिये—अङ्गीकार कीजिये।

(भाव यह कि सीता इतनी पवित्र हैं जितनी कि एक सद्य-प्रसूता कन्या होती है) । हे शङ्कर के इष्टदेव ! तुम ईश्वर हो और यह सीता योगमाया है ।

मूल–वसन्ततिलकाछंद–श्री रामचन्द्र हँसि अंक लगाइ लीन्हों। संसार साक्षि शुभ पावक आनि दीन्हों ॥ देवानि दुंदुभि बजाय सुगीत गाये । त्रैलोक-लोचन-चकोरनि-चित्त भाये॥ १४॥

भावार्थ—(अग्निदेव की साक्षी पर) श्रीरामजी ने सीता को आलिङ्गन करके अङ्गीकार किया क्योंकि संसार के साक्षीस्वरूप पवित्र अग्निदेव ने उन्हे लाकर दिया था, (यह देख) देवताओं ने नगाड़े बजा कर स्तुति की । इस समय की शोभा त्रिलोक-निवासियों के नेत्र-चकोरों के चित्त में आनंददायक लगी (सीता राम के मिलन की शोभा देखकर त्रिलोकनिवासियों को आनन्द हुआ) ।

अलंकार—परंपरित रूपक-(श्रीराम को चन्द्र कहा अतः त्रिलोक-वासियों के नेत्रों को चकोर कहना ही उचित है) ।

(श्रीराम-स्तुति)

मूल—(ब्रह्मा) दोधकछंद—

राम सदा तुम अंतरयामी । लोक चतुर्दश के अभिरामी ॥
निर्गुण एक तुम्हें जग जानैं । एक सदा गुणवंत बखानैं ।

शब्दार्थ—अंतरयामी=(अन्तर्यामी) सबके हृदय में बसनेवाले । अभिरामी=आनंद-दायक । गुणवंत=सगुणरूप ।

भावार्थ—(ब्रह्मा कहते हैं) हे राम ! तुम सबके हृदय में बसते हो (सबके छल-कपट तथा सत्यभाव को जानते हो) चौदहो लोकों को आनंद देते हो, जग में कुछ लोग तुम्हें निर्गुण मानते हैं कुछ सगुणरूप कहते हैं ।

छंद—ज्योति जगै जग मध्य तिहारी । जाइ कहीं न सुनी न निहारी कोउ कहै परिमान न ताको । आदि न अंत न रूप न जाको ॥

शब्दार्थ—ज्योति=प्रकाश । परिमान=अंदाज, मात्रा ।

भावार्थ—सरल है (ईश्वर के निर्गुण रूप का वर्णन है) ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

छंद—तारकछंद—तुम हो गुण रूप गुणी तुम ठाये । तुम एक से रूप अनेक बनाये ॥ इक है जो रजोगुण रूप तिहारो । तेहि सृष्टि रची विधि नाम विहारो ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—ठाये=स्थित हो, बनाये हो । विधि नाम विहारो=ब्रह्मा नाम से प्रसिद्ध हो ।

भावार्थ—तुम्हीं गुणरूप हो, तुम्हीं सगुणरूप (प्रकृत नर रूप) बनाये हुए हो—(अर्थात् तुम साधारण सृष्टि की भाँति मेरे रचे हुए नहीं हो) । तुम्हारा जो एक रजोगुणमय रूप है, उसीने सारी सृष्टि की रचना की है और ब्रह्मा नाम से प्रसिद्ध है ।

अलंकार—उल्लेख ।

मूल—तारकछंद—गुण सत्व धरे तुम रक्षत जाको। अब कहै सिगरो जग ताको॥ तुमही जग रुद्र सरूप सँहारो। कहिये तेहि मध्य तमोगुण मारो॥ १८॥

भावार्थ—सम्पूर्ण सतोगुण धारण किये हुए जिस रूप की तुम रक्षा करते हो (जिस रूप से स्थित हो) उसी रूप को सारा संसार 'विष्णु' कहता है। तुम्हीं रुद्ररूप से संसार को संहार करते हो, और उस रूप में समस्त तमोगुण ही तमोगुण है।

अलंकार—उल्लेख।

मूल—तारक छंद—

तुमही जग हो जग है तुमहीं में। तुमही विरची मरजाद दुनीमें॥ मरजादहिं छोड़त जानत जाको। तबही अवतार धरो तुम ताको॥

शब्दार्थ—मरजाद=(मर्याद) सीमा। दुनी=(दुनियाँ) संसार। ताको=उसके बध या विनाश के लिये।

भावार्थ—तुम्हीं संसार हो और सब संसार तुम्हीं में स्थित है। तुम्हीं ने संसार में सब जीवों के कृत्यों की सीमा बाँध दी है। जब जिस जीव को सीमा उल्लंघन करते देखते हो तब उसको नष्ट करने के लिये तुम कोई अवतार लेते हो।

मूल—तारक छंद—

तुमही धर कच्छप बेष धरो जू। तुम मीनहै बेदन को उधरो जू॥ तुमही जग बाराह भये जू। छिति छीनि लई हिरनाछ हयेजू॥ तुमही नरसिंह को रूप सँवारो। प्रहलाद को दीरघ दुःख बिदारो॥ तुमही बलि बामन बेष छलोजू। भृगुनंदनहै छिति छत्र दलोजू॥

तुमही यह रावण दुष्ट सँहार्‍यो। धरणी महँ बूड़त धर्म उबार्‍यो
तुमही पुनि कृष्ण को रूप धरोगे। हति दुष्टन को भुवभार हरोगे॥
तुमबौध सरूप दयाहि धरोगे। पुनि कल्किहै म्लेच्छसमूहहरोगे।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज सँवारे।

शब्दार्थ—धर=(यहाँपर) पर्वत, मंदराचल। छत्र=क्षत्री समूह।

अलंकार—उल्लेख।

मूल—(महादेव)पंकजवाटिका छंद—श्री रघुवर तुम हौ जग-नायक। देखहु दशरथ कों सुख दायक॥ सोदर साहित पिता पद पावन। वंदन किय तव ही मनभावन॥ २४॥

शब्दार्थ—सुखदायक=रामजी का संबोधन है। मनभावन=श्रीराम जी।

मूल—(दशरथ) निशिपालिका छंद—राम! सुत! धर्मयुत सीय मन मानिये। बन्धुजन मातुगन प्रान सम जानिये॥ ईश, सुरईश, जगदीश सम देखिये। राम कहँ लक्ष्मण! विशेष प्रभु लेखिये॥ २५॥

भावार्थ—(दशरथ जी राम से कहते हैं) हे पुत्र राम! सीता को मन में धर्मयुत समझिये (सीता निर्दोष हैं, अतः इसे अंगीकार करो। ऐसा करने से यदि तुम्हें शंका हो कि बन्धु-बान्धवादि कैसे मानेंगे तो) यह समझो कि सीता तुम्हारे बन्धुजनों तथा मातृगण की प्राण है—प्राणों को कोई छोड़ना पसंद नहीं करता। (तदनंतर लक्ष्मण से कहते हैं कि) हे लक्ष्मण! तुम राम को शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान

देखो और अपना विशेष प्रभु समझो (माई मत समझो)।

अलंकार—उपमा।

मूल—(इन्द्रप्रति राम कहते हैं) चंचलाछंद—जूझि जूझि कै गयौ जे वानरालि ऋक्षराजि । कुंभकर्ण लोकहर्ण भक्षियो जे गाजि गाजि ॥ रूपरेख स्यौं विशेषि जी उठै करो सु आज । आनि पायँ लागियो तिन्हैं समेत देवराज ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—वानरालि=वानरों के समूह । ऋक्षराजि=रीछों के समूह । लोकहर्ण=(लोकहरण) लोगों को नाश करनेवाला । गाजिगाजि=गरज गरज कर । रूपरेख स्यौं विशेषि=जैसा उनका विशेष रूप रंग था ठीक वैसेही । देवराज=इन्द्र ।

भावार्थ—(श्री राम जी इन्द्रप्रति कहते हैं) हे इन्द्र ! तुम यह काम करो कि हमारे जितने वानर और रीछ इस युद्ध में (जो तुम्हारे हित के लिये किया गया है) जूझ गये है, तथा जिनको गरज गरज कर सर्वलोक-भक्षक कुंभकर्ण भक्षण करगया है, वे सब अपने विशेष रूप-रंग सहित (जैसे थे वैसे ही) जी उठें । राम जी की यह आज्ञा सुन इन्द्र ने उनको जिलाकर अपने साथ लाकर राम के सम्मुख उपस्थित कर दिया और चरण छुए ।

अलंकार—चपलातिशयोक्ति(आज्ञा सुनते ही कार्य होगया) ।

मूल—दोहा—बानर राक्षस ऋक्ष सब, मित्र कलत्र समेत ।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथ जू, चले अवधि के हेत ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—अवधि के हेत=चौदह वर्ष की अवधि का उल्लंघन होने से भरतजी प्राण त्याग करेंगे, यह विचार कर शीघ्रता के लिये पुष्पक पर चले।

छंद—चंचरीछंद-सेतु सीताहि शोभना दरसाय पंचवटी गये।
पाँय लागि अगस्त के पुनि अत्रियौ ते विदा भये॥
चित्रकूट विलोकि कै तब ही प्रयाग विलोकियो।
भारद्वाज वसैं जहाँ जिन ते न पावन है बियो॥२८॥

शब्दार्थ—शोभना=सुन्दर। अत्रियौते=अत्रिमुनि से भी। भारद्वाज=(छंद के लिये ऐसा किया है)। बियो=दूसरा।

(त्रिवेणी-वर्णन)

छंद—(राम)—तारक छंद—चिलके द्युति सूछम सोभति वारू। तनु ह्वै जनु सेवत हैं सुर चारू॥ प्रतिबिंबित दीप दिपैं जल माहीं। जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं॥ २९॥

शब्दार्थ—चिलकै=चमकते है। सूक्षम=बारीक। तनु=अति छोटारूप। ज्वालमुखी=देवनारियाँ,देवियाँ। जाल=समूह। नहाहीं=स्नान करती हैं।

भावार्थ—(राम जी कहते हैं)—बहुत बारीक बालू में जो छोटे कण चमकते हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो अति छोटा रूप धर कर दिव्य देवता ही त्रिवेणी की सेवा करते हैं। दीपकों के प्रतिबिंब जो त्रिवेणीजल पर पड़ते हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानो दिव्य देवियों के समूह त्रिवेणीजल में स्नान कर रहे हैं।

नोट—इस छंद से ऐसा अनुमान होता है कि राम जी शाम को चिराग जलने के बाद प्रयाग में पहुँचे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—जल की दुति पीत सितासित सोहै। अति पातक घात करै जग को है॥ मदएण मलै घसि कुंकुम नीको। नृप भारतखंड दियो जनु टीको॥ ३०॥

शब्दार्थ—पीत=पीली (सरस्वती के जल की)। सित=सफेद (गंगा जल की)। असित=काली (यमुना जल की)। अतिपातक=महापाप। मदएण=(एण-मद) कस्तूरी। मलै=चंदन। कुंकुम=केसर। टीको=तिलक।

भावार्थ—त्रिवेणी जल की चमक पीली, सफेद और काली झलक देती है, और जग के महापापों को नाश कर देती है। यह त्रिवेणी ऐसी जान पड़ती है मानो राजा भारतखंड ने कस्तूरी, चंदन और केसर घसकर मस्तक पर तिलक लगाया हो।

अलंकार—विपरीत क्रम से पुष्ट उत्प्रेक्षा (पहले पीत, सित, असित कहा, पुनः क्रम उलट कर एणमद, मलय और कुंकुम लिखा)।

मूल—(लक्ष्मण) दंडक छंद—चतुरवदन पंचवदन षटवदन, सहस्रवदन हूँ सहस गति गाई है। सात लोक सात दीप सात हू रसातलन, गंगा जी की शोभा सब ही को सुखदाई है॥ जमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रवाह पर, केशोदास बीच बीच गिरा की गोराई है। शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन कै स्यामल दुकूल हीन झलकत झाई है॥ ३१॥

शब्दार्थ—चतुरवदन=ब्रह्मा। पंचवदन=शिव। षटवदन=कार्तिकेय। सहसवदन =शेष। सहस गति=हजारों भाँति से। प्रवाह=धारा। गिरा=सरस्वती। शोभन=सुन्दर। बिलेपन कै=लेप लगा कर। दुकूल=साड़ी। झीन=बारीक। झाईं=आभा, शरीर की कान्ति।

अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

मूल—(सुग्रीव) चन्द्रकला सवैया—

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुंदरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की दुति सी दरसै गति सोखै त्रिदोषन के रस की॥
कहि केशव वेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल को मसकी।
सब वंदैं त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहि केतु त्रिविक्रम के जसकी॥३२॥

शब्दार्थ—उजागर=प्रगट। त्रिदोष=वात, कफ, पित्त। त्रिदोषन के रस की गति=मृत्यु समय के दुःख। वेदत्रयी=ऋगु,यजुर, और सामवेद। परितापत्रयी=दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। मसकी=दबादी। त्रिकाल=भूत, भविष्य, वर्तमान। त्रिलोक =मर्त्य,स्वर्ग, पाताल। त्रिविक्रम=वामन जी का दीर्घ स्वरूप।

भावार्थ—(सुग्रीव कहते हैं कि) यह त्रिवेणी कैसी है कि मानो भवसागर के लिये प्रगट सेतुरूप है, इसने समस्त शोभा को अपने वश में कर लिया है। यह तीनों देवों की दुति सी देख पड़ती है (ब्रह्मा की दुति पीली सो सरस्वती, विष्णु की दुति कृष्ण सो यमुना, शिव की दुति सपेद सो

गंगा हैं), और वात, पित और कफ जनित दोषों से पैदा मृत्यु-दुःख की गति को सोखती है (अर्थात् त्रिवेणी-सेवन से त्रिदोष में पड़कर नहीं मरना पड़ता, इसका सेवक सदेह स्वर्ग को जाता है)। केशव कहते हैं कि यह त्रिवेणी तीनों वेदों की मति सी पवित्र है, और तीनों तापों को दबा कर पाताल को भेज देती है। त्रिलोक के लोग तीनों कालों में इस त्रिवेणी की वंदना करते हैं, क्योंकि यह (गंगा के संबंध से) त्रिविक्रम के यश की पताका है।

अलंकार—रूपक, उपमा से पुष्ट सम।

मूल—(विभीषण) दंडक छंद—भूतल की वेणी सी त्रिवेणी सुभ शोभिजति एकै कहैं सुरपुर मारग विभात है। एकै कहैं पूरण अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह केशोदास द्रवरूप गात है॥ सब सुख कर सब शोभाकर मेरे जान कौनो यह अद्भुत सुगंधि अवदात है। दरस परस ही ते थिर चर जीवन की कोटि कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात है॥३३॥

शब्दार्थ—वेणी=चोटी। शोभिजति=सोहती है। विभात है=देख पड़ता है। द्रवरूप गात=जलमय शरीर। अवदात=शुद्ध और निर्मल। कुगंधि=पाप।

भावार्थ—यह त्रिवेणी पृथ्वीतल की वेणी (चोटी) सी सोहती है, और कोई कोई कहते हैं कि यह सुरपुर की सड़क सी है। कोई २ कहते हैं कि यह परिपूर्ण, अनादि और

अनंत
सुख औ
जान पर
सुगंध है
जन्मों क

अलंकार

मूल—भु
भरद्वाज
सबै वृक्ष

शब्दार्थ-
कल्पवृक्ष

भावार्थ-
देखी [illegible] को ही वाटिका समझा, क्योंकि वहाँ के सबही वृक्ष मंदारवृक्ष से भी अति उदार और सुन्दर हैं (महादेव की वाटिका में मंदार वृक्ष का होना उचित ही है, और यहाँ के वृक्ष मंदार अर्थात कल्पवृक्ष से भी अधिक उदार और सुन्दर हैं) अतः छहो ऋतुओं के फूल फल वहाँ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। संबंधातिशयोक्ति।

मूल—कहूँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरैं। चुनैं ओस के बुंद

गंगा हैं), और वात, पित और कफ जनित दोषों से पैदा मृत्यु-दुःख की गति को सोखती है (अर्थात् त्रिवेणी-सेवन से त्रिदोष में पड़कर नहीं मरना पड़ता, इसका सेवक सदेह स्वर्ग को जाता है)। केशव कहते हैं कि यह त्रिवेणी तीनों वेदों की मति सी पवित्र है, और तीनों तापों को दबा कर पाताल को भेज देती है। त्रिलोक के लोग तीनों कालों में इस त्रिवेणी की वंदना करते हैं, क्योंकि यह (गंगा के संबंध से) त्रिविक्रम के यश की पताका है।

अलंकार—रूपक, उपमा से पुष्ट सम।

मूल—(विभीषण) दंडक छंद—भूतल की बेणी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजति एकै कहैं सुरपुर मारग विभात है। एकै कहैं पूरण अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह केशोदास द्रवरूप गात है॥ सब सुख कर सब शोभाकर मेरे जान कौनो यह अद्भुत सुगंधि अवदात है। दरस परस ही ते थिर चर जीवन की कोटि कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात है॥३३॥

शब्दार्थ—बेणी=चोटी। शोभिजति=सोहती है। विभात है=देख पड़ता है। द्रवरूप गात=जलमय शरीर। अवदात=शुद्ध और निर्मल। कुगंधि=पाप।

भावार्थ—यह त्रिवेणी पृथ्वीतल की बेणी (चोटी) सी सोहती है, और कोई कोई कहते हैं कि यह सुरपुर की सड़क सी है। कोई २ कहते हैं कि यह परिपूर्ण, अनादि और

अनंत ईश्वर का जलमय शरीर ही है। यह त्रिवेणी सब सुख और सब शोभा को पैदा करनेवाली है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह कोई अद्भुत और शुद्ध निर्मलकारी सुगंध है, जिसके दरस परस मात्र से चराचर जीवों के असंख्य जन्मों की गंदगी (पापें) मिट जाती है।

अलंकार—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा।

(भरद्वाजाश्रम-वर्णन)

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

भरद्वाज की वाटिका रामदेखी। महादेव कीसी बनी चित्तलेखी
सबै वृक्ष मंदारहू ते भले हैं। छहूँ काल के फूल फूले फले हैं॥

शब्दार्थ—बनी=वाटिका। मंदार=(१) मदार, अकौवा(२) कल्पवृक्ष। छहूकाल=षट् ऋतु।

भावार्थ—श्रीराम ने ससमाज भरद्वाज जी की वाटिका देखी और उसे शिवजी की ही वाटिका समझी, क्योंकि वहाँ के सबही वृक्ष मंदारवृक्ष से भी अति उदार और सुन्दर हैं (महादेव की वाटिका में मंदार वृक्ष का होना उचित ही है, और यहाँ के वृक्ष मंदार अर्थात कल्पवृक्ष से भी अधिक उदार और सुन्दर हैं) अतः छहो ऋतुओं के फूल फल वहाँ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा। संबंधातिशयोक्ति।

मूल—कहूँ हंसिनी हंस स्यों चित्त चोरैं। चुनैं ओस के बुंद

मुक्तान भोरैं ॥ शुकाली कहूँ शारिकाली विराजैं । पढ़ैं वेद मंत्रावली भेद साजैं ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—स्यों=सहित । भोरैं=धोखे में । भेदसाजैं=उदात्त अनुदात्त स्वरों के भेद ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे वहाँ के बटुगण ।

भावार्थ—उस आश्रम में कहीं तो हंसों सहित हंसिनियाँ घूमती फिरती हैं जो अपनी सुन्दरता से सबके चित्तों को मोहती हैं, और वे मोतियों के धोखे में ओसबुंदों को चुनने लगती हैं । कहीं शुकशारिकाओं के समूह बैठे हुए वेदमन्त्रों का पाठ ठीक स्वरभेद से करते हैं ।

अलंकार—भ्रम । उल्लास का पहला भेद ।

मूल—कहूँ वृक्ष मूलस्थली तोय पीवैं । महामत्त मातंगसींगा न छीवैं ॥ कहूँ विप्र पूजा कहूँ देव अर्चा । कहूँ योगशिक्षा कहूँ वेदचर्चा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—मूलस्थली=वृक्षों के थाले (आलवाल) । तोय=पानी । न छीवैं=नहीं छूते ।

भावार्थ—कहीं बड़े बड़े मदमस्त हाथी वृक्षों के थालों में भरा हुआ पानी तो पीते हैं, पर वृक्षों की शाखाओं को तोड़ते फोड़ते नहीं । कहीं विप्रगण पूजन करते हैं, कहीं देवार्चन होरहा है, कहीं योगशिक्षा और कहीं वेदपाठकी चर्चा हो रही है ।

मूल—कहूँ साधु पौराणकी गाथ गावैं। कहूँ यज्ञ की शुभ्र शाला बनावैं। कहूँ होम मंत्रादि के धर्म धारैं। कहूँ बैठि कै ब्रह्मविद्या विचारैं ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—पौराणकी=(पौराणिक) पुराणसंबंधी। ब्रह्मविद्या= वेदान्त वा उपनिषद्।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—सुवा ही जहाँ देखिये वक्र रागी। चलै पिप्पलै तिक्ष बुध्यै सभागी ॥ कंपै श्रीफलैपत्र हैं यत्र नांके। सुरामानुरागी सबै राम ही के ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—सुवा=शुक, तोता। वक्ररागी=लालमुखका। चलै=(चल) चंचल। तिक्ष=तीक्षण। सभागी=भाग्यवान। श्रीफलै=कदली, केला। रामा=स्त्री। रामानुरागी=(१) रामके अनुरागी (२) स्त्री के अनुरागी।

नोट—परिसंख्यालंकार समझ कर इस छंद का अर्थ समझिये।

भावार्थ—भरद्वाज जी के आश्रम में कोई भी लाल मुखवाला नहीं है (पान नहीं खाता) यदि कोई है तो केवल तोते ही लाल मुख के हैं। केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं, भाग्यवानों की बुद्धि ही तीक्षण है, और वहाँ केवल कदली-पत्र ही कंपायमान हैं (और कोई किसी से डर कर काँपता नहीं) और रामानुरागी होने के नाते केवल राम के अनुरागी हैं, रामा (स्त्री) के अनुरागी नहीं हैं।

अलंकार—परिसंख्या।

मूल—भुजंगप्रयातछंद—जहाँ वारिंद वृंद बाजनि साजैं। मयूरै जहाँ नृत्यकारी विराजैं॥ भरद्वाज बैठे तहाँ विप्र मोहैं। मनो एक ही वक्र लोकेश सोहैं॥ ३९॥

शब्दार्थ—वक्र=मुख। लोकेश=ब्रह्मा।

भावार्थ—उस आश्रममें केवल बादल ही बाजा बजाते हैं, और केवल मयूर ही नाचते हैं (अर्थात् वहाँ सिवाय बादलों और मोरों के और कोई बजाने नाचने का शौकीन नहीं है) वहाँ भरद्वाज जी बैठे हुए वेद पुराणादि के पाठद्वारा ब्राह्मणों को मोहित कर रहे हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो एक मुख के ब्रह्मा हैं।

अलंकार—पूर्वार्द्ध में परिसंख्या, उत्तरार्द्ध में उत्प्रेक्षा से पुष्ट हीन तद्रूप रूपक।

(ऋषि-आश्रम की शांतिका वर्णन)

मूल—(लक्ष्मण)—दंडकछंद—केशोदास' मृगज-बछेरू चोवैं बाघिनीन, चाटत सुरभि बाघबालक बदन है। सिंहन की सटा पैंचैं कलभ करनि करि सिंहनको आसन गयंद को रदन है॥ फणी के फणन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न विरोध जहाँ मदन मदन है। बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि शिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है॥ ४०॥

शब्दार्थ—मृगजबछेरू=मृगों के बच्चे। चोवैं=दूध पीते हैं। सुरभि=गाय। सटा=सिंहकी गर्दन परके बाल। कलभ=हाथी का बच्चा। करनि करि=सूंडों से। फणी=साँप। मदन=काम।

डोरे डोर फिरत=डोरिआये फिरते हैं, हाथ पकड़े लिये फिरते हैं। तापसनि=तपस्वियों को।

भावार्थ—(केशवदास जी लक्ष्मण के मुख से कहलाते हैं कि) इस आश्रम में तो अद्भुत दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। देखिये! मृगों के बच्चे बाघिनियों का दूध पीते हैं, गायें बाघबालक का मुहँ चाटती हैं, हाथी के बच्चे अपनी सूड़ों से सिंहों के बाल खींचते हैं, और सिंह हाथियों के दातों पर आसन जमाये बैठे हैं। साँपों के फणों पर मोर नाचते हैं। यहाँ तो किसी के भी क्रोध, विरोध, मद वा काम नहीं है। बंदर अंधे तपस्वियों के हाथ पकड़े हुए उन्हें रास्ता बताते फिरते हैं (जहाँ वे जाना चाहते हैं वहाँ उन्हे बंदर लिवा जाते हैं)। बड़ा आश्चर्य है, यह भरद्वाज जी का आश्रम है या साक्षात् शिवजी का समाज है।

नोट—इस छंद में अद्भुत रस है।

अलंकार—संदेह।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—जहाँ कोमलै वल्कलै वास सोहैं। जिन्हैं अल्पधी कल्पसाखी बिमोहैं॥ धरे शृंखला दुःख दाहैं दुरंतै। मनो शंभु जी संग लीन्हे अनंतै॥ ४१॥

शब्दार्थ—वल्कलै वास=वल्कल वस्त्र। अल्पधी=कमी की बुद्धि से। कल्पसाखी=कल्प-वृक्ष। शृंखला=मेखला, मौंजी। दुरंत=बहुत बड़े बड़े। अनंत=शेषनाग।

भावार्थ—इस आश्रम में कोई भी कोमलांग (सुकुमार) नहीं है, यदि कोई कोमल वस्तु है तो केवल भोजपत्र के बने वल्कलवस्त्र ही हैं। उन वल्कल वस्त्र धारी तपस्वियों को देख कर और अपनेको उनसे कम समझकर कल्पवृक्ष भी विमोहित होते हैं। वे तपस्वीगण केवल एक मौंजी कोपीन धारण किये हुए हैं, पर बड़े बड़े दुःखों को जलाने का सामर्थ्य रखते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो शेष सहित शिव जी हैं।

अलंकार—परिसंख्या, ललितोपमा, उत्प्रेक्षा।

(भरद्वाज मुनि के रूप का वर्णन)

मूल—मालिनीछंद—प्रशमित रज राजै हर्ष वर्षा समै से। विरल जटन शाखी स्वर्नदी कूल कैसे॥ जगमग दरशाई सूर के अंशु ऐसे। सुरग नरक हंता नाम श्री राम कैसे॥ ४२॥

शब्दार्थ—प्रशमित रज=(१) नष्ट हो गई है धूल जिसकी (वर्षा काल के लिये)-(२)दब गया है रजोगुण जिनका। विरल जटन=(१) प्रगट हैं जड़ें जिसकी (२)खुले हुए हैं जटा जिनके। शाखी=वृक्ष। स्वर्नदी=गंगा। कूल=किनारा। जगमग दरशाई=जगत का मार्ग दिखानेवाले। अंशु=किरण।

भावार्थ—(भरद्वाज जी के मुनिरूप का वर्णन है कि) भरद्वाज जी का रूप हर्षमय वर्षाकाल के समान है, क्योंकि जैसे वर्षाकाल में रज (धूल) नहीं रहती वैसे ही इनके मन में भी रजोगुण नहीं है (रजोगुण को दबा दिया है केवल सतोगुण

का प्रकाश है) और मुनि जी गंगाकिनारे के वृक्ष के समान हैं क्योंकि जैसे नदीतीर के वृक्ष की जड़ें प्रगट रहती हैं वैसेही इनके जटा भी प्रगट हैं। सूर्यकिरण के समान जगमार्ग को दरशानेवाले हैं और रामनाम के समान स्वर्ग और नरक के हंता हैं (रामनाम की वर्कत से जैसे स्वर्गनरक का झगड़ा मिट कर जापक मोक्ष का भागी होता है वैसेही यह भी मोक्षदाता हैं)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

गहे केशपाशै प्रिया सी बखानो। कँपैं शापके त्रासते गात मानो
मनो चंद्रमा चंद्रिका चारु साजैं।जरा सों मिले यों भरद्वाज राजैं॥

शब्दार्थ—केशपाश=बाल। प्रिया=प्रेयसी। जरा=वृद्धावस्था।

भावार्थ—भरद्वाज जी जरावस्था से युक्त ऐसे राजते हैं, कि जरावस्था ने मुनि के बालों को पकड़ लिया है, जैसे कोई प्रिया कभी कभी अति धृष्ट हो प्यार से पति के केश पकड़ लेती है। केश पकड़ने से मुनि क्रुद्ध होकर शाप न दे बैठें इस डर से मानो उस जरा के गात काँपते हैं (मुनि के अंग जरा से काँपते हैं) और कैसे शोभित हैं, मानो चाँदनी पहने चंद्रमा ही है (शरीर के रोम तक सपेद होगये हैं)।

अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—भस्म त्रिपुंडक शोभिजैं वरणत बुद्धि उदार।
मनो त्रिस्रोता-स्रोत द्युति वंदति लगी लिलार॥ ४४॥

शब्दार्थ—त्रिपुंडक—तीन रेखावाला तिलक जैसा शैवलोग लगाते हैं। त्रिसोता=गंगा।

भावार्थ—मुनि के मस्तक पर भस्म का त्रिपुंड लगा हुआ है, उसकी शोभा बुद्धिमान लोग यों वर्णन करते हैं, मानो गंगा की कांति त्रिधार होकर मस्तक पर लगी हुई मुनि की सेवा करती है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—भुजंगप्रयात छंद—

मनो अंकुराली लसै सत्य कीसी। किधौं वेदविद्या-प्रभा ई ग्रभी सी
रमै गंग की जोति ज्यों जन्हु नीकी। विराजै सदा शोभ दंतावली की

शब्दार्थ—ई=ही। शोभ=शोभा।

भावार्थ—(दंतावली की शोभा कहते हैं) मुनि की दंतावली की शोभा कैसी जान पड़ती है मानो सत्यकी अंकुरावली है, या वेदविद्या की प्रभा ही है जो मुनि के मुख में भ्रमण सी कर रही है, या जन्हु मुनि के मुख में गंगा की सी ज्योति है (जन्हु ने गंगा को पी लिया था उस समय की ज्योति)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

मूल—हरिगीतिका छंद—सकुटी विराजति स्वेत मानहु मंत्र अद्भुत साम के। जिनके विलोकत ही विलात अशेष कामुक काम के॥ मुख वास आस प्रकाश केशव भौंर भीरन साजहीं। जनु साम के शुभ स्वच्छ अक्षर द्वै सपक्ष विराजहीं॥ ४६॥

शब्दार्थ—साम=सामवेद । विलात=नष्ट हो जाते हैं । अशेष=सब । कार्मुक=धनुष । प्रकाश=प्रगट, प्रत्यक्ष । भीरन साजहीं=एकत्र होकर भीड़ लगाये हुए हैं । सपक्ष=पंखवाले, पंख सहित ।

भावार्थ—भरद्वाज मुनि की भौंहें सफेद हो गई हैं वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो सामवेद के अद्भुत मंत्र हैं । उनका प्रभाव ऐसा है (जैसा कि सामवेद के मंत्रों का होता है) कि उनको देखते ही काम के सब धनुष विलीन हो जाते हैं (काम भी जिन भौंहों से डरता है) । उनके मुखसे ऐसी मनोमोहक वास आती है कि उसकी आशा से प्रत्यक्ष भौंरे उनके मुखमंडल पर भीड़ लगाये रहते हैं । वह भौंर-भीर ऐसी जान पड़ती है मानो सामवेद के पवित्र अक्षर पंखधारी हो कर उनके मुख के सम्मुख ही रहते हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—हरिगीतिका—तनु कंबु कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिये । अविनीत इन्द्री निग्रही तिनके निबंधन जानिये ॥ उपवीत उज्जल शोभिजै उर देखि यों वरणौं सबै । सुर आपगा तपसिंधु में जस सेतश्री दरसै अबै ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—तनु=बारीक । उनमानिये=अनुमान करते हैं । अविनीत=हठी, जिद्दी । निग्रही=ताड़न करनेवाले । निबंधन=बंधन । उपवीत=जनेऊ । सुर आपगा=गंगा । जस=जैसे ।

सेतश्री=सफेद कांति। अवै=(अव्यय) जिसमें से कुछ खर्च न हुआ हो (सम्पूर्ण)।

भावार्थ—भरद्वाज मुनि के शंखवत् कंठ में बारीक तीन रेखायें राजती हैं, वे मानो हठी इंद्रियों को ताड़ना देने के लिये उनको बाँधने की रस्सियाँ हैं, हृदय पर सफेद जनेऊ पड़ा हुआ है, उसे देख कर सब लोग यों कहते हैं कि वह जनेऊ ऐसा देख पड़ता है जैसे तपसिंधु में गंगा की सम्पूर्ण सफेद कान्ति (त्रिधारा होकर) दिखाई पड़ती हो।

अलंकार—उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

मूल—दोहा—फटिकमाल शुभ शोभिजै उर ऋषिराज उदार।
अमल सकल श्रुति वरणमय मनो गिरा को हार ॥ ४८ ॥

भावार्थ—भरद्वाज मुनि के उदार हृदय पर (चौड़े सीने पर) स्फटिक की माला शोभित है, वह ऐसी जान पड़ती है मानो वेद के समस्त निर्मल अक्षरों का बना हुआ सरस्वती के पहनने का हार है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मूल—मोदक छंद—

[illegible] है रस सत्य रस्यो तनु। [illegible] डाहि सों अवलोकित है मनु॥
[illegible] मुनि। देवपुरी कहँ पंथ रच्यो मुनि॥४९॥

[illegible] भरद्वाज जी का शरीर सत्यरससे रसा हुआ है (सतोगुणमय है-जरा से सब रोम सफेद हो गये हैं-

बहुत ही वृद्ध हैं) तो भी उनका मन दंड का अवलंबन किये रहता है (इंद्रियों के निग्रह के लिये-दंड देने के लिये) दंड धारण किये रहते हैं—लाठी या छड़ी लिये रहते हैं । और (सदैव अग्निहोत्रादि किया करते हैं सो) मानो खूब सोच विचार कर अग्नि के बहाने से मुनि जी ने स्वर्ग की सड़क बनादी है-अर्थात् हवनादि का तो बहाना मात्र है, हवन का धुवाँ धुवाँ नहीं है वरन् स्वर्ग की सड़क है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

मूल—मोदकछंद—

रूप धरे बड़वानल को जनु । पोषत है पय पानहिं सों तनु ।
क्रोध भुजङ्गम मंत्र बखानहु । मोह महा तम को रबि जानहु ५०

शब्दार्थ—पय=(१) दूध (२) जल ।

भावार्थ—भरद्वाज जी मानो बड़वानल के रूपही हैं, जैसे बड़वानल समुद्र जल से पुष्ट रहती है वैसे ही ये भी दूध ही से अपने तन को पोसते हैं (केवल दुग्धाहार ही करते है) । क्रोधरूपी सर्प के लिये मंत्र ही हैं (क्रोध के विकार को शांत कर देते हैं)-और मोहरूपी महान् अंधकार के लिये सूर्य ही समझो ।

अलंकार—श्लेष और परंपरित रूपक ।

मूल—मोदकछंद—सत्य-सखा असखा कलि के जनु । पर्वत औषधि सिद्धिन के मनु ॥ पाप कलापन के दिनदूपन । देखि प्रणाम कियो जगभूपन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—असखा=शत्रु। दिन=प्रतिदिन। दूषन=नाशक। जगभूषन=श्रीराम जी।

भावार्थ—भरद्वाज जी कैसे देख पड़े मानो सतयुग के मित्र और कलिकाल के शत्रु हैं; और मानो अष्टसिद्धिरूपी औषधियों के पर्वत हैं; पापसमूहों को नित्य नाशकरनेवाले हैं। ऐसे भरद्वाजजी को देख कर श्री राम जी ने हाथ जोड़ मस्तक नवा प्रणाम किया।

अलंकार—परंपरित रूपक।

मूल—पद्धटिकाछंद—

सीता समेत शेषावतार। दंडवत किये ऋषि के अपार॥
नर भेष विभीषण जामवंत। सुग्रीव बालिसुत हनूमंत॥५२॥

भावार्थ—श्रीराम जी के प्रणाम करने के बाद सीता सहित लक्ष्मणजी ने ऋषि को बड़ी भक्ति से दंडवत प्रणाम किया। तदनंतर नर-भेष धारण किये हुए विभीषण जामवंत, सुग्रीव, अंगद और हनुमान ने भी यथोचित प्रणाम किया।

मूल—पद्धटिकाछंद—

ऋषिराज करी पूजा अपार। पुनि कुशलप्रश्न पूंछी उदार।
शत्रुघ्न भरत कुशली निकेत। सब मित्र मंत्रि मातनि समेत५३

भावार्थ—फिर श्रीराम जी ने ऋषिराज की बहुत पूजा की, अनेक प्रकार के उपहार भेंट किये। तदनंतर आश्रम की तथा देश और अयोध्या की खैरखुशी का हाल पूंछा (निकट होने तथा नित्यप्रति लोगों के गमनागमन से अयोध्या का हाल

ऋषि को मालूम होता रहता था), कि हे महाराज ! भरत शत्रुघ्न, मित्र, मंत्री और माताओं सहित कुशल से तो हैं न ?

मूल—(भरद्वाज)—पद्धटिका छंद—कह कुशल कहौं तुम आदि देव । सब जानत हौ संसार भेव ॥ विधि विष्णु रवि ससि उदार । सब पावकादि अंशावतार ॥ ५४ ॥

भावार्थ—भरद्वाज जी ने उत्तर दिया कि हे राम ! तुम तो आदि देव परब्रह्म अंतर्यामी हो, मैं यहाँ की कुशल क्या कहूँ । तुम तो सब संसार का भेद जानते ही हो (कि जहाँ तुम नहीं वहां कुशल कैसी ?) । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चंद्र और सब प्रकारकी अग्नि केवल तुम्हारे अंशावतार ही हैं (अर्थात् यही सब देवगण सब की कुशल के हेतु हैं सो तुम्हारे अंश हैं, अतः आपको सब खबर इन्होंने दी ही होगी, मेरे कहने की जरूरत नहीं) ।

अलंकार—उदात्त ।

मूल—पद्धटिका छंद—

ब्रह्मादि सकल परमाणु अंत । तुमही हौ रघुपति अज अनंत ।
अब सकल दान दै पूजि विप्र । पुनि करहु विजै वैकुंठ छिप्र ५५॥

शब्दार्थ—परमाणु=किसी वस्तु का अति छोटा अंश, ज़र्रा । अंत=तक । विजय करना=(विहार और मिथिला का शब्द है) भोजन करना । वैकुंठ=(विष्णु, यहाँ) श्री रामजी । छिप्र=शीघ्र ।

भावार्थ—ब्रह्मा से लेकर ज़र्रे तक सब तुम्हीं हो। हे राम! तुम अज और अनंत हो (यद्यपि तुम्हें कर्म का दोष नहीं लग सकता, तथापि रावण ब्राह्मण को मारा है, अतः तुम्हें ब्रह्महत्या का दोष है, अतः) त्रिवेणी स्नान करके प्रायश्चित्त रूप अनेक दान देकर, ब्राह्मणों को पूज कर शुद्ध हो लो, तब हे पवित्रात्मा! मेरे यहाँ का आतिथ्य स्वीकार करके शीघ्रही भोजन करो। तात्पर्य यह कि पहले ब्रह्महत्या-पाप से निवृत्त हो लो तब भोजन करके मुझसे बातें करो तब मैं सब बतलाऊँगा।

बीसवाँ प्रकाश समाप्त

श्रीरामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध सम्पूर्ण

हिन्दी-साहित्योन्नति के लिये

प्रयत्न करना

प्रत्येक साहित्य-सेवी का

कर्त्तव्य है

अतः अधिक नहीं, केवल स्थायी ग्राहक बनकर इस कार्यमें हमारी सहायता करें यही प्रार्थना है। स्थायी ग्राहक बनजाने से आपको भी विशेष लाभ होगा।

नियम पृष्ठ पर देखिये।

साहित्य-सेवा-सदन, काशी

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

(१) प्रवेश-शुल्क बारह आना मात्र देना पड़ता है।

(२) स्थायी ग्राहकों को इस कार्यालय के समस्त पूर्व प्रकाशित तथा आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों की एक २ प्रति पौने मूल्य में दी जायगी।

(३) किसी भी पुस्तक का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिये कोई बन्धन नहीं है। किन्तु वर्षभर में कम से कम ३) तीन रुपये (पूरे मूल्य) की पुस्तकें लेनी पड़ती हैं।

(४) पुस्तक प्रकाशित होते ही उसके मूल्यादि की सूचना भेजी जाती है और १५ दिवस पश्चात् उसकी वी. पी. भेजी जाती है। यदि किसी सज्जन को कोई पुस्तक न लेनी हो, तो पत्र पाते ही सूचना देनी चाहिये। वी. पी. लौटाने से डाक-व्यय उन्हीं को देना पड़ेगा, अन्यथा उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से पृथक् कर दिया जायगा।

(५) [illegible] के इच्छानुसार डाक-व्यय के बचाव के लिये [illegible] एक साथ भी भेजी जा सकती हैं।

[illegible] को अन्य पुस्तकों पर भी प्रायः एक [illegible] जाता है और साहित्य-[illegible] पुस्तकों की सूचना भी

[illegible] ग्राहक-नम्बर, पता,

सदनद्वारा प्रकाशित पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थरत्नमाला का प्रथम रत्न

बिहारी-सतसई सटीक

बिहारी-सतसई की हिन्दी-संसार में काफी धूम मच चुकी है। अतः उसका परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल प्रस्तुत टीकाके विषय में हीं बतलाना ठीक होगा। आज २५० वर्षों में इस पुस्तकपर कोई ३५-३६ टीकाएँ बन चुकी हैं। लेकिन वे सभी या तो प्राचीन ढंग की हैं जो समझ ही मे मुश्किल से आती हैं या अधूरी हैं।

इसी कठिनाई को दूर करने के लिये साहित्य-संसार के सुपरिचित कविवर लाला भगवानदीनजी ने अर्वाचीन ढंग की पूरी टीका तैयार की है। टीका कैसी होगी इसका अनुमान पाठक टीकाकारके नाम से ही कर लें। इसमें बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकारआदि सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया गया है। स्थान स्थान पर कवि के चमत्कार का निदर्शन कराया गया है। जगह जगह पर सूचनायें दी गई हैं। मतलब यह कि सभी जरूरी बातें इस टीका में आ गई हैं। सरस्वती, शारदा, सौरभ आदि पत्रिकाओं ने तथा बड़े २ दिग्गज विद्वानों ने इस टीका की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इतना सब कुछ होने पर भी इस पौने चार सौ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का मूल्य २।)मात्र है। सजिल्द २॥)।

काव्य-ग्रन्थरत्न माला का द्वितीय रत्न

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवी प्रसाद 'प्रीतम'। यह वही है जिसकी बाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोह और जिसके शीघ्र प्रकाशन के लिये तकाज़े पर रहे। पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही और परख पर छोड़ कर इसके परिचय में केवल कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने किया है। भाषा भी बड़ी सरल है। मूल्य केवल ।), कागज़ के संस्करण का ।=)।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का तृतीय रत्न

महाकवि आचार्य केशवरचित

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य-शिरोमणि रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा ज्ञात होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरिचित हो। हिन्दी-साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है। एक अच्छे साहित्यज्ञ होने के लिये जितनी भी सामग्रियों की आवश्यकता है वे सभी इसमें मौजूद

विश्वविद्यालयों-यूनिवर्सिटियों-मा-
पाठ्य-पुस्तक नियत किया गया
के लिए शब्द-कोष-युक्त टिप्पणी
रामचन्द्रिका का पाठ अन्य
शुद्ध है (छप रही है)।

सदन-ग्रन्थ रत्न-माला का चतुर्थ रत्न

केशव-कौमुदी

प्रथम भाग

यह उपर्युक्त रामचन्द्रिका की टीका है। इस में रामचन्द्रिका के मूल छन्दों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कवि के चमत्कार-निदर्शन के साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषों की पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा अप्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई हस्तलिखित प्रतियों से मिलानकर संशोधित किया गया है। इसके टीकाकार हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर लाला भगवान दीन जी हैं। अभी इस भाग में केवल रामचन्द्रिका के २० प्रकाश तक की ही टीका की गई है। बाकी की टीका भी तैयार हो रही है। मूल्य साढ़े पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक का केवल २।), सजिल्द २॥)। राजसंस्करण का जिसमें रंग-बिरंगे चित्र भी हैं, मूल्य २॥।), सजिल्द ३)।

रहिमनविलास

यों तो रहीम की कविताओं के संग्रह कई स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करण [illegible] रहीम-काव्य, मदनाष्टक, शृंगार-सोरठ, पाठान्तर आदि [illegible] गये हैं, जो कि अन्य संस्करणों में नहीं मिलते हैं। [illegible] का-टिप्पणी भी भरपूर दी गई है, ताकि अर्थ समझने में [illegible] सुभीता हो। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य ।=)।

काव्य-ग्रन्थरत्न माला का द्वितीय रत्न

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

लेखक—श्रीयुत देवी प्रसाद 'प्रीतम'। यह वही है जिसकी बाट हिन्दी-संसार बहुत दिनों से जोह रहा और जिसके शीघ्र प्रकाशन के लिये तक़ाज़े पर तक़ाज़े रहे। पुस्तक की प्रशंसा का भार काव्य-मर्मज्ञों के ही और परख पर छोड़ कर इसके परिचय में केवल इतना कह देना चाहते हैं कि यह ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्ण की सम्बन्धिनी पौराणिक कथाओं का एक खासा दर्पण है। [illegible] क्रम, वर्णन-शैली तथा विषय-प्रतिपादन में लेखक ने किया है। भाषा भी बड़ी सरल है। मूल्य केवल ।-), [illegible] कागज़ के संस्करण का ।≡)।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का तृतीय रत्न

महाकवि आचार्य केशवरचित

रामचन्द्रिका

हिन्दी साहित्य-शिरोमणि रामचन्द्रिका का परिचय देना तो व्यर्थ ही है, क्योंकि शायद ही हिन्दी का कोई ऐसा ज्ञान होगा जो इस ग्रन्थ के नाम से अपरिचित हो। हिन्दी-साहित्य में यह बेजोड़ ग्रन्थ है। एक अच्छे साहित्यज्ञ होने के लिये जितनी भी सामग्रियों की आवश्यकता है वे सभी इसमें मौजूद हैं। यह ग्रन्थ बड़े बड़े विश्वविद्यालयों-यूनिवर्सिटियों-साहित्य-सम्मेलनों आदि में पाठ्य-पुस्तक नियत किया गया है। इसमें अर्थ—सरलता के लिए शब्द-कोष-युक्त टिप्पणी भी भरपूर दी गई है। हमारी रामचन्द्रिका का पाठ अन्य सभी संस्करणों की अपेक्षा अधिक [illegible] है। [illegible]

सदन-ग्रन्थ रत्न-माला का चतुर्थ रत्न

केशव-कौमुदी

प्रथम भाग

यह उपर्युक्त रामचन्द्रिका की टीका है। इस में रामच
के मूल छन्दों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषा-
र्थ, नोट, अलङ्कारादि दिये गये हैं। यथास्थान कवि के
चमत्कार-निदर्शन के साथ ही साथ काव्य-गुण-दोषों की
पूर्ण रूप से विवेचना की गई है। छन्दों के नाम तथा
प्रचलित छन्दों के लक्षण भी दिये गये हैं। पाठ भी कई
हस्तलिखित प्रतियों से मिलानकर संशोधित किया गया है।
इसके टीकाकार हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर लाला
भगवान दीन जी हैं। अभी इस भाग में केवल रामचन्द्रिका
के २० प्रकाश तक की ही टीका की गई है। बाकी की टीका
भी तैयार हो रही है। मूल्य साढ़े पाँच सौ पृष्ठों की पुस्तक
का केवल २।), सजिल्द २॥)। राजसंस्करण का जिसमें रंग-
बिरंगे चित्र भी हैं, मूल्य २॥।), सजिल्द ३)।

रहिमनविलास

यों तो रहीम की कविताओं के संग्रह कई स्थानों से
काशित हो चुके हैं। किन्तु इतना बड़ा और इतना अच्छा
स्करण कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुआ है। इस संस्करण
रहीम-काव्य, मदनाष्टक, शृंगार-सोरठ, पाठान्तर आदि
गये हैं, जो कि अन्य संस्करणों में नहीं मिलते हैं।
का-टिप्पणी भी भरपूर दी गई है, ताकि अर्थ समझने में
ुभीता हो। पृष्ठ-संख्या ८८। मूल्य ।=)।

काव्य-ग्रन्थ-रत्न-माला का छठवाँ रत्न

गोस्वामी तुलसीदासकृत

विनय-पत्रिका सटीक

महात्मा तुलसीदासजी की विनयपत्रिका का अब तक कोई सरल तथा वेदान्तों के गूढ़ रहस्य को समझानेवाली टीका के न होने से भगवद्भक्तों तथा अध्येताओं को विशेष कठिनाई पड़ती थी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादक वियोगी हरिजी ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ की टीका की है। टीका कैसी होगी यह तो आप वियोगीजी के नाम से ही अनुमान करलें। इसमें मूल के नीचे शब्दार्थ, भावार्थ, पदच्छेद, प्रसंग आदि देदेने के बाद टिप्पणी में वेदान्त की बारीकियाँ, अन्तर् अलंकार, शंका-समाधान तथा प्रसंग-पुष्टि के लिए हिन्दी तथा संस्कृत कवियों के चुने हुए अवतरण भीदिये गये हैं। टीका अपने ढंगकी एक ही है। पृष्ठ-संख्या लगभग ७०० मूल्य २॥)

भ्रमरगीत

महात्मा नन्ददासकृत। भरपूर टिप्पणियों सहित ≈)

प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ

नन्द-ग्रन्थावली-नन्ददासजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ।

गुलदस्ता बिहारी-बिहारी के दोहो पर उत्तम शेर। लेखक देवीप्रसाद प्रीतम।

मानकुमारी-अत्युत्तम ऐतिहासिक उपन्यास। मूल लेखक-चण्डीचरण सेन। द्वितीयावृत्ति।

भ्रमरगीत-महात्मा सूरदासजी की सर्वोत्कृष्ट रचना। सम्पादक, पं० रामचन्द्र शुक्ल।